ओ३म्

वैदिक सृष्टि-विज्ञान सचित्र दर्शन

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आंबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संꣳरराणस्त्रीणि ज्योतींꣳषि सचते स षोडशी ॥

स्रष्टा कलाकार की १६ कलायें और ३ ज्योतियां हैं । (यजु० ३२।५)
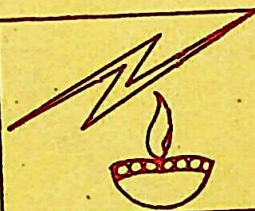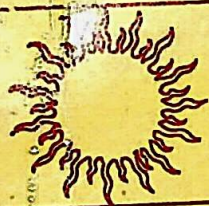
सृष्टि-संवत्—१९७२९४९०९३
विक्रम-संवत्—२०४९; ई० १९९३

लेखक—व्रतपाल सिद्धान्तशास्त्री

दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धु ॥ (ऋग्वेद १०।१०।६)
अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्युन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ (यजुर्वेद ७।

"यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे" (चरक)

"As in the Universe, So in the Body"

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे
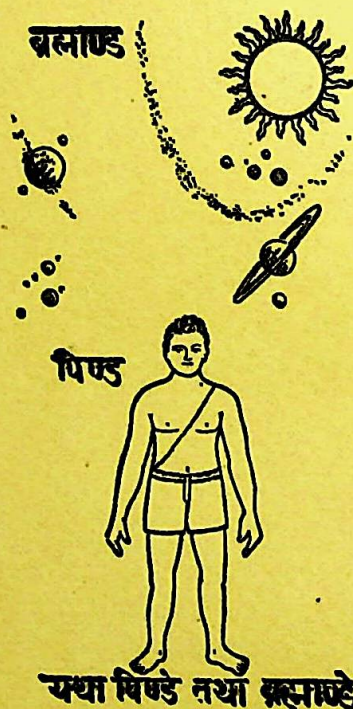
१—विष्णु पति+प्रकृति पत्नी=आत्मा+शरीर ।
२—सूर्य ग्रहपति+पृथिवी पत्नी=नर+नारी ।
३—ब्रह्म दिवस+ब्रह्म रात्रि=लघु दिन+लघु रात्रि ।
तीन महान् जोड़ों का ज्ञान विज्ञान तीन लघु जोड़ों में सुरक्षित है ।

★ ओ३म् ★

वैदिक सृष्टि-विज्ञान सचित्र दर्शन

[पूर्वार्ध] + उत्तरार्द्ध

लेखक—
व्रतपाल सिद्धान्तशास्त्री

प्रकाशक—
व्रतपाल सिद्धान्तशास्त्री
H. No. ~~१२-६-२५०/२११~~
~~न्यू जाफर गुञ्ज~~, पो० कुलसुमपुरा
हैदराबाद-५०००२८ (आन्ध्र प्रदेश)

प्रथम संस्करण—२०००
आश्विन २०५० (अक्टूबर १९९३)

मूल्य—१००.००

प्राप्ति-स्थान—

१. रामलाल कपूर ट्रस्ट
वेदवाणी कार्यालय
बहालगढ़-सोनीपत
हरयाणा—१३१०२१

२. प्रकाशक : व्रतपाल आर्य

मुद्रक—
रामकिशन सरोहा
सरोहा प्रिंटिंग प्रेस
बहालगढ़-सोनीपत
हरयाणा—१३१०२१

सम्मतियां

(१)

ॐ तत् सत्

मयाद्य १८।११।२०३२ वैक्रमे कन्यासंस्कृतशिक्षामन्दिरे निजनिवास-स्थाने केशरि-कुञ्जे डी० ५९/३१ सिगरा, वाराणसीमध्ये सायं ७ वादनतो ९ वादनं यावत् सकुटुम्ब-पौर-जानपदं महतोल्लासेन श्रीव्रतपालार्य-सिद्धान्तशास्त्री-पाणिनि-महाविद्यालय, बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा) प्रणीतम् 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' इति सिद्धान्त-पोषकं चित्रप्रदर्शनं दृष्टम्।

दृष्ट्वा च सहसा मे मुखाद् विना विचरितं विनिर्गतम्—

'वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिग चेत्' अतोऽहं चित्रप्रदर्शनस्य विषये संक्षेपतरं वच्मि यदिदं तु श्रौत्रं सृष्टिविज्ञानं सर्वेषां साक्षादौपनिषदं दर्शनम्। अवश्यं सर्वैः समीक्ष्य मननीयम्। आर्याणां तिरोहितं श्रुति-स्मृति-पुराणेषु निगूहितमद्य सर्वप्रत्यक्षं स्थापितमनेन विज्ञानविद्यावेदिना महात्मना। भूरि भूरि भृशं प्रशंसनीयोऽस्य प्रयत्नः।

स्वतन्त्रे भारते सम्प्रति सृष्टितत्त्वस्याद्भुतं स्वच्छचित्ररूपे साक्षात् प्रदर्शनं महत्याः प्रतिभायाः साक्षात् प्रभावः। सर्वेषामस्माकं काशीस्थ-विदुषामाशीर्वादास्पदमिदं चित्रप्रदर्शनं दैनन्दिनं प्रवर्धमानं वैदेशिकान् वैज्ञानिकान् पाश्चात्यानपि चमत्कुर्य्यात्। विश्वमानवान् भारतीयं वैदिकं सृष्टिविज्ञानं चित्ररूपतः शिक्षयन् स्वीयं जगद्गुरुत्वमुद्बोधयन् आर्योऽयम्—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"

इति मानवीयं पद्यं सफली कुर्यादिति शुभम्।

डा० श्री गोपालशास्त्री (दर्शनकेशरी)

[पण्डितराजः महामहाध्यापकः राष्ट्रपतिसम्मानितश्च]

काशीपण्डितसभाध्यक्षः डी० सिगरा. वाराणसीस्थः

सौर १८।११।२०३२ वै० (२।३।१९७६ ई०)

हिन्दी अनुवाद

आज १८।११।२०३२ वि० को 'कन्या संस्कृत शिक्षामन्दिर' में अपने निवासस्थान 'केशरिकुञ्ज डी० ५८/३१, सिगरा, वाराणसी' में सायं सात बजे से नौ बजे तक परिवारसहित बड़े उल्लास से श्री व्रतपाल आर्य सिद्धान्तशास्त्री (पाणिनि महाविद्यालय, वहालगढ़, सोनीपत-हरयाणा) द्वारा निर्मित 'जैसा पिण्ड (शरीर) में है, वैसा ही ब्रह्माण्ड (संसार) में है' उक्ति को चरितार्थ करनेवाला चित्रों का प्रदर्शन देखा।

देखकर सहसा मेरे मुख से विना विचारे ही निकल गया—"वाग्जन्म-वैफल्यमसह्यशल्यं गुणाद्भुते वस्तुनि मौनिग चेव।"

अतः मैं चित्र प्रदर्शन के विषय में संक्षेप से कहता हूं कि यह श्रौत्र-सृष्टि-विज्ञान सभी के लिये साक्षात् रहस्यपूर्ण दर्शन है। अवश्य ही सभी को देखकर मनन करना चाहिये। इस वैज्ञानिक महात्मा ने आर्यों का तिरोहित और श्रुति-स्मृति-पुराणों में वर्णित रहस्य को आज प्रत्यक्ष ही सामने रख दिया। इनका यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है।

स्वतन्त्र भारत में इस समय सृष्टितत्त्व का अद्भुत स्वच्छ चित्ररूप में साक्षात् प्रदर्शन अत्यन्त प्रतिभा का प्रभाव है। हम सभी काशीस्थ विद्वानों के लिये यह दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त हुआ चित्र-प्रदर्शन आशीर्वाद के योग्य है, यह विदेशी वैज्ञानिकों को भी आकर्षित करेगा। भारतीय वैदिक सृष्टि-विज्ञान को चित्रों के माध्यम से विश्व के मानवों को सिखाता हुआ, यह आर्य अपने देश के गुरुत्व की याद दिलाता हुआ "पृथिवी पर सम्पूर्ण मानव इस देश में उत्पन्न अपने-अपने चरित्र को सीखें" इस मनु की उक्ति को सफल बनायेगा, ऐसी आशा है।

डा० श्रीगोपालशास्त्री (दर्शनकेशरी)

[पण्डितराज महामहाध्यापक, राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित]
काशीपण्डितसभाध्यक्ष, डी० सिगरा, वाराणसीस्थ।
सौर १८।११।२०३२ वै० (२।३।१९७६ ई०)

(२)

यह विशाल अद्भुत सृष्टिविज्ञान भूत, वर्तमान, भविष्यकाल के

परोक्ष और प्रत्यक्ष अद्‌भुत ज्ञानविज्ञान प्रदर्शक अनेक जन्मों के पुण्योदय का फल है। वर्तमान में श्री व्रतपाल जी आर्य नामधारी पवित्र आत्मा के अनेक वर्षों का असाधारण स्वाध्याय और पुरुषार्थ का भी परिणाम है।

इन्होंने हजारों रुपया व्यय कर-कर के सुन्दर चित्र बनवाये हैं। वर्षों से भारतवर्ष में प्रचार कर रहे हैं। अनेक प्रामाणिक विद्वानों से और अनेक संस्थाओं से लिखित अनेक प्रशस्तियां प्राप्त की हैं। इस विषय पर सचित्र पुस्तक या डाक्युमेण्टरी फिल्म बनने से वेदों के ज्ञान का शीघ्र प्रचार विश्व में होगा, जिससे भारत सरकार को भी यश और आर्थिक लाभ होगा।

१२-६-७६
प्रकाशानन्द, योगेश,
कुम्भकोण

(३)

प्रदर्शनी अत्यन्त सुन्दर शिक्षादायिनी एवं विस्मयकारिणी है। मनुः में कौतूहल एवं तीव्र जिज्ञासा जागती है।

प्रभु से प्रार्थना है कि इस विषय पर श्रेष्ठ पुस्तक बने, जिससे सारे विश्व की वैज्ञानिक प्रतिभा को जीवन का स्पष्ट दर्शन करने में सहायता मिले।

ता० २८।१०।१९७५
मूलचन्द
१९५८ बेला, कूंचा, खारी बावली
दिल्ली—६

(४)

श्री व्रतपालजी आर्य वर्षों से एक अत्यन्त उपयोगी तथा लाभदायक कार्य में लगे हुए हैं।

सृष्टि-उत्पत्ति का पूरा विज्ञान चित्रों में तैयार करवाया गया है और वेद-उपनिषद् के आधार पर कितने ही रोचक ढङ्ग से चित्र बनवाये गये

हैं। सारे विश्व को इस पुरुषार्थ से पूरा लाभ होगा। श्री व्रतपालजी के इस सुन्दर कार्य की प्रदर्शनी स्थान-स्थान पर होनी चाहिये।

ता० १२-२-७५ आनन्द स्वामी सरस्वती।

(५)

श्री पण्डित व्रतपाल सिद्धान्तशास्त्री के द्वारा अथक परिश्रम के बाद निर्मित, सृष्टिविद्या-सम्बन्धी चित्रों को पूर्ण मनोयोग से देखा।

सृष्टि-प्रक्रिया के सूक्ष्म रहस्यों को चित्रों के माध्यम से सुबोध ढंग से समझाने का यत्न किया गया है। इन चित्रों के पीछे उन की दृढ़ निष्ठा लगन, उत्साह एवं लगभग ३० वर्षों का श्रम है। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य एवं भारतीय दर्शनों के आलोडन एवं गम्भीर अध्ययन के उपरान्त इन चित्रों का निर्माण सम्भव हुआ है।

श्री पण्डित व्रतपालजी इससे सम्बन्धित फिल्म के निर्माण की ओर ध्यान दें, तो ज्यादा उत्तम रहेगा।

मुझे याद आता है कि जब जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर ने ऋग्वेद के नासदीयसूक्त का अध्ययन करने के उपरान्त कहा था कि उन तक पहुंचने में आधुनिक विज्ञान को पर्याप्त समय लगेगा।

यद्यपि कालचक्र के प्रहार से हमारा सम्पूर्ण साहित्य एवं ज्ञान-विज्ञान बहुत कुछ विशृङ्खलित हो गया है, किन्तु जो कुछ भी शेष है, उस के कारण भी हम गर्व से मस्तक ऊंचा करने के अधिकारी हैं। इसी कारण यह बात और भी बल रखती है कि सृष्टि-विद्यासम्बन्धी इस विज्ञान को अधिक जोरदार ढङ्ग से प्रस्तुत किया जाये।

वास्तव में इस ओर भारत सरकार को अविलम्ब ध्यान देना चाहिये।

हम चाहेंगे कि किसी प्रकार इस सृष्टि-विज्ञान का अच्छे ढंग से प्रस्तुतीकरण के लिये पर्याप्त सहायता दी जाये, क्योंकि इससे आधुनिक वैज्ञानिकों को भी गवेषणा के लिये पर्याप्त सामग्री तथा नयी दिशा मिलेगी।

हमारा विश्वास है कि पाश्चात्य वैज्ञानिक भी नये सिरे से सोचने पर उद्यत होंगे।

मैं पंडित व्रतपाल जी से कहूंगा कि वह शीघ्र इस से सम्बन्धित एक ग्रन्थ का भी निर्माण करें। यद्यपि मैं उन की निष्ठा एवं श्रम को देखते हुए काफी कुछ आश्वस्त हूं। किन्तु यदि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ही इस ओर ध्यान दे, तो आर्थिक गति से कार्य सम्भव है। वस्तुतः सार्वदेशिक सभा को इसे अपना ही उत्तरदायित्व समझना चाहिये।

मेरा विश्वास है कि यदि श्री पं० व्रतपाल जी को अपेक्षित सहायता मिल सकी, तो यह कार्य अधिक सुचारु रूप से आगे बढ़ेगा।

ज्योतिःस्वरूप आचार्य,
गुरुकुल एटा, उत्तरप्रदेश
१६।१।७६

प्रमाण-पत्र

ओ३म्

ओ३म् व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

आर्यसमाज स्थापना शताब्दि महापर्व दिल्ली

पौष कृ० ६ से पौष कृ० ११ सं० २०३२
दयानन्दाब्द १५१ : २४ से २८ दिस० १९७५

प्रशस्ति-पत्र

श्री व्रतपाल आर्य संयोजक, आर्यसमाज अद्भुत ज्ञान विज्ञान प्रदर्शनी, हैदराबाद, (दक्षिण) ने स्थापना-शताब्दि के पुण्य अवसर पर इस महापर्व को सफल बनाने में जो सहयोग दिया, उससे आर्यसमाज के अनुशासन तथा गौरव में आशातीत वृद्धि हुई है, अतः सभा की ओर से आपको आदरपूर्वक यह प्रशस्ति-पत्र भेंट किया जाता है ।

(हस्ताक्षर)
रामगोपाल शालवाले
प्रधान

(हस्ताक्षर)
ओम्प्रकाश पुरुषार्थी
मन्त्री

नरेन्द्र
संयोजक
आर्यसमाज स्थापना शताब्दि महापर्व

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली—१

प्राक्कथन

अनेक वर्षों से इच्छा रही कि वैदिक सृष्टि-विज्ञान सप्रमाण सचित्र पुस्तक का लेखन व प्रकाशन करूं, प्रयत्न भी करता रहा। सृष्टि-विज्ञान की चित्रप्रदर्शनी देखने सुननेवाले २० वर्षों से सृष्टि-विज्ञान विषयक पुस्तक लिखने के लिये प्रेरणा देते और सम्मति पञ्चिका में प्रबल शब्दों में पुस्तक प्रकाशन का आग्रह करते।

सामान्य दर्शक से लेकर विशेष वेदों के विद्वानों का आदेश तथा आशीर्वाद था कि जिस प्रकार प्रामाणिक वैदिक सृष्टि-विज्ञान के सुन्दर चित्र बनाये हैं, वैसे ही सचित्र पुस्तक शीघ्र प्रकाशित करो।

भारत के राष्ट्रपति महामहिम बी. डी. जत्ती महोदय को ये सृष्टि विज्ञान के चित्र १९७७ में बताकर यह प्रार्थना की कि भारत सरकार से यह वैज्ञानिक ग्रन्थ सचित्र सप्रमाण हिन्दी में प्रकाशित होना चाहिये। महामहिम राष्ट्रपति जी ने आश्वासन भी दिया, किन्तु खेद है, लेखन में मेरी योग्यता कम थी और अन्य लेखकों का सहयोग नहीं मिल सका।

मैं अति व्यस्त बहुधन्धी संघर्षशील सभी प्रकार के कार्यों में लग जाता था। कुछ विवशतायें थीं, जैसे—निर्वाह, निवास, वैदिक विज्ञान के पवित्र कार्य में प्रभूत धन की आवश्यकता थी, जो मैं सम्पादन शीघ्र नहीं कर सका।

वेदों को माननेवाली संस्थायें और सभायें अधिकारियों का ध्यान दिलाने पर भी प्रभूत मात्रा में सहयोग व आर्थिक अनुदान नहीं दे सकीं। मेरे पास जो धन था, वह लगभग ७ लाख रुपया धीरे-धीरे चित्रों के बनाने तथा निर्वाह में २० वर्षों से प्रचार में खर्च हो गया। कहीं-कहीं से जो अल्पमात्रा में दक्षिणा मिलती, वह भी मार्गव्यय में व्यय हो जाती थी।

१९७९ में दुर्भाग्य से दुर्घटना में सीधा पैर टूट गया। चिकित्सा, निर्वाह में जो शेष धन था, वह भी व्यय हो गया। मेरी अवस्था ऐसी रही 'मकान बनाकर देख, विवाह कर के देख, कोर्ट मुकदमा कर के देख।' आन्तरिक और बाह्य परेशानी थी और है। चारों तरफ महा-

भारत के चक्र-व्यूह में जैसे अभिमन्यु फंसा था, वैसे मैं भी फंसा हूं। असत्य, अन्याय, अभाव के प्रतीकार करने में महासागर में युद्धस्तर पर साहस से लगा हूं।

गत ३ मास पूर्व अकस्मात शीघ्रता में ७ फार्म छप गये थे, जिस में भूमिका, वेद-परिचय, चतुर्वेद-विषय-सूची, कालमान, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, सृष्टि-चक्र छप गये थे। अब पुनः स्वल्प समय में पूर्वभाग जो रह गया था, छापने का प्रयास हो रहा है। जिस में विषय को समझने के लिये ११ चित्र सप्रमाण दे रहा हूं और एक अभूतपूर्व सृष्टि-चक्र का रंगीन (चित्रपट) दिया है, जिस में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का चित्र; भूत भविष्य के पांच संवत्सर तथा महापुरुषों के पांच संवत्सर, सौरमण्डल का विकास तथा उसका ह्रास, वैदिक सङ्कल्पपाठ और चार महापुरुषों के चित्र हैं। एक कैलेण्डर भी इस पुस्तक का ही अङ्ग है, जिसे लेकर पाठक अवश्य पढ़ें।

पूज्यपाद श्रद्धेय गुरुवर्य पदवाक्य-प्रमाणज्ञ पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु मौज-मस्ती में कहा करते थे—'बन्दर स्वभाव से चञ्चल होता है, उस को शराब पिला देने पर अति चञ्चल हो जाता है। पश्चात् उस को बिच्छू लड़ा देना तो वह अधिक अशान्त पागल के समान परेशान और दुःखी होकर भागता, लोटता रहता है।'

मेरी भी यही अवस्था है। मैं दुःखी और परेशान तो नहीं है, सुखी हूं, आनन्द से कार्य करता रहता हूं। हां, अत्यन्त व्यस्त जरूर रहता हूं। अनेक कार्यों में प्रगति भी है।

सत्सङ्ग और उत्तम संस्कारों के कारण छात्रावस्था (१७ वर्ष की आयु) में स्वतन्त्रता-संग्राम के अनेक संघर्षों में मैं क्रान्तिकारी रहा। सत्यार्थप्रकाश पढ़ने से पहले ही रङ्ग—नशा चढ़ गया था। कुछ वर्षों बाद अष्टाध्यायी के अध्ययन में पुरुषार्थमग्न हो गया। पश्चात् १३ वर्ष कृषि और गोपालन में लगा रहा। गो-दुग्ध के कई प्रयोग वर्षों से करते रहने से उत्तम स्वास्थ्य और स्वाध्याय से उत्तम विचारों का विकास होता रहा। कुछ वर्ष आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन में लगाये। यह कार्य भी अवरुद्ध होने पर सृष्टि-विद्या-विज्ञान के कार्य में लगा, साथ-साथ निजी निर्वाहार्थ अनेक कार्यों में भी लगा रहा और समय-समय में सृष्टि-विद्या

के चित्र बनाना तथा बनवाना और प्रचार करना तथा शङ्का-समाधान इत्यादि कार्यों में ४५ वर्ष हो गये।

चित्रों में वेदविद्या का प्रकाश करने की प्रबल इच्छा है। १५० चित्र बनकर तैयार हैं। एक वेदविज्ञान-मन्दिर बनाने की योजना है, जो विश्व में एक अद्वितीय रूप में होगा। उसमें अनेक वेद के विषयों पर प्रकाश पड़ता रहेगा। संसार के विशेष म्यूजियमों में यह वेदविज्ञान-मन्दिर भी गिना जायेगा, जो २० विषयों के विशेष चित्र तथा फिल्मादि द्वारा ब्रह्माण्ड-दर्शन के लिये दूरवीक्षण यन्त्रादि से सम्पन्न होगा, साथ-साथ वेदविज्ञान का पठन-पाठन भी होता रहेगा। लगभग ६ एकड़ भूमि में निर्माणाधीन इस वेदविज्ञान-मन्दिर में ५० करोड़ रुपया व्यय होगा। यह भारत के किसी विशेष महानगर के समीप हो, जहां जल, बिजली, यातायात आदि की सुविधा हो।

इस पुस्तक का लिखने प्रयोजन यह है कि वर्तमान में जो मिथ्या विकासवाद की शिक्षा पढ़ायी जा रही है, उसका निराकरण होकर सत्य शिक्षा का प्रचलन हो।

अदूरदर्शी राष्ट्रों के अधिकारी करों के लोभ के कारण राष्ट्रवासियों को मुर्दा-मांस, सड़ी शराब, गन्दे अण्डे आदि तथा विविध प्रकार की नशीली गोलियां और सभी नशीले पदार्थ खिला रहे हैं। इससे मनुष्य मनुष्य नहीं अपितु पशु से भी बदतर राक्षस प्रवृत्ति का बन रहा है और कुत्तों के समान सूखी हड्डी पर आपस में लड़-मर रहा है। इसीके कारण बलात्कार, अपहरण, हिंसा आदि अपराधों की घटनायें बढ़ती ही जा रही हैं। जिससे सभी देशवासी बहुत भयभीत हैं और अशान्त हो रहे हैं। अतः यदि सभी को सुख और शान्ति चाहिये तो देश में सर्वत्र वेद की शिक्षा तथा सत्य विद्याओं का प्रकाश और मानवता का आचरण आवश्यक है।

सृष्टि का इतिहास भी देश में असत्य पढ़ाया जा रहा है। आदि मानव के स्वरूप में बहुत मिथ्या धारणायें प्रचलित की जा रही हैं, जिन में कि उसका गूंगापन, कालापन, मांसाहारी, जङ्गली इत्यादि स्वरूप बताया जाता है।

इन सब भ्रान्त धारणाओं का निराकरण इस पुस्तक के अध्ययन से होगा। वर्तमान में हम जिनको आदिवासी कहते हैं, वे भी तिब्बत पर

ही उत्पन्न हुए थे और भ्रमण करते-करते भूमध्य रेखा के पास बसने से गर्मी के कारण लाखों वर्षों में काले हो गये। ऐसा नहीं है कि वे पूर्व से ही वहां रहते थे। वे सभी आदि मानव के ही वंशज हैं। जो उत्तरी ध्रुव के द्वीपों में प्राणी हैं, उन का वर्ण गौर है और मध्य द्वीपों में रहनेवाले सांवले हैं। आहार, श्रम तथा जल-वायु के कारण सभी का रूप-रङ्ग बदलता रहता है।

भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भाषा की शिक्षा होना बहुत ही आवश्यक है। आदर्श महापुरुषों का आदर्श चरित्र तथा योग, उद्योग और सहयोग की आदर्श शिक्षा सभी को अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिये। इसी से विश्व में सुख-शान्ति होगी। लेखक भारत सरकार से तथा भारतवासियों से यही चाहता है।

मैंने वर्तमान महासमर की व्यस्त परिस्थितियों में भी बैंक से लोन लेकर इस 'वैदिक-सृष्टि-विज्ञान' पुस्तक के प्रकाशन का प्रयास किया है। आशा है पाठक लोग सृष्टि-विज्ञान के प्रचार में पुस्तक और चित्रपट का अधिक से अधिक मंगाकर प्रचार करेंगे।

इस पुस्तक में जो-जो सत्य सिद्धान्त बताये गये हैं और जो-जो भी सत्य-प्रकाशक विद्यायें बतायी गयी हैं, वे सब परमपिता परमेश्वर के द्वार रचित हैं। वेद रूपी ज्ञान, जो सारे संसार में फैला हुआ है तथा जिसका प्रकाश परमेश्वर ने मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये किया है, वह वेद भी उस स्रष्टा का संविधान है और जो सिद्धान्त ऋषि-मुनि दार्शनिकों ने तथा महर्षियों ने दिखाये हैं, वह सब हमारे गुरुजनों का है तथा यह उनकी हमारे ऊपर बहुत बड़ी कृपा है। यह उनका हमारे पर ऋण है।

इस अति स्वल्प कार्य में यदि कोई त्रुटि किसी पाठक को दृष्टिगोचर हो, तो वह मेरी अपनी सिद्धान्त-विपरीत भूल होगी। पाठक महानुभावों से नम्र निवेदन है कि जो भी भूल उन्हें कहीं पर दिखायी दे, उसे कृपा करके मुझे बताने का कष्ट अवश्य करें। मैं उस भूल का आगे संस्करण में सुधार कर लूंगा। मैं ऐसे पाठक महानुभावों का विशेष रूप से पूर्ण आभारी रहूंगा।

१९७२ में पूज्य पं० सत्यदेव जी वासिष्ठ (भिवानी) कह रहे थे कि यह कार्य कब से आरम्भ किया है ? मैंने कहा कि पण्डित जी ! लगभग

६ मास से मैं यह कार्य कर रहा हूं। तभी पण्डित जी ने कहा कि यह कार्य तो वहुत वड़ा है, ६ मास का कार्य नहीं हो सकता। मैंने कहा कि पण्डित जी मैं सत्य कह रहा हूं, पिछले २५ वर्षों से मैं इस विषय में अध्ययन और मनन कर रहा हूं। तव गुरु जी ने पुनः कहा कि ये पूर्व जन्म के संस्कार अब उदय हो गये हैं। विद्या और साधन न्यून है, कार्य अधिक कर रहे हैं, सफलता निश्चित मिलेगी। बस अब क्रमशः बीस वर्षों के वाद सफलता मिल रही है।

मनुष्य मनुष्य को क्या देता है ?
प्रभु देता है नाम मनुष्य का होता है ॥

भारत के महामहिम राष्ट्रपति श्री माननीय डा० शङ्करदयाल शर्मा तथा माननीय प्रधानमन्त्री श्री पी० वी० नरसिंहा राव जी के शासन-काल में इस पुस्तक के द्वारा यश कीर्ति श्री तथा लक्ष्मी प्रभूत मात्रा में भारत को मिले, यही मेरी परम अभिलाषा है। यह सब तभी सम्भव होगा जब यह पुस्तक संसार के तथा भारत के जितने भी विश्वविद्यालय और पुस्तकालय हैं, उन सभी में प्रचारित हो। आगे जैसी परमेश्वर की इच्छा हो।

विद्वानों का सेवक—
व्रतपाल सिद्धान्तशास्त्री

विषय-सूची

—:०:—

—:o:—

उत्तरार्ध

विषय-सूची

—:०:—

चित्र-परिचय

—:०:—

अशुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	१५	चिन्ता ना करें।	चिन्ता ना करें। पूर्ववत् मन्दिर का कलश बनवाया।
३८	५	३२० दिन और ३२०	३६० दिन और ३६०

भूनभ से उत्पन्न पक्षी पशु मानव बोली, भाषा, बोलनेवाला था।
—अथर्व० १२।१।४५॥
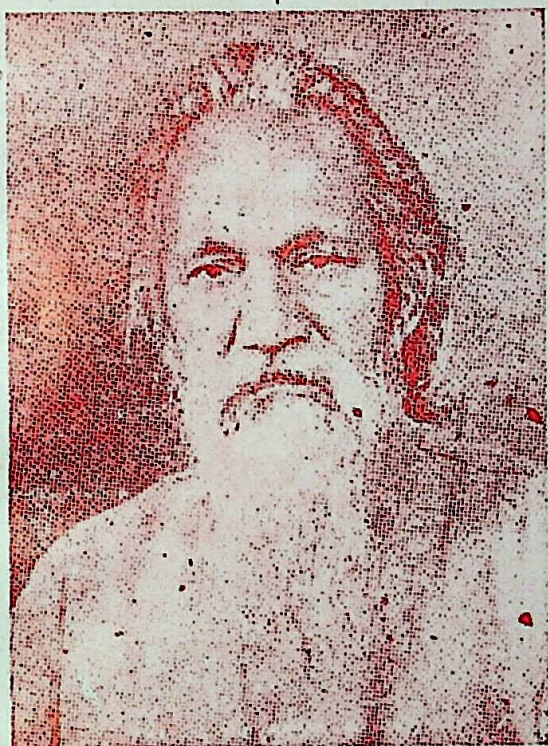
पूज्यपाद गुरुवर्य पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु पदवाक्य प्रमाणज्ञ

पूज्यपाद गुरुवर्य पं० युधिष्ठिर जी
मीमांसक शिरोमणि

श्री १०८ पं० सत्यदेव जी वासिष्ठ
दूत नाडीज्ञ

करुणार्नूतिभ्यो गुरुभ्यो नमः की पावन-स्मृति में समर्पित ।
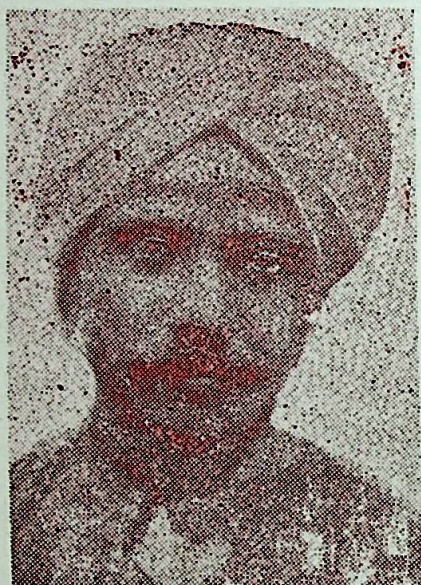
पूज्यपाद पिता जी
स्वर्गीय श्री सीताराम जी साहू

पूज्या माता जी
स्वर्गीय कौशल्याबाई

आदित्य ब्रह्मचारी पं० विजयपाल जी
आचार्य
पाणिनि महाविद्यालय बहालगढ़

लेखक व्रतपाल आर्य
वैदिक सृष्टि विज्ञान प्रवक्ता

पूज्यपाद माता पिता की पावन-स्मृति में समर्पित ।
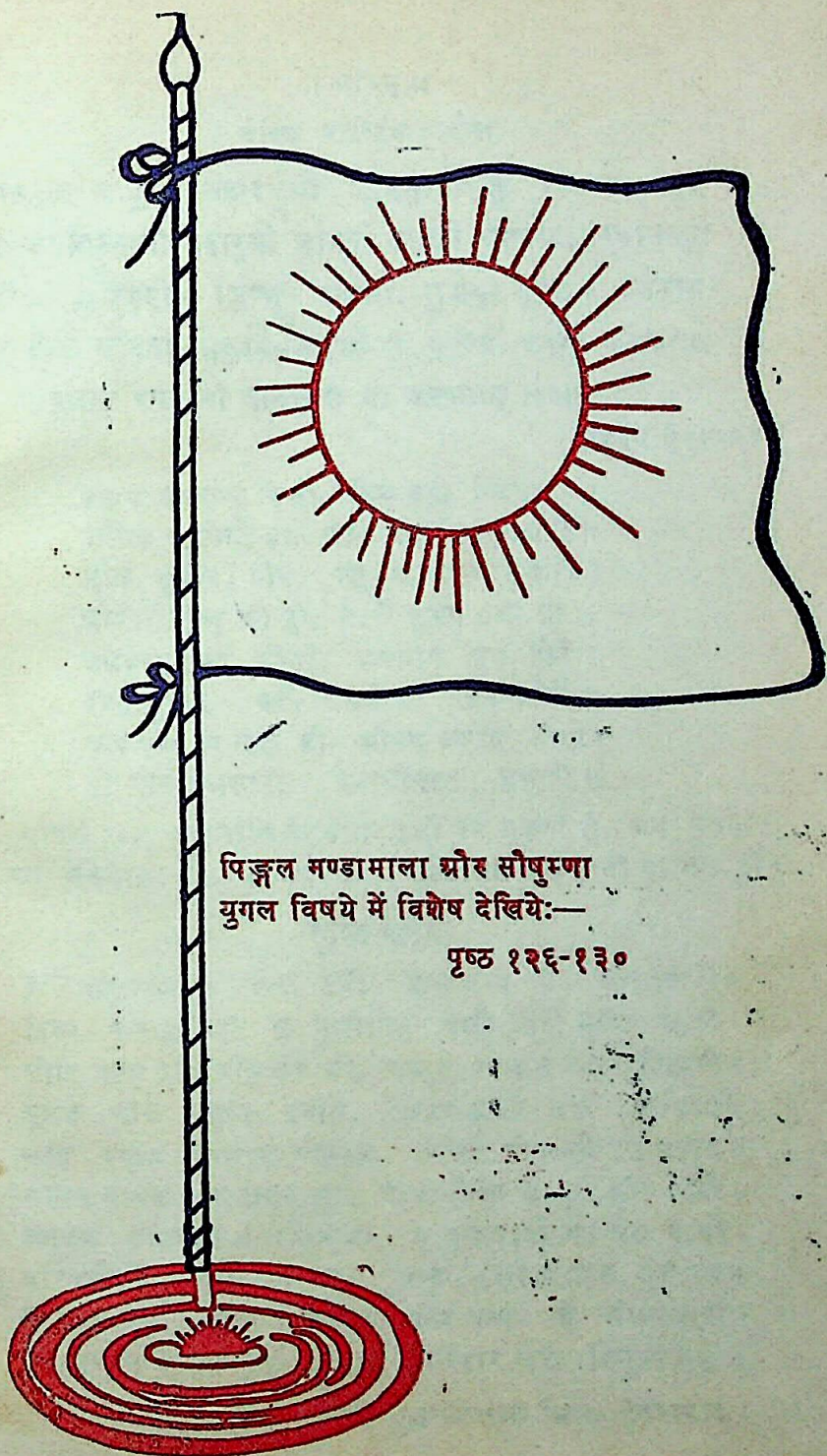
पिङ्गल मण्डामाला श्रौर सौषुम्णा
युगल विषये में विशेष देखिये:—
पृष्ठ १२६-१३०
ब्रह्माण्ड में सुर्य झण्डा हैं श्रौर पिण्ड में मेरु दण्ड आधार है।
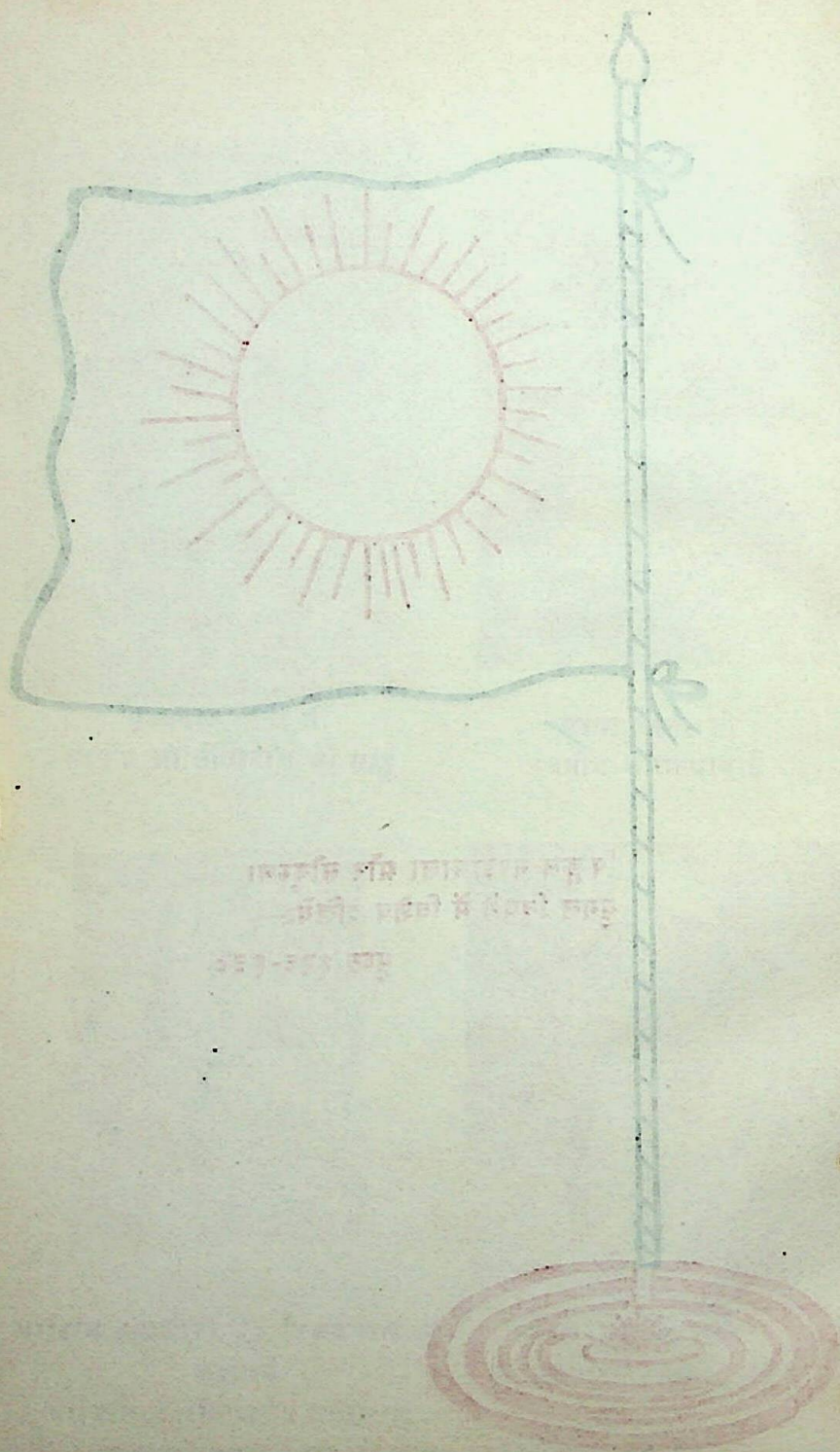
॥ ओ३म् ॥

वैदिक राष्ट्रिय-प्रार्थना

आब्रह्मन ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर
इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्रीं धेनुर्वोढानड्वानाशुः
सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमान-
स्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो
न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥२॥

(यजुर्वेद २२।२२)

ब्रह्मन् स्वराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों, अरि दल-विनाशकारी ॥
होवें दुधारु, गौवें, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग-क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

आदर्श राष्ट्र सुखशांति देनेवाला तभी बन सकता है, जब मतदाता व मत लेनेवाला दोनों ही चरित्रवान् सुशिक्षित सेवाभावी देशभक्त हों ।

सृष्टि-महिमा

है महान्तम रचना तेरी, धन्य-धन्य हे लीलाधारी ।
दिव्य कलाकृतियों से सुशोभित देखी तेरी सृष्टि सारी ।
कोटि जन्म यदि यत्न करे भी, महिमा जाये न कही तिहारी ।
सूरज चांद महान् बनाये, अधर-अधर तारे लटकाये ।
झाड़ पहाड़ विशाल समुन्दर, नाना जीव बसे उस अन्दर ।
मानव दानव और असुर सुर, नाना विधि के नर और नारी ।
अनुपम अद्वितीय तू अविनाशी, तू सुख राशी घट-घट वासी ।
परिवर्तन से रहित एक रस, ज्ञान स्वरूप अखण्ड एक रस ।
है महान्तम सृष्टि तेरी, धन्य-धन्य हे लीलाधारी ।
तेरे चरणों में शत-शत प्रणाम, स्वीकार करो विनती मेरी ।

रचयिता :— पं० मुन्नालालजी मिश्र, हैदराबाद ।

सूर्य ब्रह्माण्ड का झण्डा

महत्तम स्रष्टा ने प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्यरूपी झण्डा बना रखा है। स्रष्टा ही अनन्त ब्रह्माण्डों का राष्ट्राध्यक्ष है। ऋग्वेद में स्रष्टा को अध्यक्ष कहा है: - **यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो०** १।१२९।७।। राष्ट्राध्यक्ष की उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव, सामर्थ्य, यश, कीर्ति, तथा झण्डे से प्रसिद्धि होती है।

स्रष्टा राष्ट्रपति का वेद संविधान है। यह सकल ब्रह्माण्डों — राष्ट्रों का, जड चेतन सृष्टि का नित्य पूर्ण सर्वहितकारी सर्वोच्च संविधान है। वेद में ब्रह्माण्डों के झण्डों का विधान है—

एता देवसेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः ।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा ॥

(अथर्व० ५।२१।१२)

यह देव सेना=भद्रपुरुषों की सेना वीर सेना सूर्य का चिह्न वाला ध्वज लेकर सर्वदा विद्याबल चातुर्य से विजयी होती रहे। जो शत्रु हानिकारक विचार भेद रखते हैं, उनको प्रथम विचार-विमर्श से समझाकर अच्छी प्रकार जीते। यदि शत्रु समझाने पर ना माने तव दण्डविधान के अनुसार सर्वजन हित के लिये युद्ध करे। विजयी बनने पर विश्व में खूब प्रशंसा प्राप्त करे।

लोक में भूमण्डल में अनेक राष्ट्र हैं। सबके राष्ट्राध्यक्ष हैं, राष्ट्रध्वज हैं और राष्ट्रगान है। राष्ट्र का एक संविधान होता है। संविधान में प्रजा का पालन, पोषण, रक्षण, शिक्षा और न्याय की उत्तम व्यवस्था करने का विधान होता है और दण्डविधान द्वारा दुष्टों से प्रजा की रक्षा भी करते हैं। दोषी अत्याचारी हानिकारक व्यक्ति को संविधान के अनुसार कारागार में भी वन्द कर देते हैं और यहां तक कि मृत्यु-दण्ड भी देते हैं।

जो व्यक्ति संविधान के अनुसार अच्छे कर्म करते हैं, सेवा करते हैं और चरित्रवान् हैं, उनका सम्मान तथा उन्हें उच्चपद देकर उनको

सुखी करने का प्रयास करते हैं और पेंशन=सेवावृत्ति, सम्मान, और अनुदान देते हैं ।

भूमण्डल के राष्ट्रों के शासनतन्त्र में जो संविधान है, उसमें अनेक दोष व.कमियां हैं। शासनाधिकारी सच्चरित्रवान्, शाकाहारी, आस्तिक, अहिंसक नहीं हैं, अतः प्रजा भी चरित्रवान् नहीं है और सुख शांति के अनेक प्रयासों के करने के वाद भी सर्वत्र आतंक, हत्या, भय, अशान्ति और रोग है—यह सभी को विदित है। अतः वेदों का ही संविधान मान कर राष्ट्रों में शासन करें और सुशिक्षित चरित्रवान् स्वस्थ समाज का निर्माण करें।

सभी राष्ट्रों में मांसाहार, शराब, नशा और हिंसा बन्द करें, तभी सर्वत्र कल्याण होगा। वेद और सूर्य को आदर्श मानकर विश्व के सभी राष्ट्र शासन करें, तभी प्रजा का कल्याण होगा। ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ८० के १ से १६ मन्त्र तथा भावार्थ पाठक पढ़ें, तो उन को अधिक लाभ होगा।

सुशिक्षित चरित्रवान् सेवाभावी व्यक्ति ही मतदान करने का अधिकारी हो। मत लेनेवाला १०० गुणा अधिक योग्यता वाला हो, तभी स्वराज्य होता है, वरना विश्व में क्या-क्या हो रहा है, यह सभी जानते हैं। यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है। मानव का राज्य नहीं अपितु लुटेरों का, राक्षसों का और गुण्डों का आतंकवाद ही है। विचारें और मानवता की रक्षार्थ अति प्रयास करें।

"यूपो वै आदित्यः"

ब्रह्माण्ड में आदित्य यूप=स्तम्भ के समान है। जैसे खूंटे से बंधे पशु इधर-उधर नहीं जाते, सुरक्षित रहते हैं, ठीक इसी प्रकार आदित्य=सूर्य की रश्मियों से आवद्ध ग्रहोपग्रह वधे हैं, अपनी-अपनी परिधि में वृत्ताकार गतिमान् रहते हैं।

ब्रह्माण्ड का झण्डा सूर्य है और कपड़ा आकाश है और डोरी सूर्य-रश्मि है। स्रष्ट्रा की शक्ति दण्डरूप आधार है। यह राष्ट्राध्यक्ष का चिह्न है, इसका सभी सम्मान करते हैं। राष्ट्र चिह्न के सम्मान में राष्ट्रगान होता है, सोद्देश्य सभी उत्तम कार्य होते हैं । वेद-संविधान के

अनुसार सकल ब्रह्माण्डों में शासन चलता है, जो इस के अनुसार आचरण करते हैं, वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जो लोग विपरीत कर्म करते हैं उनको निम्न योनियों में भेज दिया जाता है।

निम्न योनियां सृष्टि के कारागार के समान हैं। जैसे कुत्ता, बिल्ली, चूहा, सूअर, स्थावर आदि योनियों में जीव बंध जाता है।

स्रष्टा ने ब्रह्माण्ड में सूर्यरूपी झण्डा बनाया है और पिण्ड में भी एक दण्डा मेरुदण्ड बनाया है। मेरुदण्ड २८ लघु शिराओं से, इडा, सुषुम्णा, पिंगला, नाडियों से संयुक्त मांस पेशियों से आबद्ध है। मेरुदण्ड शरीर का प्रधान आधार है। मेरुदण्ड सीधा रहने से शरीर सीधा रहता है, अतः सावधानी से सिद्धासन, आसन, प्राणायाम, योग, स्वाध्याय, सूर्यनमस्कार आदि से इसे दृढ़ पवित्र रखें, तभी मानव पूर्ण स्वस्थ, अरोग्यवान् और सुख शान्ति से रहता है। परिवार और समाज में उस का मान-सम्मान बना रहता है।

समाज और समज—मानव के समूह को समाज कहते हैं। मानव के उद्देश्य विविध प्रकार के होते हैं। अनेक मनुष्य संगठित होकर अपने-अपने उद्देश्य के चिह्न वाले ध्वज हाथ में लेकर चलते हैं, प्रगति करते हैं और सफल होते हैं। मनुष्य-समाज के आगे झण्डा रहता है।

पशुओं के झुण्ड को समज कहते हैं। पशुओं के झुण्ड के पीछे दण्डा रहता है। चरवाहा दण्डा लेकर पशुओं को हांकता है, पशुओं पर अनुशासन करता है, पशुओं को नियन्त्रित करता है। मनुष्य और पशु में बहुत बड़ा अन्तर है। पाठक जानते हैं कि मनुष्य कर्म-भोग-योनि वाला है और पशु केवल भोगयोनि वाला प्राणी है। मनुष्य अपने चार उद्देश्यों के लिये संसार में जीता है और पशु केवल निर्वाह मात्र जीता है, मरता है।

—:०:—

ब्रह्म-ज्ञान

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (वेदान्तदर्शन १।१)

अब यहां से ब्रह्म को जानने की इच्छा करते हैं। ब्रह्मविषयक विचार का प्रारम्भ—

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये—शब्दब्रह्म परब्रह्म च।
शब्दब्रह्मनिष्णातः परब्रह्माधिगच्छति॥

दो प्रकार के ब्रह्म को जानना चाहिये—

(१) शब्दब्रह्म, (२) परब्रह्म। शब्दब्रह्म में जो निष्णात अर्थात् वेदादि सत्यशास्त्रों के मर्म को जानता है, वही विज्ञानसाधक योगी पर-ब्रह्म को जानता है।

अनन्ता वै वेदाः—शब्दब्रह्म=नादब्रह्म अनन्त हैं।

परब्रह्म अनन्त है। शब्दब्रह्म के विना हम परब्रह्म को नहीं जान सकते हैं।

जन्माद्यस्य यतः॥ वे० द० १।२॥

जिससे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय होती है, उस ब्रह्म को जानना चाहता हूं।

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभि-संविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म॥

जिससे समस्त भूतादि ब्रह्माण्ड बने हैं, जिसके द्वारा पालित-पोषित होते हैं और प्रलय में कारणों में पुनः लीन होते हैं, उस ब्रह्म को जानना चाहिये।

ओ३म् खम्ब्रह्म (यजु० ३१।१७) ओंकार ही सर्वव्यापक ब्रह्म है।

—:०:—

स्वराज्य-सूक्त

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१)

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि चक्रवर्त्ति राज्य की सामग्री इकट्ठी कर और उस की रक्षा करके विद्या और सुख की निरन्तर वृद्धि करें।

स त्वामदद् वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।२)

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि जिन पदार्थ और कामों से प्रजा प्रसन्न हो, उनसे प्रजा की उन्नति करें और शत्रुओं की निवृत्ति करके धर्म-युक्त राज्य की नित्य प्रशंसा करें।

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।३)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमालङ्कार है। जो राजपुरुष सूर्य प्रकाश के तुल्य प्रसिद्ध कीर्तिवाले हैं, वे राज्य के ऐश्वर्य के भोगने-हारे होते हैं।

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।४)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राज्य की इच्छा करे, वह विद्या धर्म और विशेष नीति का प्रचार करके आप धर्मात्मा होकर सब प्रजाओं में पिता के समान वर्ते।

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः समाय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
'ऋ० १।८०।५)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्या का प्रकाश कर दुष्टों को दण्ड और धर्मात्माओं का सत्कार करते हैं, वे विद्वानों में सत्कार को प्राप्त होते हैं।

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।६)

भावार्थः -इस मन्त्र में श्लेषलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जगत् का उपकार करनेवाला सूर्य है, वैसे ही सभाध्यक्ष आदि को भी होना चाहिए।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।७)

भावार्थः—जो प्रजा की रक्षा के लिये सूर्य के समान शरीर और आत्मा तथा न्यायविद्याओं का प्रकाश करके कपटियों को दण्ड देते हैं, वे राज्य के बढ़ाने और करों को प्राप्त होने में समर्थ होते हैं।

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।८)

भावार्थः—जो विद्वान् राज्य के बढ़ाने की इच्छा करें, वे बड़ी अग्नि-यन्त्र से चलने योग्य नौकाओं को बनाकर द्वीप-द्वीपान्तरों में जा आ के व्यवहार से धन आदि के लाभों को बढ़ा के अपने राज्य को धन-धान्य से सुभूषित करें।

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।९)

भावार्थः—मनुष्यों को विरोध के विना छोड़े परस्पर सुख कभी नहीं होता। मनुष्यों को उचित है कि विद्या तथा उत्तम सुख से रहित और निन्दित मनुष्य को सभाध्यक्ष आदि का अधिकार कभी न देवें।

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१०)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अत्यन्त बल और तेज से सबका आकर्षण और प्रकाश करता है, वैसे सभाध्यक्ष आदि को भी उचित है कि अपने अत्यन्त बल से शुभ गुणों के आकर्षण और न्याय के प्रकाश से राज्य की शिक्षा करें ।

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।११)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सभा-प्रबन्ध के होने से सुखपूर्वक प्रजा के मनुष्य अच्छे मार्ग में चलते-चलाते हैं, वैसे ही सूर्य के आकर्षण से सब भूगोल इधर-उधर चलते-फिरते हैं । जैसे सूर्य मेघ को वर्षा के सब प्रजा का पालन करता है वैसे सभा और सभापति आदि को भी चाहिये कि शत्रु और अन्याय का नाश करके विद्या और न्याय के प्रचार से प्रजा का पालन करें ।

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१२)

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । जैसे मेघ आदि सूर्य को नहीं जीत सकते, वैसे ही शत्रु भी धर्मात्मा सभा और सभापति का तिरस्कार कभी नहीं कर सकते ।

यद् वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१३)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य अपने बहुत से किरणों से बिजुली और मेघ का परस्पर युद्ध कराता है, वैसे ही सेनापति आग्नेय आदि अस्त्रयुक्त सेना को शत्रुसेना के साथ युद्ध करावे । इस प्रकार के सेनापति का कभी पराजय नहीं हो सकता ।

अभिष्टने ते अद्रिवो यत् स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१४)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य के योग से प्राणधारी अपने-अपने कर्म में वर्तते और सब भूगोल अपनी-अपनी कक्षा में यथावत् भ्रमण करते हैं, वैसे ही सभा से प्रशासन किये राज्य के संयोग से सब मनुष्यादि प्राणी धर्म के साथ अपने-अपने व्यवहार में वर्त के सन्मार्ग में अनुकूलता से गमनागमन करते हैं।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सन्दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१५)

भावार्थः—कोई भी मनुष्य परमेश्वर वा परम विद्वान् की प्राप्ति के विना उत्तम विद्या और श्रेष्ठ सामर्थ्य को नहीं प्राप्त हो सकता। इस हेतु से इनका सदा आश्रय करना चाहिये।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८०।१६)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य परमेश्वर की उपासना करनेवाले विद्वानों के सङ्ग प्रीति के सदृश कर्म करके सुन्दर बुद्धि उत्तम अन्न धन और वेदविद्या से सुशिक्षित सम्भाषणों को प्राप्त होकर उनको सब मनुष्यों के लिये देने चाहिये।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८४।१०)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अपनी सेना के पति और वीर पुरुषों के सेना के विना निज राज्य की शोभा तथा रक्षा नहीं हो सकती। जैसे सूर्य की किरण सूर्य के बिना स्थित और वायु के

विना जल का आकर्षण करके वर्षाने के लिये समर्थ नहीं हो सकती, वैसे सेनाध्यक्ष के विना और राजा के विना प्रजा आनन्द करने को समर्थ नहीं हो सकती।

ता अस्य पृषनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८४।११)

भावार्थः—जैसे गोपाल की गौ जल रस को पी निज सुख को वढ़ा कर आनन्द को वढ़ाती है, वैसे ही सेनाध्यक्ष की सेना और सूर्य की किरण ओषधियों से वैद्यकशास्त्र के अनुकूल वा उत्पन्न हुए परिपक्व रस को पीकर विजय और प्रकाश को करके आनन्द कराती है।

ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥
(ऋ० १।८४।१२)

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को सामग्री, वल और अच्छे नियमों के विना अनेक राज्य आदि के सुख नहीं प्राप्त होते। इस हेतु से यम-नियमों के अनुकूल जैसा चाहिये वैसा इस सब का विचार करके विजय आदि धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करें।

—:०:—

पांच सहस्र मुद्रा का अन्वेषण

गत हजार वर्ष पुरानी घटना है। किसी धनाढ्य श्रेष्ठी ने एक विशेष सरस्वती मंदिर बनवाया था, उस मंदिर के कलशादि बड़े कलात्मक ढङ्ग से थे।

श्रेष्ठी ने अपने बहीखाते में रहस्यमय ढङ्ग से यह बात लिखी कि सरस्वती मन्दिर के कलश में जो बीस फीट ऊंचा था, उस में पांच सहस्र सुवर्ण मुद्रा सुरक्षित रखी है। सङ्कट के काल में जब कभी धन की आवश्यकता हो तो, सरस्वती मन्दिर के कलश में से चैत्र शुद्धि अष्टमी, दिन के ग्यारह बजे आवश्यकता के अनुसार स्वर्ण मुद्राएं निकाल लेना चाहिये।

कालान्तर में, श्रीमान् धनाढ्य श्रेष्ठी की मृत्यु हो गई। कलश में मुद्रा सुरक्षित है, यह बात पुत्रों से गुप्त रखी थी। कुछ काल पश्चात् धन की आवश्यकता हुई। स्व० सेठजी के पुत्रों ने यह विचार किया कि पिताजी का धन का लेना-देना बहुत व्यक्तियों से था। यदि किसी को रुपया दिया हो तो बही में लिखा होगा। इस विचार से वे पुत्र बही देखने लगे।

बही में अकस्मात् लिखा देखा कि सरस्वतीमन्दिर के कलश में पांच सहस्र सुवर्ण मुद्रा तथा प्रभूत आभूषण,हीरे, मोती रखे हैं। जब अत्याव-श्यकता धन की हो तब कलश में से चैत्र शुद्धि अष्टमी, दिन के ग्यारह बजे निकाल लेना।

पुत्रों ने यह लेख पढ़ा तो बड़े प्रसन्न हुए।

धन प्राप्त करने के लिये मन्दिर के कलश को तोड़ दिया। धन नहीं मिला और कलश भी टूट गया। सेठ के पुत्रों को भारी दुःख हुआ। वे चिन्तित और परेशान रहने लगे। पड़ोसी किसी बुद्धिमान् सेठ को यह पता चला कि स्वर्गीय सेठ के पुत्र अत्यन्त दुःखी हैं। सेठ के पुत्रों को बुलाकर पूछा कि क्या बात हैं, दुःखी और परेशान क्यों हो रहे हो, कारण बताओ।

सेठ के पुत्रों ने उन को बही का लेख सुनाया और कहा कि उस लेख के अनुसार सरस्वती मन्दिर का कलश तोड़ डाला। धन नहीं मिला और मन्दिर का कलश भी टूट गया, इसलिये हम दुःखी हैं।

पड़ोसी सेठ ने विचारा कि स्वर्गीय सेठ ने रहस्यमय ढङ्ग से लिखा होगा। सेठ के पुत्रों से बही मंगवायी और बही के लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ा। बात समझ में आ गयी।

मन्दिर के कलश में धन रखा है। चैत्र शुद्धि अष्टमी दिन के ग्यारह बजे धन निकालने का लेख है।

दिन के ग्यारह बजे धन निकालने का मतलब है कि मंदिर के कलश की छाया जहां भूमि पर पड़ रही है, वहाँ धन भूमि में रखा है। मन्दिर का कलश तोड़ देने पर भी धन नहीं मिला, निश्चित ही भूमि में धन रखा है।

पड़ोसी ने सेठ के पुत्रों को कहा कि धन आप को मिल जायेगा, किन्तु चैत्र शुद्धी अष्टमी, दिन के ग्यारह बजे मैं निकालके दूंगा। आप लोग चिन्ता ना करें।

पुत्रों को आश्चर्य हुआ कि धन (कलश) कहां मिलेगा, कलश को तो हमने तोड़ दिया। सेठ ने पुनः आश्वासन दिया कि धन अवश्य मिल जायेगा किन्तु चैत्र शुदि अष्टमी दिन के ग्यारह बजे तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

आगामी चैत्र शुद्ध अष्टमी के दिन पुत्रों ने पड़ोसी सेठ को जाकर कहा कि समय हो गया है, पड़ोसी सेठ और पुत्रों ने चार कर्मचारी लेकर मन्दिर की कलश की छाया जहां भूमि पर पड़ रही थी, वहां खोदना आरम्भ किया। कुछ समय बाद संपूर्ण धन पुत्रों को मिल गया। स्वर्गीय सेठ के पुत्र अति प्रसन्न हुए और कहा कि जब आप को भूमि में धन था, यह मालूम हो गया था, तब आपने हम को चार मास पूर्व क्यों नहीं बताया ?

पड़ोसी सेठ ने उन्हें अपनी बुद्धि का चमत्कार बताते हुए कहा कि यदि मैं पहले बताता तो आप भूमि को खोद के परेशान होते, क्योंकि चैत्र शुदि अष्टमी के मास में उत्तरायण काल होता है, कलश की छाया के परिवर्तन के कारण ठीक निशान पर धन नहीं मिलता। चैत्र शुद्ध अष्टमी दिन के ग्यारह बजे बही में लिखा था, अतः ठीक सही

स्थान पर धन मिल गया। धन मिलने पर पुत्रों ने सेठ को शतशः धन्यवाद दिया।

बही का लेख पुत्रों ने भी पढ़ा था परन्तु अन्यथा समझे, हानि और दुःख उठाया, बुद्धि से काम नहीं लिया। पड़ोसी बुद्धिमान् सेठ ने बही की बात को ध्यान पूर्वक पढ़ा और अपनी बुद्धि से विचारा कि दिन का सम्बन्ध छाया से है। बस, धन कहां है मालूम हो गया। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त हैं।

ठीक इसी प्रकार हमने भी वेद के मन्त्रों को विचारा, सूत्र के सूत्र को समझा और संस्कारविधि में धरती और नारी के उपमा उपमेय सम्बन्ध पर विचारा। बस **प्रकृति के रहस्य पृथिवी में और पृथिवी के रहस्य नारी में देखे।** सूत्र समझ में आ गया—**दशमे मासि सूतवे।** अथर्ववेद ५।२५।१०,१३ और **यो विद्यात्० सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्०** अथर्ववेद १०।८।३७ समझा कि नारी गर्भवती होने के पूर्व ऋतुमती ऋतुस्नाता होती है।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।

अथर्ववेद ६।१७।१, २, ३, ४॥

पृथिवी गर्भधारण के पूर्व जलनिमग्न होती है। जलप्लावन=सन्धि काल, भुक्त भोग्य काल नहीं। पूर्वापर सब विषय की संगति लग गई। हम ने स्त्रीचक्र ही बना दिये। अनेक सिद्धान्त लिखे हैं। ध्यानपूर्वक विचारें।

दुराग्रह, अज्ञानता, अन्ध श्रद्धा से विज्ञान का किसी को भी प्रकाश नहीं मिलता। अतः सभी को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना ही चाहिये।

—:०:—

रहस्यमय दो पेटियां

यूरोपदेशवासी एक धनाढ्य वृद्ध ने अपने बुद्धिचातुर्य से समान आकार की दो पेटियां लेकर एक में स्वर्ण के आभूषण, रत्न और मुद्राएं तोलकर रखा और दूसरी पेटी में आभूषण के तोल के रूप में वेट(भार) पाषाण रखा।

उन दोनों पेटियों को सेठ ने सील बन्द करके अपने विश्वासपात्र पड़ोसी के पास अमानत के रूप में रखा। पड़ोसी मित्र से कहा कि मेरे पुत्र बहुत छोटे हैं, बड़े होने पर उनको यह दो पेटी दे देना। और मित्र से इन पेटियों में क्या है कुछ नहीं बताया और न ही पेटी में वा अन्यत्र कोई लिखित पत्र रखा, न ही पुत्रों से इसका जिक्र किया। कुछ वर्षों के उपरान्त धनाढ्य वृद्ध की मृत्यु हो गई।

जब बच्चे जवान हुए तब उस विश्वासी मित्र ने स्वर्गीय धनाढ्य के पुत्रों को बुलाकर दो पेटी अमानत जैसी थी वैसे ही लौटा दी और कहा कि आपके पिता ने यह दो पेटी अमानत के रूप में रखी थी, यह आप ले जाओ।

पुत्रों ने धन्यवाद दिया और दोनों पेटी घर ले आए। घर में पुत्रों ने एक पेटी को खोला तो उसमें स्वर्ण के आभूषण, हीरे, मुद्राएं देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए कि पिता हमारे लिए प्रभूत धनराशि छोड़ गये हैं। तत्काल दूसरी पेटी भी खोली, उसमें केवल पाषाण के टुकड़े ही रखे थे। पाषाणों को देखकर पुत्रों को यह मिथ्या अनुमान हो गया कि दूसरी पेटी में भी स्वर्ण मुद्राएं आदि थीं और वे पड़ोसी चाचा ने अवश्य ही निकाल लीं।

पुत्र क्रोध में आकर उस पड़ोसी चाचा के पास गये और कहा कि आपने एक पेटी में से आभूषणादि निकाल पत्थर भर दिये हैं, यह ठीक नहीं किया, आपने विश्वासघात किया है। पहले पेटी में स्वर्ण मुद्राएं आदि जितनी हैं,उतनी लौटा दें।

पड़ोसी चाचा ने धैर्यपूर्वक उन पुत्रों से कहा कि हमें कुछ नहीं मालूम पेटियों में क्या था, न ही तुम्हारे पिता ने पेटियों के आभूषणादि

के विषय में हमसे कुछ कहा। पुत्रों को पड़ोसी की बात पर विश्वास नहीं हुआ और वे चाचा से झगड़ा करने लगे। और यहां तक झगड़ा बढ़ गया कि मारपीट होने लगी। परिणाम-स्वरूप दोनों पार्टी कोर्ट में पहुंचीं।

स्वर्गीय पिता के पुत्रों ने पड़ोसी सज्जन पर कोर्ट में दावा कर दिया कि हमें स्वर्ण आभूषण आदि धन राशि दिला दी जाए। वादी प्रतिवादी यह बात सुनकर और दोनों पेटियां देखकर बहुत परेशान हो गये।

यदि पड़ोसी मित्र विश्वासघात करता तो दोनों पेटी नहीं देता। ईमानदारी से दोनों पेटी लोटा दी हैं तो एक पेटी में पत्थर क्यों हैं। यह बात जज और वकीलों के समझ में नहीं आई। समाचारपत्रों में रहस्यमय पेटी के नाम से उपरोक्त समाचार छपा, यह समाचार भारत के बुद्धिमान् प्रसिद्ध वकील पंडित मोतीलाल जी नेहरू के दृष्टिगोचर भी हुआ।

बस पूर्वापर विचार करने से सारी बात समझ में आ गई और फिर उन्होंने यूरोप जाकर जज से कहा कि विश्वासपात्र सज्जन सर्वथा निर्दोष है।

स्वर्गीय धनाढय के पुत्रों को यह बात समझ में नहीं आयी और कहा कि वकील साहब तथा और सभी भ्रम में है। जज और अन्य वकीलों ने पूछा कि इस पेटी में पत्थर क्यों हैं, मोतीलालजी ने तत्काल तराजू मंगाकर एक पेटी में स्वर्णादि मुद्राएं रखी, दूसरी पेटी में पाषाण टुकड़े रखे, तराजू का कांटा बराबर ठीक मध्य में ठहर गया। यह बाट भाररूप हैं, बस सभी जज, वकील और दोनों पार्टियों को रहस्य समझ में आ गया, सभी प्रसन्न हो गये।

वहां जितने भी लोग उपस्थित थे वे सभी स्वर्गीय धनाढय वृद्ध की प्रशंसा करने लगे और विश्वासपात्र पड़ोसी सज्जन की भी प्रशंसा करने लगे। स्वर्गीय वृद्ध के पुत्रों ने भी क्षमा मांगी और सभी को धन्यवाद दिया।

कैसी भी रहस्यमय परोक्ष बात हो या घटना हो, उसको चातुर्य से

समझना चाहिये, पञ्चीकरण सिद्धान्त या पांच प्रकार की परीक्षा से जांचना चाहिये।

पञ्च या पञ्चायत की पांचों की बात सुनकर समझ कर निर्णय करना चाहिये।

पांच दार्शनिक सिद्धान्त से पांच सूत्र लेकर विवाद का और शङ्का का समाधान करना ही पञ्चीकरण सिद्धान्त कहाता है।

वेद, दर्शन, उपनिषद्, स्मृति, वेदाङ्ग तथा सृष्टि नियम से तुलना करने से पांचों के प्रमाण निर्णय में सहायक होते हैं।

जो बिना प्रमाण विवेकरहित बातें करता है, वह मूर्ख है। हमने भी सृष्टि विज्ञान के अनेक मन्त्र और सूत्र जो समझ में नहीं आ रहे थे, इसी प्रकार से हल किये।

जैसे जो संधिकाल है, वह भुक्तभोग्यकाल नहीं, अपितु यह जलप्लावन काल है, मानव रहते नहीं अतः भुक्त भोग्यकाल नहीं। पृथिवी और नारी में नारीत्व गुण ऋतुस्नाता गर्भधारणप्रसूता की समानता है। नारी ऋतुस्नाता होती है, पृथिवी भी जलप्लावन में भूमिजलनिमग्न होती है, पुनः गर्भवती होकर सम्पूर्ण प्रजा को उत्पन्न करती है नारी जीवनकाल में १२-१४ बार प्रसूता होती है ठीक भूमि माता भी १४ मनु में १४ बार प्रजा उत्पन्न करती है। इसीलिये भूमि को माता कहा है।

४३२ करोड़ वर्षों में १४ बार भूमि का प्रसवादि का परोक्ष ज्ञान हो गया। धन्य है, पञ्चीकरण सिद्धान्त को, बुद्धिचातुर्य को। अनेक वेद के विद्वानों से इस विषय में चर्चा हुई। वेद के प्रमाण तथा भूमि और नारी के उपमा उपमेय सम्बन्ध से सभी सन्तुष्ट हो गये। सभी विद्वानों ने चित्रों के निर्माण तथा सृष्टि के रहस्यों को क्रमशः समझा और प्रत्यक्षादि पांच प्रमाणों से सिद्ध करने के लिये लेखक को भूरि-भूरि साधुवाद और आशीर्वाद मिला।

—:०:—

ओ३म् रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि

अथर्ववेद १८-१-१०
ऋग्वेद १०-१०-९

ओ३म् → प्रकृति का जोडा है

सूर्य → पृथिवी का जोडा है

नर → नारी का जोडा है
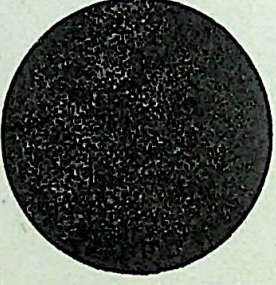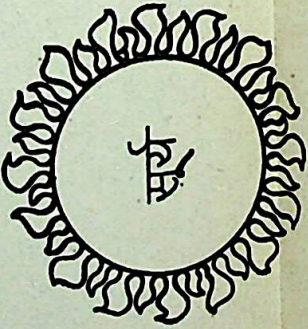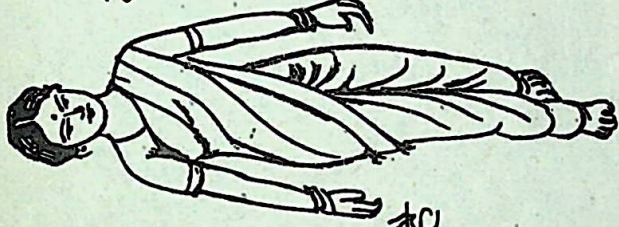
ब्रह्म दिवस → ब्रह्म रात्रि → जोडा है

लघु दिन

लघु रात्रि
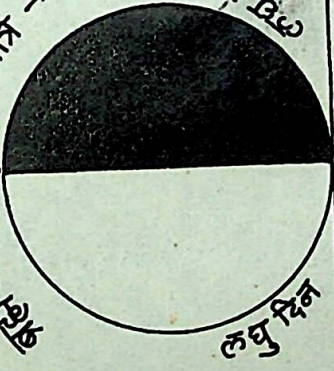
ओ३म्=सूर्य=पुरुष=जनक गुण मे समानता है।
प्रकृति=पृथिवी=नारी=जननी गुण मे समानता है
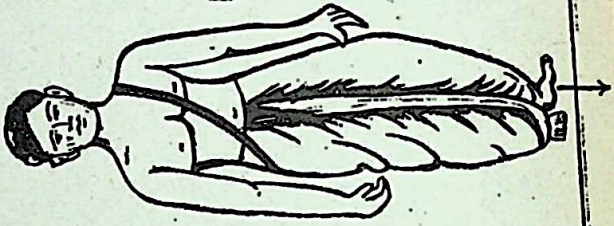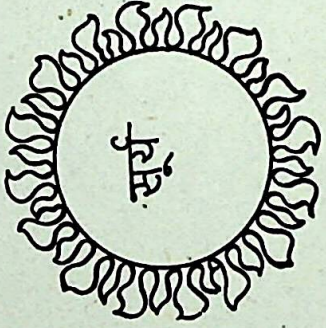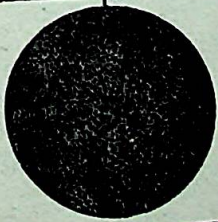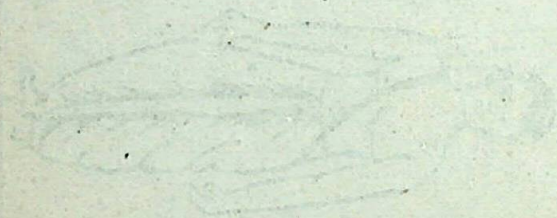
ओ३म्

सूर्य

प्रकृति

चित्र संख्या ३ ।

सृष्टि के मूलभूत सिद्धान्त

एक जोड़ा अनेक जोड़ों को उत्पन्न करता है

रात्रींभिरस्मा अहंभिर्दशस्येत् सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विवृहादजामि ।
(अथर्ववेद १८।१।१०)

निम्न वेदमन्त्र में चार प्रकार के जोड़े दर्शाये हैं—

(१) ब्रह्मरात्री ब्रह्मदिवस का जोड़ा।[1]

(२) द्युलोक पृथिवीलोक का जोड़ा। (सामवेद+ऋग्वेद का जोड़ा[2]) सामाहं ऋचस्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं ·· ····· जनयावहै।
(अथर्व० १४।२।७१॥)

(३) यम-यमी (नर-नारी का जोड़ा)।

(४) प्रकृति+विष्णु का जोड़ा।[3]

जगत्पति विष्णु और अदिति प्रकृति पत्नी मिलकर असंख्य द्यावा-पृथिवी के जोड़ों को उत्पन्न करते हैं। एक-एक द्यावापृथिवी अपने स्थिति काल में असंख्य योनियों के जोड़ों को उत्पन्न करते हैं। एक-एक योनि वाले असंख्य जोड़े हैं। प्रत्येक योनिवाला जोड़ा अपने जीवन-काल में अनेक जोड़े उत्पन्न करता है। जैसे नर नारी का जोड़ा अपने जीवन-काल में पांच-छः जोड़े उत्पन्न करता है, अर्थात् दस-बारह लड़के-लड़कियों को उत्पन्न करता है। पुनः वे लड़के-लड़कियां अपने-अपने जीवन-काल में अनेक जोड़े उत्पन्न करते हैं। यह परम्परा पशु आदि योनियों में सर्वत्र

---

१. ब्रह्मदिवस की आयु चार सौ बत्तीस करोड़ वर्ष है, इसी प्रकार ब्रह्मरात्रि की आयु चार सौ बत्तीस करोड़ वर्ष है। ब्रह्मदिवस में द्यावापृथिवी की आयु चार सौ बत्तीस करोड़ वर्ष है।

२. सामवेद और ऋग्वेद का जोड़ा प्रकृति और परम पुरुष विष्णु के समान नित्य है।

३. 'अदित्यै विष्णुपत्न्यै०' (यजु० २९।६०)।

दिखाई देती है। सृष्टि-उत्पत्ति का परोक्ष ज्ञान समझने का प्रत्यक्ष प्राकृतिक सृष्टि के नियम में देखना चाहिये।

मानव आदि की उत्पत्ति सृष्टि के आदि में असंख्य जोड़ों में हुई है। इस वैवस्वत मन्वन्तर के आदि में चालीस हजार नर-नारी जोड़े उत्पन्न हुए हैं। इसका वर्णन वायुपुराण में विस्तृत रूप से आता है। पशु आदि अन्य प्राणियों के जोड़े भी असंख्य प्रकार के उत्पन्न हुए हैं। लोक में प्रसिद्धि है—चौरासी लाख[1] योनि इस जगत् में हैं। पुनः एक-एक योनि के असंख्य जोड़े हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी सत्यार्थप्रकाश में अनेक युवा जोड़े उत्पन्न हुए मानते हैं—

अहो रात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। (ऋ० १०।१९०।२)

यहां 'अहोरात्राणि' इस पद में बहुवचन से असंख्य दिन-रात के जोड़े बनाए हैं। एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक ब्रह्म अहोरात्र होते हैं। एक-एक ब्रह्म अहोरात्र में असंख्य लघु दिन-रात बनते हैं, यह प्रत्यक्ष है। इसी प्रकार से सर्वत्र सृष्टि में जोड़े हैं।

कई अरब योजन की विस्तृत परिधिवाले हिरण्यगर्भ में करोड़ों वर्षों में द्यावापृथिवी उत्पन्न होते हैं। द्यावापृथिवी से उत्पन्न नर-नारी कृतयुग प्रमाण में दीर्घकाय, दीर्घायु चार सौ वर्ष वाले उत्पन्न होते हैं। पृथिवी

---

१. वृक्ष, वनस्पति तीस लाख, कृमि-योनि ग्यारह लाख, जलचर नौ लाख, पक्षी दस लाख और पशु बीस लाख प्रकार के हैं। मनुष्य चार लाख प्रकार का लिखा है, किन्तु इस भूमण्डल में एक ही योनिवाला मनुष्य दिखाई देता है, यह बात विचारणीय है। अन्य प्राणियों की योनियों की गणना भी करनी चाहिये। यथार्थ का अन्वेषण करना चाहिये।

श्लोक—

जलजा नवलक्षाश्च, दशलक्षाश्च पक्षिणः।
कृमयो रुद्रलक्षाश्च, विंशल्लक्षाश्च गवादयः।।
स्थावरस्त्रिंशल्लक्षाश्च, चतुर्लक्षाश्च मानवाः।
पापपुण्यं समं कृत्वा, नरयोनिषु जायते।।

(दासबोध)

का गर्भ बड़ा होता है। वह अनेक युवा जोड़े उत्पन्न करने में समर्थ होती है। जैसे हाथी का गर्भ डेढ़ वर्ष, ऊंट का १५ मास, घोड़े का एक वर्ष, गाय का नौ मास का होता है। जिसका जितना शरीर बड़ा होगा, उस का उतना गर्भ और गर्भकाल बड़ा होगा। उतनी उस की आयु बड़ी होगी। जिसका जितना शरीर छोटा होगा, उसका उतना गर्भाशय और गर्भपिण्ड छोटा होता है और उसकी उतनी आयु छोटी होती है। जैसे—बकरी, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, मयूर, मुर्गी, मछली, चींटी आदि।[1]

गाय कभी बछड़ा, कभी बछड़ी उत्पन्न करती है। बकरी एक साथ दो बच्चे देती है–एक नर, एक मादा। कुत्ती चार बच्चे देती है, उसमें नर-मादा होते हैं। इसी प्रकार बिल्ली, चूहा आदि के भी बच्चे होते हैं। कबूतरी दो अण्डे देती है–एक नर, एक मादा। मुर्गी अनेक अण्डे देती है, उसमें भी अनेक नर-मादा होते हैं। यह प्रत्यक्ष सृष्टि परोक्ष सृष्टि का प्रमाण है।

—:o:—

सृष्टि जड़-चेतन में भी सर्वत्र जोड़ा

सुन्दर	सुन्दरतर	सुन्दरतम
१. प्रकृति		परम पुरुष
२. पृथिवी	सूर्य	
३. भूमि माता	सूर्य पिता	
४. नारी	नर	
५. ब्रह्म रात्रि	ब्रह्म दिवस	
६. रात	दिन	
७. शरीर	आत्मा	
८. गाय	बैल	
९. घोड़ी	घोड़ा	

---

१. बड़े योनिवाले पिण्डों की उत्पत्ति का काल अधिक है। वे कम संख्या में उत्पन्न होते हैं और उन की आयु भी अधिक होती है। और छोटे-छोटे योनिवाले पिण्डज अण्डजों की उत्पत्ति का काल कम होता है और वे अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं तथा उनकी आयु भी न्यून होती है।

१०. हथिनी हाथी
११. मोरनी मोर
१२. कछुवी कछुवा
१३. सर्पिणी सर्प
१४. पिपली वृक्ष पीपल वृक्ष
१५. वटी वट
१६ मुर्गी मुर्गा

प्रकृति परम पुरुष का सूक्ष्मतम जोड़ा है, प्रकृति से परम पुरुष (स्रष्टा) सुन्दरतम है। प्रकृति सदा सुहागिन है, क्योंकि स्रष्टा नित्य है। इस जोड़े में एक जड़ है, दूसरा चेतन है।

पृथिवी और सूर्य बृहत्तम जोड़ा है। ये दोनों जड़ हैं। इनमें जो क्रिया अथवा घटनायें होती हैं, वे स्रष्टा के सन्निधान से होती हैं। भूमि और सूर्य की आयु ४३२ करोड़ वर्ष है।

पृथिवी से सूर्य बड़ा है और सुन्दरतर है। लोक में नर-नारी का जोड़ा है। इनकी लगभग १०० वर्ष की आयु होती है। इन दोनों के शरीर चेतन हैं। नारी से नर सुन्दर, बड़ा, बलवान्, रक्षक तथा पोषक है।

ब्रह्मदिवस और ब्रह्मरात्री का जोड़ा कालवाची महत्तम है। इन ब्रह्मदिवस और रात्री का काल ८६४ करोड़ वर्ष है। इसी का लघुतम जोड़ा दिन-रात २४ घण्टे का है।

यह प्रत्यक्ष है कि रात्री सुन्दर है और दिन सुन्दरतर है। ऊपर लिखित तालिका में प्रकट होता है कि पशु मानव आदि में सर्वत्र सुन्दर सुन्दरतर और सुन्दरतम जोड़े हैं।

शरीर सुन्दर है किन्तु शरीर से सुन्दर आत्मा है। आत्मा के अस्तित्व में ही शरीर का सौन्दर्य है। अतः सृष्टि में सर्वत्र जोड़ों में अथवा द्वन्द्वात्मक तत्त्वों में जो सुन्दरता है, वह चेतनतम सुन्दरतम स्रष्टा के अस्तित्व के कारण ही है।

सुन्दर आत्मा से परमात्मा अधिक सूक्ष्मतम चेतनतम सुन्दरतम है। आत्मा स्वरूप से एक चेतन तत्त्व है। नर-नारी की आत्मा में कोई अन्तर नहीं है।

—:०:—

समानता और विषमता

सृष्टि जोड़े में बनती है। हमने पूर्व चार प्रकार के जोड़ों की चर्चा की है—

१. परम पुरुष+प्रकृति ।
२. द्यौ और पृथिवी ।
३. नर और नारी ।
४. आत्मा और शरीर ।

इन जोड़ों में परम पुरुष, सूर्य और नर—इन तीनों में उत्पादक=जनक गुण में समानता है। पहले पुरुष जनता है, इसलिए उसको जनक कहते हैं। बाद में स्त्री गर्भवती प्रसूता होकर जननी कहलाती है।

जनिता[1], सवितः[2], प्रसूता[3]—ये स्रष्टा के नाम हैं।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
(अथर्व० ९।१।१२)

प्रकृति, भूमि, नारी—इन तीनों में जननी गुण में समानता है। स्रष्टा के सन्निधान से प्रकृति जननी विविध ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है। द्युलोक[4] के द्वारा। पृथिवी गर्भवती होकर विविध प्रकार के पिण्डों को उत्पन्न करती है, इसलिये पृथिवी माता=भूमि माता[5] कहाती है। लोक में प्रत्यक्ष है कि पुरुष के द्वारा स्त्री गर्भवती होती है।

सृष्टि में हम देखते हैं कि केवल पुरुष सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता और न नारी केवल सन्तान को उत्पन्न कर सकती है। नर और नारी दोनों मिलकर ही प्रजा उत्पन्न करते हैं। कोई भी अकेला पुरुष कलाकार

---

१. 'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता ।'
वह हमारा परमेश्वर जगत् का जनक, विधाता और बन्धु है।
२. 'तत् सवितुर्वरेण्यम् ।' 'विश्वानि देव सवितर् ।'
वह सविता उत्पादक जगत् का ऐश्वर्यप्रदाता देव है।
३. 'बृहस्पतिः प्रसूता' (यजुर्वेद १२।८९)
परमेश्वर और सूर्य के लिये बृहस्पति प्रसूता पद का प्रयोग है।
४. 'द्यौष्पिता पृथिवी माता ।'
५. 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ।'
(अथ० १२।१।१२)

जड़ वस्तु का निर्माण करे, तब भी उपादान वस्तु की आवश्यकता होती ही है। इसी प्रकार स्रष्टा सर्वसामर्थ्यवान् और सर्वज्ञ होने पर भी प्रकृति के बिना कुछ नहीं बना सकता। केवल प्रकृति भी सृष्टि को नहीं बना सकती; क्योंकि प्रकृति जड़ है। जड़ प्रकृति में गति और चेष्टा करने का सामर्थ्य नहीं है।

ज्ञान का अधिकरण आत्मा है। कुछ भौतिकवादी प्रकृति द्वारा सृष्टि का निर्माण अपने आप मानते हैं। यह उनका सर्वथा भ्रम है, क्योंकि ऐसा होना असम्भव है। आत्मा के बिना शवरूपी पिण्ड में गति, चेष्टा और ज्ञान नहीं होता है, अतः शव कुछ भी निर्माण नहीं कर सकता। जल, वायु और अग्नि के प्रभाव के कारण शव सड़ता है, गलता है तथा जलता है। ऐसे ही अद्वैतवादी केवल ब्रह्म से सृष्टि मानते हैं, वह भी उनका अज्ञान तथा मिथ्या भ्रम है।

सृष्ट्यादौ सृष्टिकर्ता स प्रतिमन्वन्तरं प्रभुः।
अनेकविधजीवानां युगलांस्तु पृथक् पृथक्॥
निर्माय पृथिवीगर्भे लघूनां महतामथो।
सृष्टिं विरचयामास जगतां तस्थुषां तथा॥
करोति सर्वाणि कार्याणि ब्रह्माण्डे पुरुषोत्तमः।
जीवात्मनोऽपि पिण्डेषु तथा कर्माणि कुर्वते॥

(ब्रह्मस्मृति)

सृष्टिकर्ता सृष्टि के आदि में प्रतिमन्वन्तर पृथिवी के गर्भ में जीवों से संयुक्त नर-नारी के पिण्ड पृथक्-पृथक् बनाता है। जैसे सृष्टि में छोटे-बड़े पिण्ड हैं, उसी प्रकार के उसने छोटे-बड़े पिण्ड बनाए थे।

पुरुषोत्तम स्रष्टा ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार के कर्मों को करता है, जीवात्मा भी उसी प्रकार अपने-अपने शरीर से पिण्डों को बनाते हैं। परमात्मा जड़-चेतन सृष्टि बनाता है, जीव भी जड़-चेतन सृष्टि बनाता है।

स्रष्टा महत्तम एक तत्त्व है। वह सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, सर्वाधार, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है, अपरिवर्तनशील नित्य सृष्टि का स्रष्टा और द्रष्टा है।

द्युलोक का सूर्य भी बृहत्तम जड़ सुन्दरतर और चुम्बकीय अग्नि का विशाल महापिण्ड ग्रह है। उसमें स्रष्टा के सहयोग से क्रियायें होती हैं। इसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होती हैं।

नर लघु पिण्ड = भौतिक शरीर + आत्मा से संयुक्त है। लघु पिण्ड के जन्म, जीवन और मृत्यु होते हैं। जीवात्मा के इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, ज्ञान और प्रयत्न गुण हैं।

प्रकृति में सत्त्व, रजस्, तमस्—इन तीनों तत्त्वों का सङ्घात है। यह अति सूक्ष्म, अति विस्तृत और जड़ है। प्रकृति सृष्टि का उपादानकारण है तथा नित्य परिवर्तनशील है।

पृथिवी ब्रह्माण्ड के ग्रहों में से एक मध्यस्थानीय ग्रह है। स्रष्टा के सहयोग से पृथिवी में अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न क्रियायें निरन्तर सम्पन्न होती रहती हैं। ऋतुस्नाता, गर्भ-धारण, गर्भवती और प्रसूतादि गुणों में यह विशेष है।

नारी अति लघु पिण्ड + भौतिक शरीर + आत्मा से संयुक्त चेतन पिण्ड है, और यह आत्मा के गुणों से सम्पन्न है। इस में भी ऋतुस्नाता, गर्भधारण, गर्भवती और प्रसूतादि गुण विद्यमान हैं। जन्म, जीवन और मृत्यु लघु पिण्ड का होता है। प्रकृति पृथिवी और नारी में बहुत बड़ा अन्तर है, यही विषमता है।

—:o:—

सृष्टि सोद्देश्य है

लोक का कोई भी कार्य विना उद्देश्य नहीं होता। स्रष्टा ने सृष्टि को सोद्देश्य बनाया है।

स्रष्टा का स्वभाव सृष्टि की उत्पत्ति करके जीवों के उपकारार्थ सृष्टि का पालन करना और यथासमय नष्ट करना है। सभी जीव उसी की व्यवस्था में कर्म करते हैं। इस विशाल सृष्टियज्ञ में तीन प्रमुख कार्य सिद्ध होते हैं।

१. एक प्रकृति का सदुपयोग।

२. दूसरा जीवों के लिये कर्मभोग-क्षेत्र का निर्माण होना, जिससे जीव नानाविध कर्म के फलों को प्राप्त करता है और विशेष कर्म करके मानवजीवन को सफल करता है।

३. तीसरा ईश्वर का सामर्थ्य, न्याय-व्यवस्था और कर्तृत्व प्रसिद्ध होता है।

वेद-दर्शनों में सृष्टिरचना के विविध प्रकार के कारणों का निर्देश है। विशेष कर पुरुषसूक्त, अदितिसूक्त, भाववृत्तमसूक्त, कालसूक्त और प्राचीन ऋषि मुनियों ने भी स्वरचित दर्शनग्रन्थों में विविध कारणों पर प्रकाश डाला है।

१. सृष्टिकर्ता का परिचय	"वेदान्तदर्शन"
२. तत्त्वों का संमिश्रण, अनुपात	"सांख्यदर्शन"
३. बुद्धि, ज्ञान-विज्ञान-पूर्वक रचना	"योगदर्शन"
४. साधनों का परिचय, जीव	"न्यायदर्शन"
५. समय और काल की व्याख्या	"वैशेषिकदर्शन
६. कर्म का महत्त्व और कर्म की विवेचना	"मीमांसादर्शन"

कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् । सांख्य ६।४१

कर्म की विचित्रता से सृष्टि में विविधता है।

परमपुरुष और पुरुष के विविध कर्म हैं, अतः सृष्टि में विचित्रता है।

जड़चेतनाभ्यां सृष्टिः । सांख्य ।

जड़ और चेतन के संसर्ग से सृष्टि होती है।

मिथुनाभ्यां सृष्टिः ।

मिथुन अर्थात् जोड़े के द्वारा सृष्टि होती है।

(१) प्रकृति, (२) महान्-बुद्धि, (३) अहङ्कार, (४) शब्द, (५) स्पर्श, (६) रूप, (७) रस, (८) गन्ध—ये प्रकृति-विकृति हैं।

(१) कर्ण, (२) त्वचा, (३) नेत्र, (४) जिह्वा, (५) नासिका, (६) हस्त, (७) पाद, (८) वाणी, (९) लिङ्ग, (१०) गुदा, (११) उभय इन्द्रिय मन—ये ११ इन्द्रियां हैं।

आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी—ये ५ महाभूत हैं।

उपर्युक्त ये सब ब्रह्माण्ड बनने के चौबीस पदार्थ हैं। इनके बनने में अनुमानतः १४२ करोड़, ५६ लाख वर्ष लगते हैं। महदण्ड बनकर और ग्रह-उपग्रह उत्पन्न होकर इन में तेजस्विता, दृढ़ता तथा इनके नियमित गतिमान् होने में ७३ करोड़ ४४ लाख वर्ष लगते हैं। इस प्रकार जड़ सृष्टि बनने में २१६ करोड़ वर्ष लगते हैं।

—:०:—

सृष्टि सकारण है।

उपर्युक्त छः दर्शनग्रन्थों में सृष्टिविषयक ज्ञान को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

१. सृष्टिकर्ता जगत् का निमित्तकारण है, जिसके विना कोई कार्य नहीं होता।

२. प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जिसके विना कोई वस्तु ना बने, वह उपादानकारण कहाता है।

३. जीव और काल सृष्टि के साधारण कारण हैं। लोक में विविध प्रकार के कारणों से ही विविध प्रकार के कार्यसम्पादन होते हैं। जैसे निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है, जो कि इस विषय के समझने में सहायक होगी।

तालिका इस प्रकार है—

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के निर्माण में ८ कारण होते हैं।

सं०	वस्तु	कर्ता	तत्त्वों का अनुपात	बुद्धियोग्यता	साधन	समय	कर्म
१	घड़ा	कुम्हार	मिट्टी, पानी, आग	विशेषज्ञाता	चक्र, दण्ड	५ घण्टा	विविध चेष्टा
२	रोटी	पाचक	आग, आटा, पानी	,,	तवा, पलटा, चिमटा	२५ मिनट	,,
३	कपड़ा	जुलाहा	कपास	बुनने का ज्ञान	करघा	३ दिन	,,
४	मकान	मिस्त्री	पत्थर, ईंट, सिमेंट पानी	वस्तु-काल-विद् विद्वान् मिस्त्री	थापी, डोरी आदि	१० मास	,,
५	पुस्तक	लेखक	कागज, स्याही	ज्ञान	लेखनी, कागज	३ मास	,,
६	औषधि	वैद्य	जड़ी, बूटी मात्रा	विशेषज्ञाता	खरल आदि	१५ दिन	,,
७	सन्तान	माता-पिता	रज-वीर्य	उत्पत्ति का ज्ञान	शरीर, इन्द्रियां	९ सौर मास	,,
८	ब्रह्माण्ड	ईश्वर	प्रकृति के २४ पदार्थ	सर्वज्ञता	जीव, काल, बुद्धि	दो अरब सोलह करोड़ वर्ष	महाकर्म

विभिन्न वस्तुओं के निर्माण में पृथक्-पृथक् कर्ता हैं। अन्य वस्तुओं के कारण आदि भी विभिन्न हैं। एक निर्माता के वस्तु को दूसरा निर्माता नहीं बना सकता, जब तक उसे तदर्थ विद्या का ज्ञान प्राप्त न हो।

मानव अल्प ज्ञान वाला तथा सीमित शक्तिवाला है, अतः उस की रचना भी सीमित है।

सर्वशक्तिमान् सृष्टिकर्ता की रचना विशाल और अनन्त है। सृष्टि-कर्ता के कार्य मानव नहीं कर सकता और मानव द्वारा किये जानेवाले भौतिकीय कार्य सृष्टिकर्ता नहीं कर सकता। अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् योग्यता तथा मर्यादा है।

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥

(अथर्ववेद १०।८।३७)

भावार्थः—जो सृष्टि के अनादि कारण जीव, ब्रह्म, प्रकृति आदि को जानता है, वह वेद-विद्या के रहस्य के द्वारा ही महान् ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

---:०: -

सृष्टि गणितमय है

सृष्टि में ग्रह-उपग्रह इत्यादि गणित से बनाये गये हैं।

इन ग्रह-उपग्रहों के आकार, व्यास, परिधि, भार, गति, विस्तार व दूरी गणित के नियम से हैं।

गणितज्ञ स्रष्टा ने सृष्टि की सम्पूर्ण रचना गणित से अनुबद्ध की हुई है। विना गणित के कोई कार्य नहीं होता। सूर्य का उदय, अस्त, चन्द्रो-दय, अस्त, चन्द्र का घटना, बढ़ना, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, समुद्र का ज्वारभाटा, ऋतुओं का परिवर्तन, सम्पूर्ण कालविभाग, सृष्टि, प्रलय, जीवों का बन्ध मोक्ष—इनकी व्यवस्था गणित से ही होती है।

अतः काल, वर्ष, युग, चतुर्युग, मन्वन्तर, ब्रह्मदिवस, ब्रह्मरात्रि तथा परान्त काल की गणना गणित से ही होती है। गणित का आरम्भ शून्य से होता है। वेद, सङ्गीतशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र—सब कुछ गणित पर आधारित है।

चाहे लोक के कार्य हों चाहे परलोक के कार्य हों—सब गणित से ही सिद्ध होते हैं।

गणित और काल की गणना शून्य बिन्दु से आरम्भ होती है। शून्य काल मध्य रात्रि से प्रारम्भ होता है। ब्रह्माण्ड और पिण्ड की रचना शून्य बिन्दु मध्य रात्रि से ही होती है। सृष्टि में शून्य और एक का बड़ा महत्त्व है। एक के पूर्व शून्य का महत्त्व कम होता है, यथा—०१। एक के पश्चात् शून्य का महत्त्व बढ़ जाता है, यथा १०। यहां आगे शून्य लगने से एक दसगुणा हो जाता है। स्रष्टा एक है और प्रकृति शून्य है। नारी नर के बाएं रहने पर प्रजावती होती है। नर पूर्ण व प्रसिद्ध हो जाता है। ऐसे ही प्रकृति स्रष्टा के साथ संयुक्त होकर पूर्ण होती है।

(अथर्व० १३।४)

—:०:—

वेद में गणित

ओ३म् इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके॥

(यजुर्वेद १७।२)

अग्निरेकाक्षरेण······अश्विनौ द्व्यक्षरेण······विष्णुस्त्र्यक्षरेण······सोमश्चतुरक्षरेण·······। पूषा पञ्चाक्षरेण···सविता षडक्षरेण···
····मरुतः सप्ताक्षरेण········बृहस्पतिरष्टाक्षरेण·······। मित्रो नवाक्षरेण वरुणो दशाक्षरेण·······इन्द्र एकादशाक्षरेण······विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण········। वसवस्त्रयोदशाक्षरेण·······रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण·······आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण·········अदितिः षोडशाक्षरेण·······प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण·······।

(यजुर्वेद ९।३१,३२,३३,३४)

यहां यजुर्वेद के ९वें अध्याय के ३१, ३२, ३३, ३४ मन्त्रों के थोड़े पद लिखे हैं। विशेष जानने के इच्छुक महानुभाव वेद में देखें अथवा

'वैदिक सम्पदा' (ले०—पं० वीरसेन जी वेदश्रमी) में वर्णित 'वैदिक गणितविज्ञान' में देखें। क्रमशः मन्त्रों में १ संख्या तक संख्यावाचक शब्द गिनाये हैं। सृष्टि के १७ पदार्थों का अपने नियत अक्षरों में रचना से जो रूप बना है, उसका भी वर्णन करके दिग्दर्शन कराया है।

'अङ्काङ्कं छन्दः' (यजुर्वेद १।५।५)

अङ्क-विद्या भी छन्द से युक्त है।

क्र०सं०	वैदिकनाम	संस्कृत	हिन्दी	
१	एका	एका	इकाई	१
२	दशम्	दशम्	दहाई	१०
३	शतम्	शतम्	सैकड़ा	१००
४	सहस्रम्	सहस्रम्	हजार	१०००
५	अयुतम्	दशसहस्रम्	दस हजार	१००००
६	नियुतम्	लक्षः	लाख	१०००००
७	प्रयुतम्	दश लक्षः	दस लाख	१००००००
८	प्रयुताम्	कोटिः	करोड़	१०००००००
९	अर्बुदम्	दशकोटिः	दस करोड़	१००००००००
१०	न्यर्बुदम्	वृन्दः	अरब	१०००००००००
११	दशार्बुदम्	खर्बः	दस अरब	१००००००००००
१२	समुद्रः	निखर्बः	खरब	१०००००००००००
१३	दशसमुद्रः	शङ्खः	दस खरब	१००००००००००००
१४	मध्यम्	पद्म	नील	१०००००००००००००
१५	दशमध्यम्	सागरः	दस नील	१००००००००००००००
१६	अन्तः	अन्त्यः	पद्म	१०००००००००००००००
१७	महान्तः	मध्यः	दस पद्म	१००००००००००००००००
१८	परार्धः	परार्ध्यः	शङ्ख	१०००००००००००००००००
१९	महापरार्धः	महापरार्धः	महाशङ्ख	१००००००००००००००००००

१ से लेकर ९ अङ्कों तक १ समाया हुआ है अर्थात् व्याप्त है। १ अङ्क जोड़, गुणा, वीजाङ्क, रेखाङ्क तथा विषमाङ्कों के रूपों में व्याप्त है और ० और १ से ९ अङ्क भी सम्पूर्ण गणित विद्या में व्याप्त हैं। ऐसे ही एक स्रष्टा सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते । य एतं देवमेकवृतं वेद ।
(अथर्ववेद १३।४।१६,१७,१८)

—:०:—

सुखस्वरूप स्रष्टा की सृष्टि सुखदायिनी है

सृष्टि में सर्वत्र सुख है, क्योंकि स्रष्टा सुखस्वरूप है। स्रष्टा ने जीवों के उपकारार्थ सुखदायिनी सृष्टि बनाई है। स्रष्टा और जीव में पिता और पुत्र के समान सम्बन्ध है। जैसे लोक में बुद्धिमान् समर्थ पिता अपनी सन्तानों के लिये आहार, वस्त्र, आवास आदि और सकल आवश्यक पदार्थों की सुन्दर सुखदायक व्यवस्था करता है, उसी प्रकार स्रष्टा भी अपने जीवों के लिये सारी व्यवस्था करता है।

प्रातःकाल उठते ही प्रत्येक मनुष्य को अपने नित्यकर्म में सुख मिलता है। मनुष्य अपने अज्ञानवश या मूर्खों के सङ्गदोष से या कर्मफल के अधीन दुःख पाता है, किन्तु सृष्टि में दुःख नहीं है, सुख ही सुख है। तभी तो जीव सृष्टि में आ सकता है और पुरुषार्थ करके अपना चरम सुख प्राप्त कर लेता है।

—:०:—

सृष्टि सकाल है

क्र० सं०	दिवस	कालविभाग-परिचय
१.	प्रातः	४ प्रहर होते हैं। सूर्योदय, प्रकाश का प्रारम्भ पूर्व दिशा में होता है। सूर्योदय और सूर्यदर्शन काल में प्रधान सात्त्विक वातावरण होता है। सूर्य सुनहरा उगता दिखाई देता है।
२.	मध्याह्न	सूर्य मस्तिष्क के ऊपर होता है। प्रखरतम प्रकाश ठीक बारह बजे होता है। उस समय पित्तप्रधान रजोगुणी वातावरण होता है।
३.	सायम्	सूर्यास्त पश्चिम दिशा में होता है। वात-

		प्रधान वातावरण, प्रकाश समाप्त और अन्धकार का प्रारम्भ होता है।
४.	रात्रि	४ प्रहर होते हैं। मध्यरात्रि में गूढतम अन्धकार ठीक १२ बजे होता है। रात्रि के प्रथम प्रहर के आरम्भ से अन्धकार की यात्रा आरम्भ होती है।
५.	उष:काल	प्रभात वेला के पूर्व का काल है, अन्धकार क्षीण होता रहता है। धुन्धला सा प्रकाश का भान और लाली पूर्व दिशा में दिखायी देती है। वातावरण में एक मस्त और सुगन्धित वायु का प्रभाव रहता है।
६.	पक्ष	पखवाड़ा १५ दिन का होता है। एक कृष्णपक्ष और दूसरा शुक्लपक्ष कहलाता है ।
७.	कृष्णपक्ष	प्रतिपदा से अमावस तक होता है। चन्द्र का प्रकाश नित्य रात्रि में धीरे-धीरे कम होता है। चन्द्र की कला नित्य रात्रि में घटती हुई दिखायी देती है।
८.	शुक्लपक्ष	प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की अवधि शुक्लपक्ष है। प्रतिरात्रि में चन्द्रमा की कला बढ़ती है। शुक्लपक्ष के मास का आरम्भ होता है।
९.	पूर्णिमा	चन्द्र पूर्ण प्रकाशित दिखायी देता है।
१०.	अमावस्या	चन्द्र पूर्ण अप्रकाशित होने के कारण दिखायी नहीं देता। मास की समाप्ति होती है ।
११.	अष्टमी	शुक्लपक्ष की अष्टमी और कृष्णपक्ष की अष्टमी की रात्रि को अर्धचन्द्र प्रकाशित होता है।
१२.	ऋतु	वातावरण का परिवर्तन होता है। ऋतुएं छः होती हैं। दो मास की एक ऋतु होती है।
१३.	मास	३० दिन का होता है। १२ मास का एक वर्ष होता है।

मासों का विवरण इस प्रकार है—

मासों के नाम	ऋतु के नाम	यजुर्वेद में वर्णन
चैत्र, वैशाख	वसन्त ऋतु	१३।२५
ज्येष्ठ, आषाढ़	ग्रीष्म ऋतु	१४।१६ माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख—ग्रीष्मकाल
श्रावण, भाद्रपद	वर्षा ऋतु	१४।१५ ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद—वर्षा ऋतु
आश्विन, कार्तिक	शरद् ऋतु	१४।१६ आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष—शरत्काल
मार्गशीर्ष, पौष	हेमन्त ऋतु	१४।२७
माघ, फाल्गुन	शिशिरऋतु	१५।५७

१४.	अयन	अयन दो प्रकार के होते हैं—(१) उत्तरायण, (२) दक्षिणायन। प्रत्येक अयन की अवधि छः मास होती है।
,,	उत्तरायण	उत्तरायण में दक्षिण दिशा से उत्तर दिशा की ओर सूर्य नित्यप्रति उगता है।
,,	दक्षिणायन	दक्षिणायन में उत्तर दिशा से दक्षिण दिशा की ओर सूर्य सरकता दिखाई देता है। पौष, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ मास में उत्तरायण और आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष में दक्षिणायन होता है।
१५.	वर्ष	वर्ष में ३६० दिन, २ अयन, ३ काल, ६ ऋतुएं और १२ मास होते हैं। वर्ष का प्रारम्भ दिन युगादि पर्व होता है। पृथिवी वार्षिक चक्र पूरा करती है। वह सूर्य की एक परिक्रमा कर लेती है। सौर वर्ष की गणना से ही युगों की गणना होती है
१६.	लघु वर्ष	लघुवर्ष ५ वर्ष का होता है।
१७.	युग	सुदीर्घ काल की अवधि का नाम एक युग है।

		प्रधान युग ४ प्रकार के होते हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। चारों युग—(१) १७२८००० (२) १२९६००० (३) ८६४००० (४) ४३२००० वर्ष।
१८.	मन्वन्तर	७१ चतुर्युगी=३० करोड़, ६७ लाख, २० हजार वर्ष की अवधि होती है। प्रतिमन्वन्तर के आदि का स्वभाव नया और अन्त का स्वभाव पुराना होता है। मन्वन्तर में विविध प्रकार के पिण्डों का जन्म, जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म होता है।
१९.	सन्धिकाल	दो मन्वन्तरों के मध्य सन्धि होती है। ब्रह्मदिवस के आरम्भ के समय में एक सन्धि और अन्त में एक सन्धिकाल होता है। १४ मन्वन्तरों के मध्य सन्धि १+१३+१=१५ आदि, अन्त की एक-एक सन्धि—कुल १५ सन्धि होती हैं। सन्धिकाल में सम्पूर्ण जलप्लावन होता है। सम्पूर्ण पृथिवी जलनिमग्न होकर पुलकितपृष्ठ होती है। सन्धि के आदि में ग्रीष्म सुदीर्घ काल तक, पश्चात् घनघोर वर्षा, पुनः शरद,सन्धि के अन्त समय पृथिवी का गर्भधारण होकर विविधप्रकारकी उद्भिज अण्डज और जरायुज प्राणी (पिण्ड) धरती के गर्भ से उत्पन्न होते हैं। सन्धिकाल में भुक्तभोग्यकाल नहीं होता। मन्वन्तर का काल आरम्भ होता है।
२०.	ब्रह्मदिवस	ब्रह्मदिवस में १४ मनु+१५ सन्धिकाल=४ अरब ३२ करोड़ वर्ष होते हैं। इस अवधि में सृष्टि का स्थितिकाल है। इस काल की संज्ञा सर्ग और कल्प भी है। ब्रह्मदिवस के पूर्वार्ध में सौरमण्डल का विकास, फैलाव और वृद्धि

होती है। उत्तरार्ध में सौरमण्डल का ह्रास, विघटन और क्षय होता है।

२१. ब्रह्मरात्रि — ब्रह्मरात्रि की एक हजार चतुर्युगी ४ अरब, ३२ करोड़ वर्ष की है। पूर्वार्ध में प्रलय और उत्तरार्ध में सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ब्रह्मरात्रि में जीव स्रष्टा की व्यवस्था के अनुसार अन्य ब्रह्माण्ड में सूक्ष्म शरीर से चले जाते हैं। जैसे देहान्त के समय जीव शरीर को छोड़ कर अन्यत्र चला जाता है, यह सर्वत्र होता है। ऋतुओं में पक्षी भी देश-देशान्तर को चले जाते हैं। ब्रह्मरात्रि के मध्यकाल में सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणों के मिश्रण का नाम प्रकृति की साम्यावस्था है। प्रकृति की अवस्था क्षणमात्र ही रहती है। स्रष्टा के सन्निधान से प्रकृति की सर्गोन्मुख प्रवृत्ति होती है। इसी काल में सृष्टि बनना आरम्भ होती है।

सृष्टिचक्र ब्रह्मदिवस और ब्रह्मरात्रि का ८६४ करोड़ वर्षों का होता है। इसी चक्र में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते रहते हैं। ऐसे सृष्टिचक्र ३६,००० हजार बार पूरे होने पर ८६४ × ३६,००० = एक परान्तकाल होता है।

एक परान्तकाल ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षों का होता है। यह मुक्ति का काल है।

८६४ करोड़ वर्षों का एक ब्रह्मदिवस और ब्रह्मरात्रि, ३६० दिन का एक वर्ष दैवी वर्ष होता है। ऐसे १०० वर्षों का एक परान्तकाल अर्थात् ८६४ × ३६० × १०० = ३१ नील, १० खरब, ४० अरब।

सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण—ग्रहणों की अद्भुत घटनाएं असंख्य वार सृष्टिस्थितिकाल में होती रहती हैं। पृथिवी, चन्द्र, सूर्य की गति के कारण ये घटनाएं होती हैं। स्रष्टा की सृष्टि गणितमय और आश्चर्यमय है। सूर्यग्रहण कभी-कभी आंशिक तो कभी-कभी पूर्ण होता है। ऐसे ही चन्द्रग्रहण कभी आंशिक तो कभी पूर्ण होता है।

सूर्यंग्रहण से पृथिवी के ऊपर प्रभाव पड़ता है। सूर्य की रश्मियों से जो लाभ गर्मी और प्रकाश से मिलता है, वह सूर्यग्रहण के समय नहीं मिलता यह हानि होती है। चन्द्रग्रहण से भी पृथिवी के ऊपर प्रभाव पड़ता है। चन्द्र-रश्मियों के माध्यम से जो सोम, अमृत प्रकाश का लाभ पृथिवी पर होता है, वह चन्द्रग्रहण के समय नहीं होता।

जहां चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण होता है, उसका सूक्ष्म प्रभाव अनुभवी विद्वान् वैज्ञानिकों को मालूम हो जाता है। सामान्य मनुष्य को तो केवल प्रकाश की कमी का ही अनुभव होता है।

१९८० में सूर्यग्रहण दक्षिण प्रान्त में महकूवनगर में देखा, वहां बड़ा अद्‌भुत दृश्य था।

विना कर्ता के अपने आप ऐसी गणितमय सृष्टि नहीं बन सकती। जो लोग अपने आप बनना मानते हैं, वे बुद्धिवाले नहीं हो सकते, हां वे लालबुझक्कड़ अवश्य हो सकते हैं।

सृष्टिकर्ता की कृति से उसकी कलाओं का भान होता है और श्रद्धा से शिर झुक जाता है।

—:०:—

कालमान

काल क्या है ? काल एक द्रव्य है। काल शब्द की निष्पत्ति 'कल गतौ संख्याने च' धातु से हुई है। प्रत्येक कार्य में निमित्त कारण काल होने से उसका वर्णन वेदादि शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से दर्शाया है। काल नित्य है, अतः पहले उसकी महिमा का वर्णन अथर्ववेद के अनुसार करते हैं—

महावलवान् काल सर्वव्यापी और अतिशीघ्रगामी, शुक्ल, नील, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण की किरणोंवाले सूर्य के समान प्रकाशमान है। उस काल को बुद्धिमान् लोग सब अवस्थाओं में घोड़े के समान सहायक जानकर अपना कर्तव्य सिद्ध करते हैं।

काल व्यापक और नित्य है। काल से ही संसार के सब कार्य सिद्ध होते हैं। मनुष्य काल के यथायोग्य उपयोग से उन्नति को प्राप्त होवे।

समय के सुप्रयोग से धर्मात्मा लोग अनेक सम्पत्तियों के साथ सद्गति

प्राप्त करते हैं। वह काल महाप्रवल सब स्थानों में परमात्मा के सामर्थ्य के वीच वर्तमान है, उसकी महिमा को बुद्धिमान् जानते हैं।

काल सब सत्ताओं में व्याप्त है। काल ही सृष्टि का पिता और पुत्र है। नित्य होने से वही काल पहले और वही पीछे है। इसी से वह काल संसार में बड़ा प्रतापी है।

काल को पाकर ही यह दीखता हुआ आकाश और पृथिवी आदि लोक उत्पन्न हुए हैं और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्य भी काल के भीतर हैं।

काल ही को पाकर सब प्रकार के ऐश्वर्य, प्रकाश और पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

काल के उत्तम उपयोग से मन और प्राण अर्थात् सब इन्द्रियों का स्वास्थ्य और यश वढ़ता है, तव ही सब प्राणी उत्तम प्रकार का सुख पाते हैं।

काल के ही उत्तम उपयोग से मनुष्य ब्रह्मचर्य के साथ श्रेष्ठ कर्म और वेद का अध्ययन करते और प्रजापालक होते हैं।

यह जगत् काल के उत्तम उपयोग से उत्पन्न होकर ठहरा हुआ है और इसके ही उत्तम उपयोग से मनुष्य अन्नादि पाकर उच्च पद पाते हैं।

प्रलय के पीछे सृष्टि के आदि में काल के प्रभाव से सब प्रजायें और प्रजापालक राजा आदि उत्पन्न होते हैं और तभी स्वयम्भू परमात्मा अपने गुणों और अद्भुत रचनाओं व नियमों के कारण विश्व में प्रसिद्ध होता है।

समय के प्रभाव से प्रलय से पीछे परमात्मा सब पदार्थों और नियमों को उत्पन्न करता और प्रलय के समय लय कर देता है। जैसे सूर्य पृथिवी के सम्मुख होने से दिखाई देता और पृथिवी की आड़ में होने से अदृश्य हो जाता है।

समय के कारण वायु, पृथिवी, आकाशादि के परमाणु संयोग पाकर साकार होकर संसार का उपकार करते हैं।

समय के उपयोग से विद्वान् लोग सत्कर्म करके सद्गति पाते हैं और काल में ही संसार के सब पदार्थ ठहरे हैं।

काल के सादर निरन्तर सेवन से मनुष्य ज्ञानी और ऋषि होकर

तथा सब व्यवहारों और समाजों में प्रतिष्ठा पाकर परमगति प्राप्त कर आनन्द भोगते हैं।

नित्य वर्तमान काल पिता के समान पहले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहता है। काल के ही प्रभाव से सब आगे-पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव होता है।

ऋग्वेद में भी काल का विभाग रूप में वर्णन मिलता है। जैसे—

"अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।"

स्रष्टा ने ब्रह्म अहोरात्र बनाये तथा उसके विभाग रूप में लघु काल अवयव और बृहत् काल अवयव भी बनाये।

बृहत् काल जैसे—**"रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्"**। इसी प्रकार से अथर्ववेद में भी वर्णन आता है।

बृहत्=ब्रह्म अहोरात्र को सहस्र संज्ञा से द्योतित किया जाता है—

"सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि" (यजु० १५।६५)

सब संसार की सहस्र संज्ञा है तथा पूर्वोक्त ब्रह्मदिन और रात्रि की भी सहस्र संज्ञा की जाती है। सो हे परमेश्वर! आप इस हजार चतुर्युगी को दिन और रात्रि के प्रमाण में निर्माण करते हैं।

सृष्टि सकाल है, वेद भी कालमय है। इसके स्वरों की ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञाएं हैं तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित संज्ञाएं भी होती हैं। ये सब गणितमय और कालमय हैं।

लघुकाल अवयव में वेद का प्रमाण—

"सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।" (यजु० ३२।८)

विशेष प्रकाशमान पूर्ण विभु ब्रह्म से सब (निमेषाः) नेत्रोन्मीलन=आंख का खोलना आदि लक्षण वाले कला काष्ठादि काल अवयव उत्पन्न होते हैं।[1]

लघु अहोरात्र के विषय में भी ऋग्वेद में वर्णन आता है। जैसे—

"वाग् वस्तोः त्रिंशद् धाम विराजति।"

---

१. ३२।२ दयानन्द यजुर्वेदभाष्य।

पृथिवी दिन रात के तीस मुहूर्तों को प्राप्त करती है।[1]

इन लघुकाल एवं दीर्घकाल का वर्णन ऋषिकल्प आचार्य प्रशस्तदेव ने 'कालनिरूपणम्' प्रकरण में भी किया है।[2]

दिन और रात दोनों को मिला कर ही वर्ष बनता है, अर्थात् वर्ष में ३२० दिन और ३२० रातें होती हैं। दिन रात के अन्तर्गत ही क्षण, मुहूर्त, प्रहर आदि अनेक प्रकार से काल के विभाग होते हैं।[3]

इस प्रकार लघुकाल एवं वृहत् काल किस प्रकार से हैं, इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया है, जिसे कालमान-सूची में विधानपूर्वक दर्शाया गया है।

काल अनन्त अपरिणामी और विभु तथा वर्तमान है। उस की न कभी उत्पत्ति होती है और न नाश होता है। इस जगत् के कारण में जो सात सौ वीस तत्त्व हैं, वे मिल के ईश्वर के निर्माण किये हुए योग से उत्पन्न होते हैं। इनका कारण अज और नित्य है। जब तक अलग-अलग इन तत्त्वों को प्रत्यक्ष न जाने, तब तक विद्या की वृद्धि के लिये मनुष्य यत्न किया करें[4]।

कौटिल्य	लघुयुग
१ वटा ४ निमेष—तुट	पांच-पांच वर्षों का एक-एक लघु
२ तुट—लव	युग होता है।
२ लव—१ निमेष · १.७६ सैकिण्ड	५ वर्ष—१ लघु युग
५ निमेष—१ काष्ठा - ३.१७६ ,,	१२ लघुयुगों का—६० वर्ष चक्र
३० काष्ठा—१ कला—६६.००,,	६० वर्षों के १२ चक्र—७२० वर्ष
४० कला—१ नाडिका	७२० वर्षों के ६०० चक्र--४३२०००
२ नाडिका १ मुहूर्त—४८ मिनट	वर्ष बनते हैं।
१५ मुहूर्त—१ अहः—१२ घण्टे	४३२०००×४—१७२८००० वर्ष
३० मुहूर्त—१ अहोरात्र—२४ घण्टे	

---

१. वैदिक ज्योतिष शास्त्र, पृ० ८१ ऋ० १०।१८९।३ (स्वा० ब्रह्ममुनि कृत)।

२. वैशेषिकदर्शन भाष्य।

३. ऋ. १।१६४।१२ (ऋ० द० भा०)।

४. ऋग्वेद १।१६४।११ (ऋ० द० भा०)।

१५ अहोरात्र—१ पक्ष—शु० कृ० पक्ष
२ पक्ष—१ मास
२ मास १ ऋतु
६ मास ३ ऋतु - १ अयन
१२ मास ६ ऋतु—२ अयन—१वर्ष

मासों के लौकिक एवं वैदिक नाम

लौकिक	वैदिक
१. चैत्र	मधु
२. वैशाख	माधव
३. ज्येष्ठ	शुक्र
४. आषाढ	शुचि
५. श्रावण	नभ
६. भाद्र	नभस्य
७. आश्वयुज	इष
८. कार्तिक	ऊर्ज
९. मार्गशीर्ष	सह
१०. पौष	सहस्य
११. माघ	तप
१२. फाल्गुन	तपस्य

ये सब वैदिक नाम यजुर्वेद अ० १४ में ६, १५, १६, २७ मन्त्र तथा अ० १५ में ५७ वें मन्त्र में वर्णित हैं। क्रमशः २-२ मास की ६ ऋतुए बनती हैं।

बृहद् युग

(१) सतयुग |
| =१७२८००० वर्ष
कृतयुग |
(२) त्रेता युग—१२९६००० वर्ष
(३) द्वापर युग—८६४००० वर्ष
(४) कलियुग - ४३२००० वर्ष

---

१ चतुर्युगी—४३२०००० वर्ष
७१ चतुर्युगी—१ मन्वन्तर
१ कृतयुग का प्रमाण—१ सन्धि
१५ सन्धि | —६ चतुर्युगी
१४ मनु | —९९४×,,
१५ सन्धि+१४ मनु—
१००० चतुर्युगी[1]
१००० चतुर्युगी—१ ब्रह्मदिन[2]
१००० चतुर्युगी —१ ब्रह्मरात्रि

---

१. सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि (यजु. १५।६५)
२ मनुस्मृति अध्याय १-७९-८०

ओ३म् यमाय यममथर्वभ्योऽवतोकाꣳ संवत्सराय पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराꣳ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धं साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥

(यजुर्वेद ३०।१५)

भावार्थः—प्रभव आदि ६० संवत्सरों में पांच-पांच कर १२ युग होते हैं। उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर—ये पांच संज्ञा हैं। उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को, विशेषकर जो स्त्री लोग, यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवाती, ये सब प्रयोजनों की सिद्धि प्राप्त होती हैं।

ओ३म् संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि। उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पताम्।

प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय। सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद ॥

(यजुर्वेद २७।४५)

भावार्थः—जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते, सुन्दर नियमों से वर्तते हुए कर्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं, उनके प्रभातकाल, दिन-रात, पक्ष, महीने और ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं। इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभ गुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्म ग्रहण करने में और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें।

षष्टि संवत्सर चक्र

		१	२	३	४	५
संवत्सरनाम—		संवत्सर	परिवत्सर	इदावत्सर	अनुवत्सर	इद्वत्सर
	१.	प्रभव	विभव	शुक्ला	प्रमोदूला	प्रजोत्पत्ति
ब्रह्म	२.	आङ्गीरसा	श्रीमुखः	भवा	युवा	धाता
विंशति	३.	ईश्वरः	वहुधान्या	प्रमादी	विक्रमा	विष्णु
	४.	चित्रभानु	स्वभानु	तारणा	पार्थिव	व्यय
	५.	सर्वंजित	सर्वंधारी	विरोधी	विकृति	खरः
विष्णु	६.	नन्दनः	विजया	जया	मन्मथा	दुर्मुखी
विंशति	७.	हेवलम्बी	विलम्वी	विकारी	शार्वरी	प्लवः
	८.	शुभकृतु	शोभकृतु	क्रोधी	विश्वावसु	पराभव
	९.	प्लवङ्गः	कीलकः	सौम्या	साधारणः	विरोधीकृतु
रुद्र	१०.	परिघाती	प्रमादीय	आनन्दः	राक्षसः	नलः
विंशति	११.	पिङ्गला	काकयुक्ति	सिद्धद्री	रौद्री	दुर्मना
	१२.	दुन्दुभिः	रौद्रोद्गारी	रत्काक्षी	क्रोधना	क्षय
स्वामी—		अग्नि	आदित्य	चन्द्रमा	वायु	मृत्यु

संवत्—प्रदर्शक चित्र

श्री श्वेतवराह कल्प वर्तमान सृष्टि-कालचक्र, जिसमें हम रहते हैं—

	भूतकाल
१. साम्यावस्था शून्य विन्दु से वर्तमान वैवस्वत पर्यन्त	४१३२९४९०९३
२. सृष्टि-संवत् ब्रह्मदिवस से	१९७२९४९०९३
३. सृष्टि का भुक्तकाल	१९६०८५३०९३
४. वैवस्वत मनु का भूतकाल	१२०५३३०९३
५. वर्तमान कलियुग-संवत्	५०९३
६. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्राब्द	१२६९०९३
७. योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्राब्द	५२१८
८. श्री राजा विक्रमाब्द	२०४९
९. श्री शालिवाहन शक-संवत्	१९१४
१०. श्रीमद्दयानन्दाब्द	१६७

	भविष्यत्काल
१. वर्तमान से साम्यावास्थापर्यन्त	४५०७०५०९०७
२. वर्तमान से ब्रह्मदिवस पर्यन्त	२३४७०५०९०७
३. सृष्टि का भोग्यकाल	२३३३२२६९०७
४. वैवस्वत का भविष्यत्काल	१८६१८६९०७
५. कलियुग का भविष्यत्काल	४२६९०७

सृष्टिसंवत् संकल्प-पाठ से सुरक्षित रहते हैं। अन्य संवत् नये-नये बनते हैं और लुप्त भी हो जाते हैं। संसार के इतिहास में लाखों करोड़ों वर्षों से अनेक संवत् प्रचलित हैं। यह 'वैदिक-सम्पत्ति' पुस्तक में देखें। संसार की विशेष घटनाओं और राजाओं के नाम से संवत् चालू होते हैं। सङ्कल्प-पाठ इस प्रकार है—

वैदिक-सङ्कल्प-पाठ

ओ३म् तत्सद्ब्रह्मणः श्रीश्वेतवराहकल्पे ब्राह्मदिवसे द्वितीयप्रहरार्द्धे सप्तवैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे त्रेताचतुर्थचरणे महाराजराम-चन्द्राब्दे १२६९०९३, द्वापरयुगान्ते योगेश्वरश्रीकृष्णचन्द्राब्दे ५२१८, कलियुगे प्रथमचरणे ५०९३, सृष्टचब्दे १९७२९४९०९३, राजा-विक्रमाब्दे २०४९, शालिवाहनशके १९१४, श्रीमद्दयानन्दाब्दे १६७,

अङ्गिरानामकसंवत्सरे दक्षिणायने शरदृतौ मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे प्रतिपदायां, बुधवासरे, द्वितीयप्रहरे कृत्तिकानक्षत्रे, वरीयानयोगे तैत्तिलकरणे, धनुर्लग्ने प्रातः दशकलाके, जम्बुद्वीपे आर्यावर्तान्तरे भरतखण्डे कृष्णा-गोदावरीनद्योर्मध्ये दक्षिणप्रान्ते भाग्यनगरे निवासिना एवं गुणविशेषण-विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ व्रतपालेन सिद्धान्तशास्त्रिणा स्व० श्रीमत्-सीतारामात्मजेन वैदिकसृष्टिविज्ञानसचित्रदर्शनाख्यं पुस्तकं सृष्टिचक्रं चित्रपटं च वेदविज्ञानप्रसिद्ध्यर्थं प्रकाशितम् ।

सृष्टिचक्र-चित्रपट-परिचय

इस चित्रपट में वेदों के मन्त्र और सूर्यसिद्धान्त के श्लोकों के प्रमाणानुसार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को दर्शाया है, जिस की व्याख्या इस सृष्टिविज्ञान-ग्रन्थ में है। सृष्टि-संवत्-कालचक्र तथा वैदिक सङ्कल्प-पाठ प्रकाशित किया गया है। प्रथम स्वायम्भुवमनु से सप्तम वैवस्वत मनु पर्यन्त प्रतिमन्वन्तर शिक्याकृति ब्रह्माण्ड का विस्तार और अष्टम सावर्णि मनु से चतुर्दश भौतव्यक मनुपर्यन्त प्रतिमन्वन्तर शिक्याकृति ब्रह्माण्ड का सङ्कोचन चौदह लघु चित्रों में दर्शाया है। और दो महापुरुषों—मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र तथा श्री योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र का संवत् एवं सृष्टि के आदि के चार महर्षियों के तथा महर्षि याज्ञवल्क्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के चित्र चित्रित हैं। यह सृष्टिचक्र का चित्रपट चार रङ्गों में प्रकाशित किया है तथा यह दैनिक तिथियों से भी संयुक्त है।

विश्व में प्रथम वार अभूतपूर्व वैदिक-विज्ञान से युक्त यह चित्रपट है। पाठक इसे स्वयं अपने निवास-स्थान में लगायें तथा अन्य नागरिकों में भी इस का प्रचार करें।

वैदिक नाम

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुतांᳬ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ॥

(यजु० २५-४)

तिथियों के नाम एवं देवता

अङ्कों में	लौकिक नाम	वैदिक नाम	देवता
१	प्रतिपदा	अग्नि	इन्द्राग्नी
२	द्वितीया	वायु	सरस्वती
३	तृतीया	इन्द्र	मित्र
४	चतुर्थी	सोम	निर्ऋति
५	पञ्चमी	आदित्य	अग्नीषोम
६	षष्ठी	इन्द्राणी	सर्प
७	सप्तमी	मरुत्	विष्णु
८	अष्टमी	बृहस्पति	पूषा
९	नवमी	अर्यमन्	त्वष्टा
१०	दशमी	धातु	इन्द्र
११	एकादशी	इन्द्र	वरुण
१२	द्वादशी	वरुण	यमी
१३	त्रयोदशी	यम	द्यावापृथिवी

देवताओं के नाम यजुर्वेद २५।५ में इस प्रकार हैं—

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳩ सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥

प्रति २-२ मास में एक ऋतु होती है—

तप, तपस्य—शैशिर। मधु, माधव—वासन्तिक। शुक्र, शुचि—ग्रैष्म। नभ, नभस्य—वार्षिक। इषु, ऊर्ज—शारद। सह, सहस्य—हैमन्तिक।

इनमें से शैशिर से ग्रैष्म तक उत्तरायण=आदान और वार्षिक से हैमन्तिक तक दक्षिणायन=विसर्ग रहता है। सुश्रुतसंहिता सूत्रस्थान ६।१० में निम्नलिखित वर्णन है—

भाद्र, आश्वयुज—वर्षा। कार्तिक, मार्ग—शरद। पौष, माघ—हेमन्त। फाल्गुन, चैत्र—वसन्त। वैशाख, ज्येष्ठ—ग्रीष्म। आषाढ, श्रावण—प्रावृट्।

सृष्टि पूर्ण है

ओम् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ (उपनिषद्)

स्रष्टा पूर्ण है, सृष्टि, जगत् पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण पैदा होता है। पूर्ण से पूर्ण निकल जाने पर शेष पूर्ण ही रहता है। यह नियम सार्वभौम है। सृष्टि की प्रत्येक वस्तु छोटी बड़ी पूर्ण है; चाहे जड़ सृष्टि हो चाहे चेतन सृष्टि हो—सर्वत्र पूर्णता से परिपूर्ण है। मनुष्य शरीर पूर्ण है, पूर्ण शरीर से गर्भाधान के समय वीर्यकण पूर्ण स्त्री में चला जाता है। फिर भी मनुष्य पिता पूर्ण शेष रहता है। पूर्ण स्त्री, पूर्ण गर्भस्थ शिशु को प्रसव करने पर भी शेष पूर्ण ही रहती है। शिशु भी पूर्ण है। वही सिद्धान्त सर्वत्र चेतन जगत् में व्याप्त है। इसी प्रकार हिरण्यगर्भ स्रष्टा परिपूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् शेष स्रष्टा पूर्ण ही रहता है। पूर्ण द्यावा, पृथ्वी, से पूर्ण चेतन सृष्टि उत्पन्न होने पर भी द्यावापृथ्वी भी पूर्ण रहते हैं। यह पूर्णता क्रमशः परम्परा से सदैव बनी रहती है।

सृष्टि महायज्ञ है

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
यजुर्वेद ३१।१६

विश्वे देवाः यज्ञ के द्वारा यज्ञों का निर्माण करते हैं। एक यज्ञ दूसरे यज्ञ का परस्पर सहायक, साधनरूप यज्ञ है। महर्षि यास्काचार्य ने भी कहा है—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। अग्निनाग्निमयजन्त देवाः ॥
(निरु० १२।४१)

अग्निना जीवेनान्तःकरणेन वाग्नि परमेश्वरमयजन्त ।

अग्नि के द्वारा अर्थात् ज्ञानरूप अग्नि के द्वारा, जीव के अन्तःकरण में परमेश्वर ज्ञान का प्रेरक है।

सृष्टि महायज्ञ है, जो अनादिकाल से निरन्तर हो रहा है। यज्ञ में यजमान पति पत्नी होते हैं। यज्ञ के साधन यज्ञकुण्ड, अग्नि, समिधा, घृत आदि आवश्यक होते हैं। सृष्टि महायज्ञ का महाक्रतु, यजमान

विष्णु है और यजमान पत्नी अदिति, स्वधा प्रकृति है। **'अदित्यै विष्णु-पत्न्यै'** (यजुर्वेद २६।६०)। विष्णु की पत्नी अदिति है। अदिति प्रकृति को कहते हैं। यह तात्त्विक सूक्ष्मतम, सुन्दरतम जोड़ा है, जो प्रवाह रूप से अनादि नित्य है।

सृष्टि महायज्ञ का यजमान सर्वदा युवा, जनिता, उत्पादक, जनक, विधाता है। **'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता'** (यजु० ३२।१०)। यजमान पत्नी, अदिति=प्रकृति भी नित्य सदा सुहागिन सुभागिन सृष्टि की जननी है।

इस महायज्ञ में एक चेतनतम, महाशक्तिशाली, सर्वव्यापक तत्त्व है। यह एक ही तत्त्व कभी पुरुष रूपी पिता, स्त्री रूपी माता, तात्त्विक रूप में नपुन्सक है। वेदों में तीनों लिङ्गों में उस का वर्णन है –

सा विश्वायुः, सा विश्वकर्मा, सा विश्वधाया (यजु० १।४)

दूसरा पत्नीरूपी तत्त्व प्रकृति, स्वधा, अदिति केवल जड़ है। यह जड़ चेतन का नित्य, अनादि जोड़ा है।

सृष्टि महायज्ञ का यजमान अपने ही हिरण्यगर्भ में अन्तस्ताप अग्नि-कुण्ड में शक्तिरूपी घृत की आहुति देता है। इसलिये महाक्रतु, महाहवि, महायज्ञ नाम पड़ा है। विष्णु-सहस्रनाम में इसकी विस्तृत व्याख्या पढ़ने और विचारने योग्य है। इस महायज्ञ से अनेक प्रकार के तत्त्वों का निर्माण होता है।

२४ तत्त्वों का भी वर्णन महर्षि दयानन्द ने **'त्रिसप्ता'** मन्त्र की व्याख्या में किया है और महर्षि कपिल ने अपने सांख्यदर्शन में २४ तत्त्वों का और पुरुष को मिलाकर २५ तत्त्वों का वर्णन किया है।

इन अनेक तत्त्वों के निर्माण से अनेक प्रकार के जड़रूपी ब्रह्माण्डों का निर्माण होता है।

ब्रह्माण्ड में द्युलोक और पृथिवी परस्पर पति-पत्नी रूप का मिथुन=जोड़ा है –

'दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू' (ऋक् १०।१०।६)

सूर्य और पृथिवी का यह भौतिक बृहत्तम विशालतम जड़रूपी जोड़ा है।

विष्णु व्यापक होकर जड़ द्यावापृथिवी में गति क्रिया चेष्टा करवाता

है। इस द्यावापृथिवी के महायज्ञ से असंख्य योनियों के नर-नारी पिण्ड उत्पन्न करवाता है। द्यावापृथिवी के यज्ञ से चेतनपिण्डों का निर्माण होता है। जो एक दूसरे यज्ञ का सहायक है।

सृष्टि में विविध प्रकार के कार्य परस्पर यज्ञरूप हैं।

यज्ञ का अर्थ है देवपूजा, संगतिकरण और दान।

जड़ चेतन सृष्टि में परस्पर प्राकृतिक रूप से देना-लेना संगतिकरण के माध्यम से हो रहा है।

सूर्य गरमी, ऊर्जा, सोम और प्रकाश निरन्तर दे रहा है। पृथ्वी सूर्य-रश्मियों के माध्यम से ले रही है। परिणामतः यज्ञ फलरूप विविध प्रकार की चेतन सृष्टि की उत्पत्ति होकर अन्य यज्ञों में सहायक हो रही है।

वृक्ष आदि परस्पर यज्ञ कर रहे हैं। दूषित वायु को ग्रहण कर प्राण-वायु को दे रहे हैं। विविध प्रकार के फूलों से फलों से लोकोपकार कर रहे हैं।

कृमि, जलचर, पक्षी, पशु, मानव, विविध प्रकार के कर्मों से विविध प्रकार के यज्ञ कर रहे हैं।

सृष्टि यज्ञ में कृमि केंचुआ भूमि को उर्वरा बना रहे हैं, रेशम के कीड़े रेशम बना रहे हैं, जलचर पानी को शुद्ध कर रहे हैं, पक्षी जल के प्राणी को खाकर भूमिजल शुद्ध कर रहे हैं और वृक्षों के पराग से एक दूसरे का संसर्ग कराकर पुष्प-फलों में वृद्धि कर रहे हैं। मधुमक्खी फूलों से रस लेकर मधुर मधु बनाती हैं। बिच्छू, सर्प, छिपकली विषवाले कृमि मच्छर खाकर वातावरण को शुद्ध करते हैं। वे विष अपने शरीर में जमा कर लेते हैं। इसलिये इन को विषधर कहते हैं।

पशु = भेड़-बकरी बालों का दान करती हैं, गायादि प्राणी दुग्ध देते हैं और अश्व, हाथी भार ले जाने में कार्य करते हैं।

सभी प्राणी स्वाभाविक रूप से यज्ञ में सहायक हैं। मानव भी यज्ञ कर्म में श्रद्धा से लगा हुआ है। जो यज्ञ नहीं करते उनकी हानि होती है तथा उनका विकास नहीं होता है।

अथर्ववेद में यज्ञों के नाम

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमस्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥
अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्त्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥
(अथर्व० ११।७।७,८)

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अश्वमेध, अग्न्याधान, अर्क, जीवबर्हि, मदिन्तम—इन ९ प्रकार के यज्ञों का वर्णन अथर्ववेद में मिलता है।

कात्यायन श्रौतसूत्र में निर्दिष्ट श्रौतयाग

१. अग्न्याधान, २. अग्निहोत्र, ३. दर्शपूर्णमास, ४. दाक्षायण यज्ञ, ५. आग्रयणेष्टि, ६. दर्विहोम कैडिनीयेष्टि आदित्येष्टि मित्रविन्देष्टि, ७. चातुर्मास्य, ८. निरूढ पशुबन्ध, ९. सोमयाग, १०. एकाह, ११. द्वादशाह, १२. सत्ररूप द्वादशाह, १३. गवामयन, १४. वाजपेय, १५. राजसूय, १६. अग्निचयन, १७. सौत्रामणि, १८. अश्वमेध, १९. पुरुषमेध, २०. अभिचार-याग, २१. अहीन-अतिरात्र, २२. सत्र (द्वादशाह से सहस्र-संवत्सरान्त), २३. प्रवर्ग्य (अ० २६)।

महाराष्ट्र के विविध नगरों में तथा भारत वर्ष के विशेष स्थानों में यज्ञानुष्ठान होता रहता है। तप श्रम व्रत दीक्षा सम्पन्न यजमानों ने ही यज्ञों को किया है।

जड़ सृष्टि की रचना ब्रह्मरात्री उत्तरार्द्ध में होती है और ब्रह्मदिवस में भी चेतन सृष्टि होती है, अतः शास्त्रीय वैदिकयाग दिन में और रात्री में होते हैं। हमने प्रत्यक्ष कई बार किया है।

उपर्युक्त विविध महायज्ञों में महाराष्ट्र के यज्ञमूर्ति पं० रंगनाथ जी कृष्ण सेलूकर महाराज २५ वर्षों से विविध स्थानों पर यज्ञों का अनुष्ठान कर रहे हैं। परोपकारी सत्पुरुष महाराज जी प्राणिमात्र के कल्याणार्थ बड़े-बड़े महायज्ञ करते रहते हैं। देशी-विदेशी विद्वान् स्कालर महा यज्ञों को देखने निरन्तर आते रहते हैं। गत १२ वर्षों से इन यज्ञों में

जिज्ञासु-मण्डल के यज्ञविज्ञान-प्रेमी हरियाणा, अजमेर, वाराणसी और हैदराबाद से सम्मिलित होते रहे हैं।

सब यज्ञों का साक्षात् दर्शन करते हुए वेद-विज्ञान, सृष्टि-विज्ञान और यज्ञ-विज्ञान का समन्वय तथा तुलनात्मक अध्ययन करते-कराते रहे, अतः पूज्यपाद पण्डित रङ्गनाथ कृष्ण सेलूकर महाराज के हम कृतज्ञ हैं। इनके यज्ञानुष्ठान की कृपा से ही प्राचीन यज्ञों की परम्परा अब तक सुरक्षित है।

यज्ञों में म० म० पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक वेद-सृष्टि-विज्ञान =यज्ञविज्ञान और कर्मकाण्ड का अपने प्रवचनों में तुलनात्मक अध्ययन करते थे, जिस से यज्ञों के द्वारा विश्व को होनेवाले लाभ का सभी को ज्ञान होता था। वेदपाठी पण्डितवर्ग ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद का कर्मकाण्ड में यथासमय वेदपाठ और मन्त्रों का विनियोग करते रहते हैं। यज्ञ में वेद की रक्षा, वेद-विज्ञान की परम्परा की रक्षा होती रहती है। यज्ञ करानेवाले यजमान और यजमान-पत्नी का आध्यात्मिक विकास होता है, क्योंकि स्रष्टा की सृष्टि का यज्ञ करते हुए अभिनयकर्ता में उच्च भाव उत्पन्न होता है। अतः प्रत्येक नर-नारी को पञ्चमहायज्ञ आदि करते रहना चाहिये।

सभी प्रकार के यज्ञों से विश्व की समस्याओं का समाधान होता है। विविध यज्ञों से वातावरण पवित्र होता है अर्थात् प्रदूषण दूर होता है। वर्तमान में यज्ञों के अभाव में विश्व का प्राणी अशान्त और परेशान है।

विविध प्रकार के विद्वान्, प्रवक्ता, व्याख्याता और उपदेष्टाओं से यज्ञप्रेमी दर्शक जनता का मार्गदर्शन तथा विद्याविज्ञान से शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रिय उन्नति होने से विश्व का कल्याण होता है। इस विषय में पूज्य पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक की 'श्रौत-यज्ञ-मीमांसा' पुस्तक पठनीय है।

—:o:—

वेद–परिचय

वेद शब्दार्थ और सम्बन्ध रूप है। ईश्वर के ज्ञान में सदा बना रहने से वेद नित्य है क्योंकि वे बीजांकुर न्याय से ईश्वर के ज्ञान में नित्य वर्तमान रहते हैं। जब-जब सृष्टि होती है, तब सृष्टि के आदि में ईश्वर से वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय में जगत् के न रहने से उन की अप्रसिद्धि होती है। इस कारण से वेद नित्यस्वरूप ही बने रहते हैं।

जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द, अर्थ और सम्बन्ध वेदों में है, इसी प्रकार से पूर्व कल्प में था और आगे भी रहेगा। क्योंकि यह ईश्वर की विद्या है सो नित्य एक रस ही बनी रहती है। इस के एक अक्षर का भी कभी विपरीत भाव नहीं होता। सो, ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिताएं अब जिस प्रकार की हैं, इन में शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्तमान है, इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है, क्योंकि ईश्वर नित्य है, उस का ज्ञान भी नित्य है।

ईश्वर ने चेतन आदि प्राणियों को सभी चेष्टा आदि संस्कार अर्थात् कृमि को रेंगना, गंध मात्र का संस्कार, पानी के जलचरों को तैरने और आहारादि का संस्कार, पक्षियों को आहार आदि, उड़ने और बोलने का संस्कार, पशुओं को आहार आदि, दौड़ने और बोली का संस्कार दिया है, इसी प्रकार मनुष्यों को भी आहार आदि, चलने फिरने, दौड़ने और बोली, भाषा, संवाद, ज्ञान-विज्ञान का संस्कार दिया है।

पशु आदि प्राणियों में बोली आदि का संस्कार है, वह ईश्वरप्रदत्त संस्कार है। इसका उदाहरण यह है कि पशु आदि प्राणी अपने गर्भाधान क्रिया या मैथुन के समय योनि अनुसार क्रिया करते हैं। जैसे कृमि रेंगते हुए मैथुन करते हैं। रेंगने के संस्कार अंडे में आ जाते हैं। जलचर तैरते हुए मैथुन करते हैं इसलिए तैरने के संस्कार जलचरों में आते हैं।

पक्षी जब मैथुन करता है तो तीन संस्कार करता है। एक तो पक्षी अपने पर को हिलाता है, दूसरे चोंच से अपनी बोलीका उच्चारण करता है और तीसरे नरपक्षी मादा पक्षी को दाना खिलाता है। तो अंडे में से जो चिड़िया का बच्चा पैदा होता है, तब चीं-चीं शब्द अपनी मातृबोली

में बोलता है और दाना खिलाने से खाता है। जब पर आ जाते हैं, तब उड़ने लगता है।

पशु भी इसी प्रकार मैथुन करते समय भागते हैं, बोलते हैं, तो यह संस्कार पशु पिंड में आ जाते हैं। तब गौ और बकरी आदि का बच्चा जन्म लेता है। चलने, भागने और पुकारने लगता है।

वेदाश्चत्वार :

'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणम् ।'

(छान्दोग्योपनिषद् ७।१।२)

'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ।'

(बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।१०)

'ऋग्यजुः सामाथर्वाणश्चत्वारो वेदाः ।'

(नृ० पू० ता० उ० १।१।२)

'तत्र परा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेदाः ।'

(मुण्डकोपनिषद् १।१।५)

'यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृदाष्टि तन्वं दुरुक्तै ॥'

(ऋग्वेद १।१४७।४)

जो मनुष्यों के मध्य दुष्ट लोग दुर्गुणों में, दुर्व्यसनों में फंसाते है, उन से सर्वदा दूर रहना चाहिये।

जो सज्जन उपकारी, महात्मा, विद्वान्, गुरुजन, उत्तम शिक्षा, अनेक विद्या, विज्ञान सिखाते हैं, उनसे हमेशा सत्संग, श्रद्धापूर्वक विनयपूर्वक विद्याग्रहण करना चाहिये ।

इस मन्त्र में मन्त्र शब्द से वेदविद्या का ग्रहण किया है और गुरु का अर्थ परमगुरु वेद मन्त्रों का दाता है। जीवों के उपकारार्थ वेदमन्त्रों की महालाभकारी विद्या दी है।

आदि सृष्टि में परमगुरु ने वेदमन्त्रों का दान पुण्यवान् आत्माओं को लोकोपकारार्थ दिया था। वर्तमान काल में भी पदार्थविद्याज्ञाता और अनेक विद्याओं के आचार्य छात्रों को अध्यापन कराते हैं।

एक पदार्थविद्या, दूसरा पढ़ानेवाला अध्यापक, आचार्य और तीसरे अनेक छात्र अध्ययन करनेवाले लोक में देखे जाते हैं। यह नित्य परम्परा, आदिकाल से पठन-पाठन की और सुनने-सुनाने की बनी हुई है।

यदि स्रष्टा वेदविद्या को न देता, तो सभी मनुष्य विद्याविहीन होकर मूर्ख होते; क्योंकि विद्या नैमित्तिक कारण से आती है। यदि अध्यापक न होते तो छात्र विद्या के पढ़ाने के अभाव में विद्या का उपयोग नहीं कर सकते और मानव के विद्याविहीन होने से संसार की महती हानि होती।

वर्तमान में जो भी विद्याविज्ञान से मानव ने उन्नति की है, वह उपर्युक्त मन्त्र के विद्याविज्ञान से सम्बन्धित है। लोक में सन्त महात्मा, गुरुजन, गुरुमन्त्र देते हैं। उन के शिष्य भक्त सदाचारी, आज्ञाकारी, अनुगामी होकर अपना जीवन सफल करते हैं। विश्व में सर्वत्र यह नियम चल रहा है।

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितिः।
स सर्वोऽभिदितो वेदे सर्वज्ञान मयो हि सः॥

(मनुस्मृति २।६)

अर्थः—मनु ने जो कुछ धर्म का विधान वनाया है, वह वेदों में कहा गया है। सव वेद विज्ञान से युक्त है अर्थात् वेद सब विद्या विज्ञान के भण्डार हैं।

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वाराश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धचति॥

(मनु. २२।९७)

अर्थः—चार वर्ण, तीन लोक—द्यौः अन्तरिक्ष पृथिवी तथा चारों आश्रम—भूत वर्तमान भविष्यत् आदि की सव विद्या वेदों से ही प्रसिद्ध होती हैं।

अनन्ता वै वेदाः—विद्या विज्ञान अनन्त है। जो सनातन वेदशास्त्र है, वह सब विद्याओं के दान से सम्पूर्ण प्राणियों का धारण और सब सुखों को प्राप्त कराता है। इसलिये महर्षि मुनि सन्त विद्वान् वेद तथा वेदानुकूल शास्त्रों को उत्तम मानते हुए आये हैं।

—:०:—

स्रष्टा का धन्यवाद

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥
(अथ० ९।१०।२)

अर्थः—जिस जगदीश्वर ने वेदस्थ अक्षर, पद, वाक्य, छन्द, अध्याय आदि वनाये है, उस को सब मनुष्य धन्यवाद देवें।

महर्षि पतञ्जलि भगवान् ने वर्ण वा अक्षरों से प्रतिमण्डित आकाश चन्द्र तारों के समान सुशोभित ब्रह्मराशि वेदों को कहा है, जिसके पढ़ने-पढ़ाने से सब यथार्थ विद्याओं का लाभ होता है।

वेद को परम अक्षर, परब्रह्म, परमपवित्र कहा है। उसी का अङ्ग वर्णमाला, वेदाङ्ग शिक्षा है।

अक्षर=स्वर ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत तथा व्यंजनों से अयोगवाहरुप चिह्नों से तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित चिह्नों से पद, वाक्य, छन्द, मन्त्र से ब्रह्मराशि सुशोभित है। विद्याविज्ञान आदिकाल से है। अन्य भाषा, मत, संप्रदाय ग्रन्थों में अभूतपूर्व क्रम-विज्ञान नहीं है।

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत् परिषिच्यते ॥
(अथर्व० १०।८।२९)

अर्थः—पूर्ण पुरुष से पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। पूर्ण परमेश्वर से पूर्ण (समस्त) जगत् पालित होता है। उस पूर्ण को इस वर्तमान इसी जीवन में जानें, जिससे यह जगत् पालित होता है।[1]

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥[2]
(अथ० १०।८।३२)

---

१. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति नो चेदवेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥
(केन. २।५)

२. कवेः कर्म काव्यम्=कवि का कर्म काव्य कहाता है। वह अनेक प्रकार का

अर्थः—जो जिस समीपस्थ देव को नहीं छोड़ता, जिस समीपस्थ होते हुये को भी नहीं देखता, उस देव के काव्य को देखो। अर्थात् जो न कभी समाप्त होता है और न कभी बदलता है। अर्थात् वेद नित्य और अपरिवर्तनशील है।

यो विद्यात सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात स विद्याद् ब्राह्मणं महत् ॥
(अथर्व० १०।८।३७)

अर्थः—जो फैले हुए (सूत्र) सबको लपेटने वाला सूत्र प्रकृति को जानता है, जिसमें लोक-लोकान्तर रूपी प्रजा पिरोई हुई है, उस सूत्र के भी सूत्र को जो जानता है, वह महत् ब्रह्म को जानता है।

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदाथो यद् ब्राह्मणं महत् ॥
(अथर्व० १०।८।३८)

अर्थः—मैं उस फैले हुए प्रकृति रूपी सूत्र को जानता हूं, जिसमें लोक-लोकान्तर रूपी प्रजा ओत-प्रोत है। मैं उस सूत्र के भी सूत्र अन्तः वर्तमान तत्त्व को जानता हूं। वह तत्त्व परब्रह्म है।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥
(अथर्व० १०।८।४३)

अर्थः—नौ द्वारोंवाले कमल के समान शोभायमान तीन गुणों से आवृत जो शरीर है, उसमें जो यक्षात्मा पूजनीय तत्त्व है, उसे ब्रह्म को जानने वाले ही जानते हैं।

है। यहां २ प्रकार के प्रमुख काव्यों का परिचय देंगे।

(१) दृश्यकाव्य सृष्टि है।

(२) निर्देशक काव्य वेद (ज्ञान) है।

दृश्य काव्य सृष्टि और निर्देशक काव्य वेद की रचना एक ही सृष्टिकर्ता परमेश्वर की है। इसलिये दोनों काव्यों में परस्पर का घनिष्ठ सम्बन्ध है।

अ॒ष्टाच॑क्रा नव॑द्वारा दे॒वानां॒ पूर॑यो॒ध्या ।
तस्यां॑ हिर॒ण्ययः॒ कोशः॑ स्व॒र्गो ज्योति॒षावृ॑तः ॥
(अथर्व० १०।२।३१)

अर्थः—आठ चक्रवाली, नौ द्वारोंवाली देवताओं की ये अयोध्या पुरी (नगरी) शरीर है। उस नगरी में हिरण्य कोश जो स्वर्गरूप ज्योतिः से आवृत है, अर्थात् अनेक बलों से युक्त जीवात्मा (स्वर्ग) सुखस्वरूप परमात्मा की ओर चलने वाला ज्योतिः से आवृत है।

तस्मि॑न् हिर॒ण्यये॒ कोशे॒ त्र्य॑रे॒ त्रिप्र॑तिष्ठिते ।
तस्मि॒न् यद् य॒क्षमा॒त्मन्वत् तद् वै ब्र॑ह्म॒विदो॑ विदुः ॥
(अथर्व० १०।२।३२)

अर्थः—उस तिकोने (तीन ओर से) ठहरे हुए हिरण्यमय कोश में जो शरीरधारी यक्ष जीवात्मा है, उसको ब्रह्म के जाननेवाले जानते हैं।

अ॒न्तस्ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी द॑धाम्य॒न्तर्द॑धाम्यु॒र्व॑न्तरि॑क्षम् ।
स॒जूर्दे॒वेभि॒रव॑रैः॒ परै॑श्चान्तर्या॒मे म॑घवन् मादयस्व ॥
(यजु० ७।५)

अर्थः—परमात्मा कहता है—हे जीव ! तेरे शरीर के अन्दर द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक को रखता हूं। पर और अवर देवों के साथ अर्थात् ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियों के साथ विराजमान होकर आनन्दित हों।

ओ३म् भूर्भु॒वः॒ स्वः॒ तत् स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥
(यजु० ३६।३)

अर्थः—प्राणाधार सुखस्वरूप, दुःखनाशक, जगदुत्पादक, शुद्धस्वरूप देव का जो वरणीय है, उसका ध्यान करें। वह हमारी बुद्धियों को शुद्ध मार्ग में प्रेरित करे।

स्तु॒ता मया॑ वर॒दा वे॑दमा॒ता प्रचो॑दयन्तां पावमा॒नी द्वि॒जाना॑म् ।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

(अथर्व० १९।७१।१)

अर्थः—मैंने वेदमाता गायत्री की स्तुति की है, जो द्विजों को पवित्र करनेवाली है। वह मुझे आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, सम्पत्ति देकर ब्रह्मलोक (मोक्ष) को प्राप्त कराये।

वेदों के अध्ययन से लाभ

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥

(ऋ० १।१६४।३९)

अर्थः—जिस व्यापक अविनाशी परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित है, जिस में सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, उस ब्रह्म को नहीं जानता, वह वेदों से सुख को प्राप्त नहीं हो सकता। जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर ब्रह्म को जानता है, वह जीवन में सब सुखों का आनन्द और जीवनमुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त होता है।

यः पावमानी रध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसं ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥

(ऋ० ९।६७।३१,३२)

अर्थः—जो मनुष्य प्रभु की कल्याणी वाणी का अध्ययन और मनन करता है, वह ऋषियों के प्राप्त किए मधुररस, ज्ञानरस, मुक्तिरस को तथा संसार सुख की साधन सामग्री—दूध, घृत, मधु, जल प्रभृति को प्राप्त कराता है।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रं तन्न आ सुव ॥

(ऋ० ५।८२।५)

अर्थः—हे सकल जगत् के उत्पन्न करनेवाले ईश्वर ! सब पाप हम सब से दूर करो, और संसार में जो कुछ भी कल्याणमय है, वह हमें आप कृपा करके दो।

चारों वेदों का रचयिता स्रष्टा

एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्
यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः ॥
(शत० १४।४।१०।३)

अर्थः—याज्ञवल्क्य महाविद्वान् जो महर्षि हुए हैं, वह अपनी पण्डित मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयी ! जो आकाशादि से भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है, उससे ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्व—ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं। जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर को आके फिर भीतर को जाता है, इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाशित करता है, और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते, परन्तु उसके ज्ञान के भीतर वे सदा बने रहते हैं। जैसे बीज में अंकुर प्रथम ही रहता है, वहीं वृक्षरूप होके फिर भी बीज के भीतर रहता है, इसी प्रकार वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं, उनका नाश कभी नहीं होता, क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है, इससे इनको नित्य ही जानना।

शास्त्रयोनित्वात् ॥ अ० १ पा० १ सू० ३॥

अर्थः—ऋग्वेदादि शास्त्र रूपी अनेक विद्याओं का कारण ब्रह्म है। क्योंकि इस प्रकार के शास्त्रों का कर्ता सर्वज्ञ ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।

परमेश्वर के बनाए वेदों को पढ़ने, विचारने और इसी के अनुग्रह से मनुष्यों को यथाशक्ति विद्या का बोध होता है, अन्यथा किसी प्रकार से नहीं हो सकता।

वेदान्तशास्त्र में वेदों के नित्य होने के विषय में व्यास जी ने लिखा है कि ऋग्वेद आदि जो चारों वेद हैं, वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं तथा प्रदीप के समान सब अर्थों के प्रकाश करनेवाले हैं। उन का बनानेवाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त परब्रह्म है, क्योंकि सर्वज्ञ ब्रह्म से भिन्न जीव वेदों को नहीं बना सकता।

वेद अध्ययन आवश्यक है

आदि मनु महाराज ने अपने संविधान में ये नियम बनाये थे। गृहस्थाश्रम में प्रवेश के पूर्व चारों वेद, तीन वेद, दो वेद अथवा एक वेद का साङ्गोपाङ्ग पढ़ना आवश्यक है, ताकि सभी प्रकार से जीवन सुखी रहे, सन्तानों में विद्यादि के सद्गुणों का विकास हो। उन्होंने लिखा है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

(मनु० ३।२)

वेदों का निरन्तर अध्ययन

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥

(मनु० २।१०५)

शिक्षा आदि वेदाङ्गों में, नित्य किये जानेवाले ब्रह्मयज्ञरूप स्वाध्याय में और हवनकर्म में अनध्यायकृत निषेध नहीं है।

वेद किन को सिद्ध होता है ?

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

(मनु० २।९७)

जो दुष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है, उसके वेद अध्ययन, लोभ रहित कार्य, यज्ञ नियम, तप और अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

वेद-अध्ययन न करने से हानि

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

(मनु० २।१६८)

जो वेद को न पढ़ के अन्यत्र श्रम किया करता है, वह अपने पुत्र-पौत्र सहित शूद्र भाव को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। अर्थात् अनार्ष अविद्या के ग्रन्थ पढ़ने से मानव विद्या विज्ञान से रहित होकर मत-मतान्तरों में फंस कर हिंसादि दुर्गुणों वा दुष्कर्मों से संसार को सर्वनाश करता है।

वेद-विभाग

प्रश्न—वेद किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञान का नाम वेद है।

प्रश्न—वेद कितने हैं ?

उत्तर—वेद चार हैं। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

(यजु० ३१।७)

यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं
तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥

(अथर्व० १०।७।२०)

उस ईश्वर से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा छन्दांसि इस शब्द से अथर्ववेद उत्पन्न हुये हैं।

उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—ये चारों उत्पन्न हुये हैं।

विभागशः उच्चारण

१. ऋग्वेद के स्वरों का उच्चारण द्रुत गति से होता है।

२. मध्यमवृत्ति—जैसे कि यजुर्वेद के स्वरों का उच्चारण ऋग्वेद के मन्त्रों से दूने काल में होता हैं।

३. विलम्बित वृत्ति वह है, जिसमें प्रथमावृत्ति से तिगुना काल लगता है, जैसा कि सामवेद के मन्त्रों का उच्चारण करते समय वा गान में लगता है।

४. फिर उन्हीं तीनों वृत्तियों के मिलाने से अथर्ववेद का भी उच्चारण होता है।

वेद-विषय

ऋग्वेद—'ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां स्वभावाननया सा ऋक्, ऋक् चासौ वेदश्च = ऋग्वेद: ।'

जिससे पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जाना जाय, वह ऋग्वेद है। ऋग्वेद में ज्ञानविषय प्रमुख होने से इसे ज्ञानकाण्ड भी कहा जाता है।

यजुर्वेद—'यजन्ति येन मनुष्या ईश्वरं धार्मिकान् विदुषश्च पूजयन्ति शिल्पविद्यासंगतिकरणञ्च कुर्वन्ति, तद् यजुः ।'

जिससे मनुष्य ईश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के ज्ञान से धार्मिक विद्वानों का संग शिल्प क्रिया सहित विद्याओं की सिद्धि करता है, वह यजुर्वेद है। क्रियाकाण्ड प्रधान होने से यजुर्वेद को क्रियाकाण्ड विषयक भी माना है।

सामवेद—जिससे कर्मों की समाप्ति द्वारा कर्म बन्धन छूटे, वह सामवेद है। कर्मों का बन्धन मुक्त जीव का ही छूट सकता है अतः सामवेद को उपासनाकाण्ड नामक शब्द से जाना जाता है।

अथर्ववेद—'थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः ।' निरुक्त ११।१८॥

जिसके द्वारा संशय हटते ही विषय का समग्रतापूर्वक ज्ञान होता है, वह अथर्ववेद है। इसे विज्ञानकाण्ड नाम से भी जाना जाता है।

वेदों के मन्त्र-संख्या-विभाग

ऋग्वेद में मन्त्र-संख्या—ऋग्वेद में १०५८९ दस हजार पांच सौ नवासी मन्त्र हैं, तथा दस मण्डल हैं।

यजुर्वेद में मन्त्र-संख्या—यजुर्वेद में १९७५ एक हजार नौ सौ पचहत्तर मन्त्र तथा चालीस अध्याय हैं।

सामवेद में मन्त्र-संख्या—सामवेद में १८७५ एक हजार आठ सौ पचहत्तर मन्त्र हैं, तथा इस में दो आर्चिक (जिससे स्तुति की जाये) हैं।

अथर्ववेद में मन्त्र-संख्या—अथर्ववेद में ५९७७ पांच हजार नौ सौ सतत्तर मन्त्र हैं तथा वीस काण्ड हैं।

वेद-मन्त्र-दर्शन

वेदों में विभिन्न प्रकार से अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है। जिन

में –वेद नित्य है, सृष्टिकर्ता ईश्वर है, जैसा सृष्टि में है वैसा वेद में है, वेदवाणी का प्रवक्ता ईश्वर है, जल थल वायु के प्राणियों का कर्ता ईश्वर है आदि-आदि वर्णन अनेक ऋचाओं में उपलब्ध हैं। सो निम्नप्रकार से सविस्तर हम वर्णित कर रहे हैं—

वेद-प्रदाता ईश्वर

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥
(ऋ० ८।९८।१)

भावार्थः—मेधावी महान् विद्वानों के लिये परमात्मा वेद देता है और वह उससे स्तुति गाते हैं।

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन् मधुना सं मधूनि।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥
(ऋग्वेद १०।५४।६)

भावार्थः—जीव ज्योति है, प्रकाशवान् है। स्रष्टा सर्गारम्भ में उसमें वेदज्ञान ज्योति (अदधात्) डालता है, प्रकाशित करता है।

विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्।
(ऋग्वेद ३।२६।९)

अर्थात् वह ईश्वर महाज्ञानी वक्ताओं का भी पिता गुरु है।

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।
(योगदर्शन १।२६)

अर्थात् वह सब गुरुओं का भी गुरु महागुरु ईश्वर है, जो काल की सीमा में नहीं आता है।

वेद मानवमात्र के लिये

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।
(यजु० २६।२)

भावार्थः—यह कल्याणमयी वेद वाक् (जनेभ्यः) मानव मात्र अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि सभी के लिये है।

'सोमः पवते जनिता मतीनाम्'

(सामवेद ६।४।३)

अर्थात् वेद-ज्ञान का (जनिता) उत्पन्न करने वाला पावन परमात्मा है।

वेद पढ़ने से लाभ

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥

(ऋग्वेद ९।६७।३२)

भावार्थः—जो जन परमेश्वर की पावमानी ऋचाओं को पढ़ता है, वह सरस्वती वेदवाणी से दूध, घी, मधु आदि सभी पदार्थों को प्राप्त होता है।

सृष्टि-कर्ता स्रष्टा

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः ।
त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्तारमिह यक्षि होतः ।

(यजु० २९।९)

भावार्थः—विद्या विज्ञान का प्रकाशक ईश्वर विद्वान् वीर श्रेष्ठ पुरुषों को उत्पन्न करता है, वही घोड़े आदि शीघ्रगामी पशुओं का उत्पादक है, वही सम्पूर्ण भुवनों लोकों को बनाता है, वही अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड का कर्ता है। अतः इस जगत् में सर्वोत्पादक ईश्वर की उपासना कीजिये।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ॥

(यजु० ३१।१९)

अर्थात् सम्पूर्ण लोकों का स्रष्टा ईश्वर न उत्पन्न होनेवाला अजन्मा है, तथा जड़ चेतन सबके भीतर रहता है, एवं बहुत प्रकार के लोक-लोकान्तर उसी के सामर्थ्य से उत्पन्न होते हैं।

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥

(सामवेद ६।४।३)

पदार्थः—(मतीनां जनिता) वेद ज्ञान का उत्पन्न करनेवाला (दिवं जनिता) द्युलोक को पैदा करनेवाला (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का सृजन करनेवाला (अग्नेः जनिता) अग्नि का उत्पादक (सूर्यस्य जनिता) सूर्य को उत्पन्न करनेवाला (इन्द्रस्य जनिता) विद्युत् का स्रष्टा (उत) और (विष्णोः जनिता) यज्ञ जल का स्रष्टा (सोमः) सारे संसार का उत्पादक ईश्वर (पवते) सबको पवित्र करता है।

वेद में त्रैतवाद

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

(ऋ० १।१६४।२०)

भावार्थः—जीव, परमात्मा और जगत् का कारण—तीनों पदार्थ अनादि और नित्य हैं। जीव और परमात्मा यथाक्रम से अल्प, अनन्त, चेतन विज्ञानवान् सदा विलक्षण व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त और मित्र के समान वर्तमान हैं।

आचार्य यास्क ने सुपर्णा का अर्थ आत्मा और परमात्मा किया है तथा वृक्ष का अर्थ शरीर किया है।

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥

(ऋग्वेद १।१६४।२२)

भावार्थः—जिस प्रकृति रूपी वृक्ष का उपभोग जीव कर रहा है, दोनों को वह विश्वेश देख रहा है, उसे हम सब को अच्छी प्रकार से जानना चाहिये।

जीव ब्रह्म का भेद

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

(ऋ० १०।८२।३)

भावार्थः—वह हमारा पिता है। उत्पादक ईश्वर सम्पूर्ण नामस्थान जानना है, वही भूतों (अग्नि जलादि) का नाम रखनेवाला है।

यहां पिता-पुत्र का सम्बन्ध दर्शाया है।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्यु: कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

(ऋ० १०।१२१।२)

भावार्थः—जो आत्मादि ज्ञान का देनेवाला ईश्वर है, उसकी उपासना सम्पूर्ण देवगण करते हैं। अतः उसी ईश्वर की उपासना करते हुए अमृतत्त्व को प्राप्त करें।

यहां उपास्य-उपासक का निर्देश हैं।

—:०:—

वेद में प्रश्नोत्तर

प्रश्न—

को द॑दर्श प्रथ॒मं जाय॑मानमस्थ॒न्वन्तं॒ यद॑न॒स्था बिभ॑र्ति ।
भूम्या॒ असु॒रसृ॑गा॒त्मा क्व॑ स्वि॒त् को वि॒द्वांस॒मुप॑ गा॒त् प्रष्टु॑मे॒तत् ॥
(अथर्व॰ ९।९।४)

अर्थः—

प्रथमम्—सब से प्रथम, जायमानम्—प्रादुर्भूत, प्रकट होते हुए इस महान् हिरण्यगर्भ को, कः ददर्श—कौन देखता है ? यद्—और, अनस्था—हड्डी अर्थात् शरीर से रहित आत्मा, अस्थन्वन्तम्—इस अस्थिवाले अर्थात् कठोर शरीर और रूपवान् जगत् को, बिभर्त्ति—धारण करता है ? भूम्याः—भूमि, पृथिवी और पृथिवी का यह शरीर, असुः—वायु का अंश प्राण, असृक्—जल का अंश रुधिर इन तीनों से बना देह और आत्मा - इस शरीर में रहनेवाला आत्मा, चेतन, क्व सित्—कहां, किस पर आश्रित है ? कः—कौन पुरुष, एतत्—इस रहस्यमय प्रश्न को सब से प्रथम, प्रष्टुम् - पूछने के लिये, विद्वांसम्—किसी विद्वान् के पास, उपगात् - पहुंचा होगा ?

इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं—

१. जब सब से प्रथम प्रकृति के अव्यक्त रूप से व्यक्त रूप उत्पन्न हुआ तब उस को देखनेवाला साक्षी कौन था ?

२. शरीर को किस अशरीरी ने धारण किया ?

३. शरीर, प्राण, रुधिर आदि संघात का आत्मा कहां स्थित है ?

४. सब से प्रथम किसने इस प्रश्न को किसी विद्वान् से पूछा ?

देवता - प्रजापति

प्रश्न—

को अ॒स्या नो॑ द्रु॒होऽव॒द्यव॑त्या उन्न॑ष्यति क्ष॒त्रियो॒ वस्य॑ इ॒च्छन् ।
को य॒ज्ञका॑मः क उ॒ पूर्तिका॑मः को दे॒वेषु॑ वनुते दी॒र्घमायुः॑ ॥
(अथर्व॰ ७।१०३।१)

अर्थः—

कः—कौन, प्रजापति, सुखस्वरूप, वस्यः—उत्तम फल, इच्छन्—अभिलाषा, नः—हमें, अस्याः—इस अद्भुत, अवद्यवत्याः—निन्दायोग्य, घृणित, द्रुहः—पारस्परिक द्रोह, उत् नेष्यति—ऊपर उठाएगा, यज्ञकामः—यज्ञ करने की कामना, कः सुखस्वरूप, प्रजापति, पूर्तिकामः—इस समस्त संसाररूप यज्ञ को पूर्ण करने की अभिलाषा रखता है। देवेषु—सूर्य, चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों में तथा विद्वान् तपस्वी पुरुषों में, दीर्घम्—दीर्घ, आयुः—जीवन, वनुते—प्रदान करता है।

देवता—जिज्ञासु

प्रश्न—

किꣳ स्वित्सूर्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥
(यजु० २३।४७)

अर्थः—

किम् स्वित्—कौन, सूर्यसमम्—सूर्य के समान, ज्योतिः—प्रकाशस्वरूप है ? किम् समुद्रसमम्—कौन समुद्र के समान, सरः—जिस में जल वहते वा गिरते वा आते-जाते हैं, ऐसा तालाब, किम् स्वित् पृथिव्यै—कौन पृथिवी से, वर्षीयः—अति बड़ा और, कस्य—किस का, मात्रा—जिस से तोल हो, वह परिमाण, न—नहीं, विद्यते—विद्यमान है ?

भावार्थः—आदित्य के तुल्य तेजस्वी, समुद्र के समान जलाधार और भूमि से वड़ा कौन है ? और किस का परिणाम नहीं है ? इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में जानना चाहिये।

देवता—ब्रह्मादयः

उत्तर—

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥
(यजु० २३।४८)

अर्थः—

सूर्यसमम्—सूर्य के समान, ज्योतिः—स्वप्रकाशस्वरूप, ब्रह्म—सब से

वड़े ग्रनन्त परमेश्वर, समुद्रसमम्—समुद्र के समान, सरः—तालाव, द्यौः—ग्रन्तरिक्ष, पृथिव्यै—पृथिवी से, वर्षीयान्—वड़ा, इन्द्रः—सूर्य ग्रौर, गोः—वाणी का, तु—तो, मात्रा - मान, परिमाण, न—नहीं, विद्यते—विद्यमान है, इस को जान।

भावार्थः - कोई भी, ग्राप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उसके समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्यमण्डल के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करनेहारा कोई भी पदार्थ नहीं होता—इसका निश्चय सव करें।

देवता—प्रष्टृसमाधारौ

प्रश्न—

पृच्छा॑मि त्वा चि॒तये॑ देवसख॒ यदि॒ त्वमत्र॒ मन॑सा ज॒गन्थ॑।
येषु॒ विष्णु॑स्त्रि॒षु प॒देष्वेष्ट॒स्तेषु॒ विश्वं॒ भुव॑न॒मा विवे॑शाँ ३८॥
(यजु० २३।४९)

अर्थः—

देवसख—विद्वानों के मित्र! त्वम्—तू, ग्रत्र—यहां, मनसा—ग्रन्तःकरण से, जगन्थ—प्राप्त हो तो, त्वा—तुझे, चितये—चेतन के लिये, पृच्छामि पूछता हूं, विष्णुः—व्यापक ईश्वर, येषु—जिन, त्रिषु तीन प्रकार के, पदेषु—प्राप्त होने योग्य जन्म, नाम और स्थान में, एष्टः—ग्रच्छे प्रकार इष्ट है। तेषु उन में व्याप्त हुग्रा, विश्वम्—सम्पूर्ण, भुवनम्—पृथिवी ग्रादि लोकों को, ग्रा विवेश—भली भांति प्रवेश कर रहा है, उस परमात्मा का उपदेश करो।

भावार्थः—हे विद्वान्! जो चेतनस्वरूप सर्वव्यापी पूजा, उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है, उस का मेरे लिये ग्राप उपदेश करो।

देवता प्रष्टा

प्रश्न—

को अ॒स्य वे॑द॒ भुव॑नस्य॒ नाभि॒ं को द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षम्।
कः सूर्य॑स्य वेद बृह॒तो ज॒नित्रं॒ को वे॑द च॒न्द्रम॑सं यतो॒जाः॥
(यजु० २३।५९)

अर्थः—

अस्य—इस, भुवनस्य—सब के आधारभूत संसार के, नाभिम्—बन्धन के स्थान मध्यभाग को (केन्द्रस्थान), कः—कौन, वेद—जानता, द्यावापृथिवी—सूर्य और पृथिवी, अन्तरिक्षम् आकाश को जानता, बृहतः—बड़े, सूर्यस्य—सूर्यमण्डल के, जनित्रम्—उपादान वा निमित्त कारण को, यतोजाः—जिससे उत्पन्न हुआ है, उस चन्द्रमा के उत्पादक को और, चन्द्रमसम्—चन्द्रलोक को जानता है ?

भावार्थः—इस जगत् के धारणकर्त्ता बन्धन, भूमि, सूर्य अन्तरिक्षों महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिससे उत्पन्न हुआ है, उसको कौन जानता है ?

देवता—समाधाता

उत्तर—

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥

(यजु० २३।६०)

अर्थः—

अस्य—इस, भुवनस्य—सब के अधिकरण जगत् के, नाभिम्—बन्धन के स्थान कारणरूप मध्यभाग परब्रह्म को, अहम्—मैं, वेद—जानता हूं, द्यावापृथिवी—प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों, अन्तरिक्षम्—आकाश को भी, बृहत्—बड़े, जनित्रम्—उपादान तैजस कारण और निमित्तकारण ब्रह्म को, वेद मैं जानता हूं। अथो—इस के अनन्तर, यतोजाः—जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र, उस परमात्मा को, चन्द्रमसम्—चन्द्रमा को जानता हूं।

भावार्थः—विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष ! इस जगत् के बन्धन अर्थात् स्थिति के कारण प्रकाशित अप्रकाशित मध्यस्थ आकाश इन तीनों लोक के कारण और सूर्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्त कारण इस सब को मैं जानता हूं। ब्रह्म ही इस सब का निमित्तकारण और प्रकृति उपादानकारण है।

देवता—जिज्ञासु

प्रश्न—

कः स्विदेकाकी चरति कऽउ स्विज्जायते पुनः ।
किं स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥

(यजु० २३।४५)

अर्थः—

कः स्वित्—कौन, एकाकी—एकाकी, अकेला, चरति—चलता वा प्राप्त होता है। उ—और, कः स्वित्—कौन, पुनः—फिर-फिर, जायते—उत्पन्न होता, हिमस्य—शीत का, भेषजम्—औषध, किम् उ—और क्या, महत्—बड़ा, आवपनम्—अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है। इस सब को आप कहिये।

भावार्थः—विना सहाय के कौन भ्रमता, कौन फिर-फिर उत्पन्न होता। शीत की निवृत्ति कर्त्ता कौन और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है? इन सब प्रश्नों के समाधान अगले मन्त्र से जानने चाहिये।

देवता—सूर्य

उत्तर—

सूर्य्यऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥

(यजु० २३।४६)

अर्थः—

सूर्य्यः—सूर्य्यलोक, एकाकी—अकेला, चरति—स्वपरिधि में घूमता है। चन्द्रमाः—आनन्द देने वाला चन्द्रमा, पुनः—फिर-फिर, जायते—प्रकाशित होता है, अग्निः—पावक, हिमस्य शीत का, भेषजम्-औषध और, महत्—बड़ा, आवपनम्—अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिस में सब वस्तु बोते हैं। भूमिः—वह भूमि है।

भावार्थः-हे विद्वानो! सूर्य अपनी ही परिधि में घूमता है, किसी लोकान्तर के चारों ओर नहीं घूमता। चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने को बड़ा क्षेत्र भूमि ही है—ऐसा तुम लोग जानो।

प्रश्न—

केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥

(अ० १०।२।२४)

अर्थः—

यह भूमि किसने विशेष रूप से स्थिर की है, धारण की है या बनाई है?

किसने ऊपर का यह आकाश धारण किया, थामा या बनाया? और

किसने यह ऊपर का और तिरछा व्यापक अन्तरिक्ष, वातावरण धारण किया, थामा या बनाया है?

उत्तर—

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता ।
ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥

(अ० १०।२।२५)

भावार्थः—उस महान् ब्रह्मशक्ति ने यह भूमि वा देह बनाई और विशेष रूप से धारण और स्थिर की। उस महान् शक्ति ब्रह्म ने ऊपर का आकाश वा शिर भी बनाया और स्थिर किया है। यह उपर का और तिरछा, फैला हुआ अन्तरिक्ष, वातावरण, देह का मध्य भाग भी उसी महान् शक्ति ब्रह्म ने धारण किया, बनाया और स्थिर किया है।

—:०:—

चतुर्वेद-विषय-सूची-परिशिष्ट

सामवेद-विषय-सूची

क्र० सं०	मन्त्र संख्या	पूर्वार्चिक	देवता	विषय-विवरण
१.	१	१	अग्नि	ईश्वर की उपासना, हृदयंगम सौर मण्डल का विकास।
२.	११	,,	,, ,,	स्रष्टा के लिये नमस्ते, सत्कार, सम्मान, प्रार्थना,
३.	१४	,,	,, ,,	जीव, ब्रह्म, उपासक, उपास्य, दैनिक उपासना
४.	३१	,,	,, ,,	जातवेद स्रष्टा का ब्रह्माण्ड में सूर्य ही ध्वज है।
५.	७६	,,	,, ,,	तीनों लोकों का उत्पादक, रक्षक विश्वेश्वर है।
६.	१३३	,,	इन्द्र	अजर, अमर, युवा इन्द्र सखा की उपासना करते हैं।
७.	१४३	,,	,, ,,	नदियों के संगम और पहाड़ों की गुफाओं में, शांत पवित्र वातावरण में ब्राह्मण, विप्र बनाए जाते हैं।
८.	१७१	,,	,, ,,	अन्तरात्मा में अन्तर्यामी की उपासना करनी चाहिये।
९.	२७५	,,	,, ,,	ब्रह्माण्ड के स्वामी, वास्तोष्पति को हम सखा बनाएं।
१०.	२७६	,,	इन्द्रः	सूर्य विज्ञान, सूर्य मान, सूर्य महिमा

सृष्टि-परिचय

सृष्टि दो प्रकार से प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। एक जड़ सृष्टि, दूसरी चेतन सृष्टि।

जड़ सृष्टि—जड़ सृष्टि में सूर्य चन्द्रमा, पृथ्वी, ग्रह उपग्रह देखे जाते हैं। दूर-दूर के छोटे-बड़े रंग बिरंगे नक्षत्र देखे जाते हैं। वे भी बड़े-बड़े ग्रह उपग्रह सूर्य हैं। जिस में धूमकेतु, पुच्छल तारे, निहारिकायें, राशि-नक्षत्र—यह सब जड़ सृष्टि अति गतिमान् है। कुछ स्वयं प्रकाशित हैं, कुछ अप्रकाशित हैं। जो स्वयं प्रकाशित हैं, वे गरम स्वभाव के हैं। जो अप्रकाशित हैं, वे सामान्य शीतल हैं। सभी ग्रह-उपग्रह परस्पर के आकर्षण से अनुबद्ध हैं।

सृष्टि में नित्य प्रति विचित्र दृश्य देखे जाते हैं। सूर्योदय-सूर्यास्त, चन्द्रोदय-चन्द्रास्त और रात्री में विविध प्रकार के दृश्य दिखाई देते हैं। नियमित रूप से भी विविध प्रकार के दृश्य देखे जाते हैं।

हमारे सौर मण्डल में एक सूर्य, नव-ग्रह और लगभग ३१ उपग्रह हैं। नवग्रह में मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, प्रजापति, वरुण, पृथ्वी, प्लूटो कहे जाते हैं। बृहस्पति के १२ उपग्रह, शनि के ९ उपग्रह, प्रजापति के ५, पृथ्वी का १, मंगल के २, वरुण के २ चन्द्रमा हैं।

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में उपग्रह अधिक हैं, ग्रह कम हैं, सूर्य एक होता है।

इन सबकी विविध प्रकार की गतियां हैं। अपने-अपने केन्द्र में घूमते हुए ये ग्रहों का चक्कर भी लगाते हैं।

जड़ सृष्टि में सूर्य और पृथ्वी का महत्वपूर्ण स्थान है। अन्य ग्रह-उपग्रह ब्रह्माण्ड के सन्तुलन के लिये हैं।

लोक में और वेदों में भूमि को माता और सूर्य को पिता कहते हैं। यह बात सर्वथा सत्य है। सूर्य सब ग्रहों में बड़ा है। प्रकाशमान् महा पिण्ड है।

सूर्य के अनेक गुण हैं, अनेक नाम भी हैं। जैसे इन्द्र, भानु, ग्रहपति, रवि, दिवाकर, सविता, प्रभाकर, स्वर्णजिह्वा, हिरण्यपाणि, अर्क आदि। सूर्य निरन्तर जाज्वल्यमान ऊर्जा देने वाला है। सूर्य ने ही सब ग्रहों

को अनुबन्ध कर रखा है। सूर्य ही निरन्तर प्रभूत मात्रा में ऊर्जा व गर्मी देता रहता है। प्राणी मात्र का जीवन आधार है। इसी के कारण पृथ्वी पर अन्नादि उत्पन्न होते हैं। अतः सूर्य जड़-चेतन का आधार है।

सूर्य की विभिन्न प्रकार की रश्मियों के कारण ऋतुएं बनती हैं। इन्हीं रश्मियों के कारण पृथ्वी पर सोम (वीर्य) विविध प्रकार के बीजों के तत्त्व आदि सृष्टि में आते रहते हैं। इसी सोम से पृथ्वी गर्भवती होती है।

मानव आदि चेतन प्रजा पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं, अतः पृथ्वी को भूमि माता कहते हैं।

सूर्य का व्यास पृथ्वी से १०७ गुणा बड़ा है और यह पृथ्वी से १३ लाख गुणा बड़ा है। परन्तु सूर्य की घनता पृथ्वी की अपेक्षा लगभग चौथाई गुणा अधिक ही है। सूर्य पृथ्वी से ३ लाख ३० हजार गुणा भारी है।

सूर्य में लाखों टन चुम्बकीय पदार्थ हैं। इसी ठोस चुम्बकीय पदार्थ के कारण ग्रह-उपग्रहों को आकर्षित कर रखा है।

लाखों टन ज्वलनशील पदार्थ जलने के कारण लाखों मील ज्वालायें (लपटें) सूर्य के चारों ओर निरन्तर उठती रहती हैं। इन्हीं लपटों के कारण करोड़ों मील रश्मियां फैली हुई हैं। जिससे सारा ब्रह्माण्ड प्रकाशित होता रहता है। विविध प्रकार के रश्मियों के आधार पर चेतन सृष्टि की उत्पत्ति पृथ्वी पर होती है। सूर्य-रश्मियों के सहारे सूक्ष्मशरीर जीवों का जन्म-मृत्यु के समय आवागमन होता है। इस विषय में चारों वेदों में अनेक प्रमाण हैं।

पृथ्वी जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, उसका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

पृथ्वी के गर्भ में अत्यन्त उष्ण वाष्प (गैस) है। इस गैस के ऊपर लावा की एक परत है और चुम्बकीय मिश्रित पार्थिव पदार्थ है। इसके ऊपर पृथ्वी की परत है। जैसे गरम दुग्ध पर मोटी मलाई जमी हुई होती है।

इस पृथ्वी की परत पर विशाल समुद्र है। गोलाकार पृथ्वी का व्यास लगभग ७९०० मील है। इसकी परिधि २४००० हजार मील है।

पृथ्वी सूर्य से लगभग ९ करोड़ मील दूर है। इसके कई कारणों से अनेक नाम हैं। भूमि, गौ, अग्निवास, हिरण्यगर्भा, हिरण्यवक्षा, विश्वम्भरा, निधि, विभ्रति आदि। यह प्रजाओं को जन्म देती है, अतः पृथ्वी का प्रसूता नाम है। (अथर्ववेद १२ काण्ड भूमिसूक्त १ मन्त्र १-६३)

चन्द्रमा की गति पृथ्वी की परिधि पर होती रहती है। सूर्य की रश्मि चन्द्रमा पर न्यूनाधिक पड़ने पर कृष्णपक्ष तथा शुक्लपक्ष होते हैं।

सूर्य की रश्मि पूरे चन्द्रमा पर पड़ने पर सम्पूर्ण चन्द्रमा प्रकाशित होता है, उसको पूर्णिमा कहते हैं और पूर्ण-चन्द्रमा पर सूर्य का प्रकाश नहीं पड़ने से चन्द्रमा प्रकाशित नहीं होता, उसको अमावस्या कहते हैं।

चन्द्रग्रहण सर्वदा पूर्णिमा को ही होता है और सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है।

हमारी पृथ्वी पर दिन रात बनते हैं, ये पृथ्वी के घूमने से ही होते हैं। सूर्य की रश्मि पृथ्वी पर पड़ने पर जो भाग प्रकाशित होता है, वहां दिन होता है। जहां सूर्य की रश्मि नहीं पड़ती, वहां अन्धकार रहता है, उसको रात्री कहते हैं—यह प्रत्यक्ष है।

पृथ्वी पर लगभग १२ घंटे का दिन और १२ घण्टे की रात्रि होती है। इससे सिद्ध होता है कि सूर्य के सामने पृथ्वी २४ घण्टे में एक चक्कर पूरा कर लेती है।

अनुमानतः थल पृथ्वी का क्षेत्र २९ प्रतिशत है और समुद्र जल क्षेत्र का भाग ७१ प्रतिशत है।

पृथ्वी दैनिक चक्कर लगाती हुई एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेती है और एक वर्ष में छह ऋतुयें बनती हैं।

इन्हीं ऋतुओं के कारण से विविध प्रकार की उद्भिज (वनस्पति अन्नादि) उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण चेतन सृष्टि की भूमि माता है और सूर्य पिता है। अथर्ववेद १२।१।१२ में अद्‌भुत सौरमण्डल-ब्रह्माण्ड का रचयिता स्रष्टा ही हैं। हमारी पृथ्वी में रासायनिक पदार्थ और धातुयें भी पाये जाते हैं। जैसे लोहा, तांवा, चांदी, सोना, हीरा, मोती इत्यादि।

वर्तमान भू-सर्वेक्षण के अनुसार लगभग २५० पदार्थ पाये जाते हैं। सृष्टि में सर्वोपयोगी आवश्यक वस्तुयें अधिक हैं और सुलभ हैं। विशेष उपयोगी पदार्थ कम परिणाम में हैं। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल, मिट्टी अधिक है और लोहा, तांबा, चांदी, सोना और हीरा कम परिमाण में हैं।

—:०:—

शिशुमार चक्र का वर्णन

शिशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो
अस्यसि। न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वान्
परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन् समुद्रे ॥
(अथर्ववेद ११।२।२५)

पदार्थः (शिशुमाराः) तारा मण्डल, (अजगराः) बड़े सांप (पुरीकयाः) पुरीकय (जषाः झषाः) बड़ी मछलियां (मत्स्याः) छोटी मछलियां (येभ्यः) जिनके लिये (रजसा) निज ज्योतिर्मय स्वरूप द्वारा (अस्यसि) तू ज्योति फेंक रहा है, प्रदान कर रहा है। (भव) हे सृष्ट्युत्पादक (ते) तेरे लिये (न दूरम्) कोई दूर नहीं, (ते) तेरे लिये (न परिष्ठा अस्ति) कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसे तू वर्जित करके स्थित है, अर्थात् जो तेरी व्याप्ति से वर्जित है। (सर्वान्) सब वस्तुओं को (सद्यः) शीघ्र अर्थात् एक उन्मेष में देखता है। (पूर्वस्मात्) पूर्व के समुद्र से (उत्तरस्मिन्) उत्तर के (समुद्रे) समुद्र में (सद्यः) शीघ्र अर्थात् तत्काल (हंसि) तू पहुंच जाता है।

सप्तऋषियों से तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुव लोक है।

इस भारतवर्ष में भी बहुत से पर्वत और नदियां है—जैसे मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरी, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरी आदि। इसी प्रकार और भी सैकड़ों-हजारों पर्वत हैं।

उनके तटप्रान्तों से निकलनेवाले नद और नदियां भी अगणित हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य नदियां ये हैं—

चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावती, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध शोण नाम के नद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिमासा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा।

जम्बूद्वीप

जिस प्रकार मेरु पर्वत जम्बू द्वीप से घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बू द्वीप भी अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले खारी जल के समुद्र से परिवेष्टित है।

जम्बू द्वीप में जितना बड़ा जामुन का पेड़ है, इसी कारण इस द्वीप का नाम जम्बू द्वीप पड़ा है।

इस जम्बू द्वीप के अन्तर्गत आठ उप द्वीप और वन गये हैं—

१. स्वर्णप्रस्थ, २. चन्द्रशुक्ल, ३. आवर्तन, ४. रमणक, ५. मन्दर-हरिण, ६. पाञ्चजन्य, ७. सिंहल और ८. लंका।

प्लक्षद्वीप

चारों समुद्र अपने से दोनों और विस्तारवाले प्लक्षद्वीप से घिरे हुए हैं।

सुवर्णमथ प्लक्ष पाकर का वृक्ष है। उसी के कारण वह प्लक्ष द्वीप हुआ है। इनमें भी सात पर्वत और सात नदियां ही प्रसिद्ध हैं।

मणिकूट, बज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, और सुपर्ण हिरण्यष्ठीव और मेघमाल – ये सात मर्यादापर्वत हैं तथा अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभात, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा– ये सात प्रकार की महानदियां हैं।

प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तारवाले इक्षुरस के समुद्र से घिरा हुआ है। उसके आगे उससे दुगुने परिमाणवाला शालमलीद्वीप है, जो उतने ही विस्तारवाले मदिरा के सागर से घिरा है।

प्लक्षद्वीप के पाकर के पेड़ के बराबर उस में शालमली (सेमर) का वृक्ष है। कहते हैं; यही वृक्ष अपने वेदमय पंखों से भगवान् की स्तुति

करनेवाले पक्षिराज भगवान् गरुण का निवास स्थान है तथा यही इस द्वीप के नामकरण का भी हेतु है।

इस द्वीप के अधिपति

इनमें भी सात वर्षपर्वत और सात ही नदियां प्रसिद्ध हैं। पर्वतों के नाम स्वरस, शतश्रृङ्ग:, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति हैं तथा नदियां अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती कुहू, रजनी, नन्दा और राका हैं।

इसी प्रकार मदिरा के समुद्र से आगे उससे दूने परिमाणवाला कुश-द्वीप है। पूर्वोक्त द्वीपों के समान यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृत के समुद्र से घिरा हुआ है। इसमें भगवान् का रचा हुआ एक कुशों का झाड़ है, उसी से इस द्वीप का नाम निश्चित हुआ है।

सप्तद्वीपा पृथिवी

शिल्पा, अश्मा और आंसु भेद से पृथिवी की तीन ऊपरी परतें हैं, जो स्वाभाविक रूप से 'षड्विधाता:' अर्थात् छ: भू प्रदेश नामों वाली हैं। इन्हीं को छ: महाप्रदेश या छ: महाद्वीप कहते हैं। महाभाष्यकार की दृष्टि में यह पृथिवी सात महाद्वीपों वाली है। इन द्वीपों के प्राचीन नाम निम्न हैं—१. जम्बूद्वीप, २. प्लक्षद्वीप, ३. कुशद्वीप, ४. क्रौञ्चद्वीप, ५. शाल्मलद्वीप, ६. शाकद्वीप, ७. पुष्करद्वीप।

यह पृथिवी के द्वीपों का आकार विस्तार प्रति ५०-१०० वर्षों में घटता है और बढ़ता है। समुद्र की विशाल लहरों के प्रभाव से यह प्रक्रिया होती है। कहीं-कहीं नये-नये द्वीप जल स्तर के उपर निकल आते हैं और कहीं जलनिमग्न होते हैं, तब विश्व के मानचित्र बदल जाते हैं। नये द्वीपों में उर्वरा शक्ति अधिक होती है। पिछले १० वर्षों में बंगाल समुद्र में नया द्वीप बना है उस पर भारत सरकार ने अधिकार किया है। प्राचीन भूसंस्थान का नक्शा देखना चाहिये। विश्व का इतिहास लाखों करोड़ों वर्षों का है। प्रतिमनु जलप्लावन में भी भूप्रदेश का मान-चित्र वदल जाता हैं।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्व ॥

(यजु० ३।६)

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है। इसलिये भूमि घूमा करती है।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥
(यजु० ३३।४३)

'सविता' अर्थात् सूर्य वर्षादि का कर्त्ता प्रकाशस्वरूप तेजोमय रमणीय स्वरूप के साथ वर्त्तमान सब प्राणी अप्राणियों में अमृत रूप वृष्टि वा किरण द्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान् द्रव्यों को ही दिखलाता हुआ, सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्त्तमान अपनी परिधि में घूमता रहता है।

पृथिवी के नाम, जो उस के गुणों को प्रकट करते हैं

गौः, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, ज्ञान, क्षमा, निर्ऋतिः, क्षोणिः, क्षितिः, अवनिः, उर्वी, पृथिवी, मही, रिपः, अदितिः इडा, भूः, भूमिः, पूषा, गातुः, गोत्रा, इत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि।

पृथिवी के ये इक्कीस नाम वैदिक और लौकिक हैं। (निघण्टुः)

१. प्रथते विस्तीर्णा भवति इति पृथिवी। (उणादिकोष)

२. भवन्ति पदार्थाः यस्यामिति भूमिः।
(उणादिकोष, अथर्ववेद १२।१।१२)

३. पुष्णातीति पुष्करम्, अन्तरिक्षम्, कमलम्, उदकं वा।
(उणादिकोष, शतपथ ६।४।१।६)

विश्वंभरा, वसुधानी, हिरण्यवक्षा, (अथर्ववेद १२।१।६); अग्निगर्भा (शत० १४।६।४।२१); अग्निवासा (अथर्व० १२।१।२१); निधि बिभ्रती (अथर्व० १२।१।४४); जनं बिभ्रती (अथर्व० १२।१।४५); मल्वं बिभ्रती (अथर्व० १२।१।४८); शन्तिवा, सुरभिः स्योना, कीलालोध्नी, पयस्वती (अथर्व० १२।१।५६); पृथिवी प्रसूता (अथर्व० १२।१।६२)।

सौर मण्डल का संक्षिप्त परिचय

	ग्रह	व्यास मील में	सूर्य से दूरी दस लाख मीलों में	वर्ष सूर्य की परिक्रमा का समय	दिन, धुरी पर घूमने का समय	चन्द्रमा उपग्रह
१.	बुध	३०००	३६	८८ दिन	८८ दिन	०
२.	शुक्र	७६००	६७	२२५ दिन	३० दिन	०
३.	पृथिवी	७९००	९३	३६५¼ दिन	२३ घंटे ५७ मि.	१
४.	मंगल	४२००	१४२	६८७ दिन	२४ घंटे ३७ मि.	२
५.	बृहस्पति	८७०००	४८३	१२ वर्ष	९ घंटे ५० मि.	१२
६.	शनि	७१५००	८८६	२९॥ वर्ष	१० घंटे १४ मि.	९
७.	यूरेनस प्रजापति	२९५००	१७८३	८४ वर्ष	१० घंटे ४८ मि.	५
८.	नेपच्यून वरुण	२६८००	२७९१	१६५ वर्ष	१५ घंटे ४८ मि.	२
९.	प्लूटो	३६००	३६७१	२४८ वर्ष	६॥ घंटे	०

सचित्र विश्वकोष धरती, आकाश, खनिज पृष्ठ २५वां चार्ट।

उपरोक्त ग्रहों से सूर्य बहुत बड़ा है, महत्तम है, सुन्दरतम है।

चेतन सृष्टि

चेतन सृष्टि छः प्रकार की होती है—१. उद्भिज्ज, २. अण्डज कृमि, ३. जलचर, ४. पक्षी, ५. जरायुज पशु और मनुष्य, ६. ऊष्मज स्वेदज।

१. उद्भिज्ज—जमीन को फाड़ कर, भेद कर जो उत्पन्न होवे, उसको उद्भिज्ज सृष्टि कहते हैं। जैसे—वनस्पति, ओषधि अन्न, लघुवृक्ष और वृहद् वृक्ष। यह उद्भिज्ज सृष्टि भी सन्तुलित प्रकार की है और विविध प्रकार का आहार जीवधारी प्राणियों के लिये उत्पन्न करती है। छोटी-छोटी हरियाली वनस्पति अधिक उत्पन्न होती है। जैसे वड़े आकार की वनस्पति अन्नादि न्यून मात्रा में उत्पन्न होते हैं। लघु पौधे अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं और बड़े-वड़े पौधे कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं। छोटे-छोटे वृक्ष अधिक मात्रा में तथा बड़े-वड़े वृक्ष कम मात्रा में उत्पन्न होते हैं।

क्रमशः देखिये हरियाली, वनस्पति अन्न, कन्द, मूल, फल के पौधे; निम्बू, सन्तरा, जाम, सीताफल, पपीता, अनार, आम, खजूर के वृक्ष, ताड़ के वृक्ष, वबूल, नीम, इमली, पीपल, वट वृक्ष, उत्तरोत्तर क्रम संख्या में है, इस सन्तुलन में स्रष्टा का अद्भुत रहस्य है।

लोक में उद्भिज्ज सृष्टि ३० लाख प्रकार की कही जाती है। इनमें जीव कर्मानुसार मूढ़ावस्था में आवद्ध हैं। इनमें भी नर-नारी प्रकार के पौधे होते हैं। इनकी उत्पत्ति कहीं बीजों से कहीं डाली से और कहीं पराग से होती है। अतः इनकी सृष्टि निरन्तर स्वाभाविक और नैमित्तिक होती रहती है। यह उद्भिज्ज सृष्टि भी यज्ञरूप है और लोक-उपकारक है। उत्तरोत्तर चेतन सृष्टि के जीवनाधार है। जैसे सुगंधित पुष्प वायु मण्डल को सुगन्धित करते हैं। कन्द मूल फलादि से मानवादि प्राणियों की खाद्य रूप सेवा करते हैं। वनस्पति आदि से भिन्न-भिन्न प्रकार की ओषधी वनती है। विविध प्रकार का कार्य सम्पादन होता है, जैसे अलमारी, चौकी, दरवाजे, इत्यादि।

२. अण्डज कृमि—कृमि-सृष्टि विविध प्रकार के अण्डों से उत्पन्न होती है इस लिये इनको अण्डज योनि कहते हैं। विविध प्रकार के कृमि विविध प्रकार के अण्डे पैदा करते हैं।

क्रमि विविध प्रकार के विविध जाति के होते हैं। इनकी जाति ११ लाख प्रकार की कही जाती है। सभी प्रकार के क्रमियों का रूप, रंग, आकृति सुन्दर होता है।

इन क्रमियों का खाद्य पदार्थ फल, अन्न, कीटाणु और दूषित वायु और मृत पशुओं के मांस हैं। बड़े क्रमि छोटे क्रमियों को भी खा जाते हैं। इनमें नर-नारी भी होते हैं, इनमें आहार आदि चेष्टाओं के साथ रेंगने का संस्कार विशेष होता है। भोगयोनि है फिर भी ये लोकोपकारक हैं। कुछ क्रमि विषैले कीटाणुओं को भी खाते हैं। कुछ क्रमि भूमि को पोली करके उर्वरा बनाते हैं, जैसे केंचुवा, दीमक। कुछ क्रमि विषधर जाति के हैं, जैसे छिपकली, बिच्छू, सर्प आदि। रेशम के कीड़े रेशम बनाते हैं। मधुमक्खी मधु बनाती है। कुछ क्रमि वृक्षों के पराग बीजों को स्थानान्तरित करके फलों की पैदावार बढ़ाते हैं। विविध प्रकार के क्रमियों का निवासस्थान भूमि, वृक्ष, पौधे हैं।

सूक्ष्म-सूक्ष्म क्रमि अधिक संख्या में और स्थूल से स्थूलतर न्यून संख्या में दिखाई देते हैं, जैसे चींटी, दीमक, घुन, मकोड़े, कीड़े, अनेक पैर वाले कीड़े, रेंगने वाले कीड़े, सरकने वाले जीव, जैसे छिपकली, सर्प, अजगर, गिरगिट, घोडपल, गोह आदि। यह सृष्टि का सन्तुलन स्रष्टा का ही अद्भुत कार्य है।

३. जलचर यह जल में विचरण करते हैं, इनका निवास स्थान जल है इसलिए इनको जलचर कहते हैं।

जलचर प्राणी अण्डजों से पैदा होते हैं। इनके अण्डज को योनि कहते हैं, ये भोग योनि के हैं फिर भी लोकोपकारक प्राणी हैं।

जलचरों की नौ लाख प्रकार की जाति कही जाती है। ये विविध प्रकार के रूप रंग आकृति के सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम छोटे बड़े होते हैं। छोटे-छोटे आकृतिवाले अधिक संख्या में हैं और बड़े-बड़े न्यून हैं। जलचरों का आहार अन्न क्रमि वनस्पति सड़े हुए पत्ते, मृत कीड़े, मृत पशुओं का मांस, पृथ्वी का मल-मूत्र अन्य छोटे-छोटे प्राणी पशु मनुष्य इत्यादि जो मिल जाए चट कर जाते हैं।

इनमें नर मादा भी होते हैं, ये अण्डे उत्पन्न करते हैं। इनमें तैरने का संस्कार विशेष होता है और पानी को शुद्ध करते हैं। जैसे झींगे,

मछली, घोंगे, सीपी के कीड़े, मेंढक, कर्क, खेखड़े, कछुवा, मगरमच्छ। पानी का घोड़ा पानी में रहता है। यह सृष्टि के सन्तुलन का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

४. पक्षी—यह अण्डज योनि है और ये १० लाख प्रकार के हैं। विविध प्रकार रंग रूप आकृति के सुन्दर सुन्दरतम होते हैं। इनमें भी छोटे-छोटे पक्षी अधिक संख्या में और बड़ी-बड़ी आकृति वाले कम संख्या में हैं। जैसे चिड़िया, बया, मैना, तितर, बटेर, तोता, कबूतर, कौवा, चील, गीध, मयूर, बत्तक। इनमें नर नारी होते हैं। इनका आहार फल अन्न है और कुछ पक्षी मांसाहारी हैं। इनका निवास स्थान वृक्ष है। इनकी विविध प्रकार की बोलियां हैं। इनमें उड़ने का विशेष संस्कार है, ये भी लोकोपकारक हैं, अन्य प्राणियों के लिए उपयोगी हैं। जैसे कुछ पक्षी विषैले कृमियों को खाकर पृथ्वी का शोधन करते हैं, जिससे फसल में रोग नहीं होते। कुछ पक्षी मृतक पशुओं को खाकर भूमि शुद्ध करते हैं। तोता शुद्ध वातावरण तैयार करता है। जिस भवन में तोता रहता है, उस भवन के निवासियों को हृदयरोग नहीं होता। वैसे असंख्य पक्षी नाना प्रकार के उपयोगी कार्य करते हैं।

प्रत्येक पक्षी जब समागम करते हैं तो तीन प्रकार की चेष्टा करते हैं। १. पंखों को हिलाता है, २. अपनी बोली का उच्चारण करता है, ३. और नर पक्षी मादा पक्षी को दाना या कीड़ा खिलाता हैं, या मादा स्वयं दाना खाती है। अतः उड़ने का संस्कार, बोली का संस्कार और खाने का संस्कार गर्भाधान के समय ही अण्डे में संस्कारित हो जाते हैं। यह नियम देखा जाता है।

जब अण्डे में से चिड़िया पक्षी का बच्चा निकलता है तब अपनी जाति के अनुसार बोली उच्चारण करता है और दाना भी खाता है, पंख आने पर उड़ने लगता है। स्रष्टा पक्षियों को उपरोक्त चेष्टाओं से संस्कारित करता है।

५. जरायुज पशु—पशु योनि जरायुज होती है, पशुओं के गर्भ पिण्ड में जेर लपटी होती है। वे जेर सहित उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनको जरायुज कहते हैं।

पशु योनि बीस लाख प्रकार के कहें हैं, इनमें भी विविध प्रकार

लघु, स्थूल, स्थूलतर, स्फूलतम कायवाले सुन्दर रूप रंग आकृतिवाले होते हैं।

इन पशुओं में लघु कायवाले अधिक तथा स्थूल, स्थूलतर, स्थूलतम कायवाले न्यून होते हैं।

जैसे—चूहा, चिचोंदर, खरगोश, घूंस, बिल्ली, वन्दर, कुत्ता, गाय, गीदड़, भेड़, वकरी, चीता, हिरन, गधा, खच्चर, घोड़ा, व्याघ्र, सिंह, जिराफ, ऊंट, हाथी आदि हैं। यह सन्तुलन स्रष्टा का रचा लोकोपकारक है। इनमें भी नर-मादा होते हैं। छोटे शरीर के पशु अधिक बच्चे पैदा करते हैं, वड़े शरीरवाले कम बच्चे पैदा करते हैं, जैसे—चूहा कम काल की अवधि में चार-छह छोटे-छोटे वच्चे देता है। कुत्ता चार, वकरी दो, गाय, गधा, घोड़ा, ऊंट, हाथी आदि सब एक-एक बच्चा उत्पन्न करते हैं।

छोटे प्राणी अधिक बच्चे पैदा करते हैं; उनमें नर-मादा होते हैं। जो प्राणी वड़े होते हैं, एक-एक बच्चा पैदा करते हैं। वे कभी नर, कभी मादा पैदा करते हैं।

यह नियम उपरोक्त कृमि, जलचर, पक्षी, पशु और मनुष्यों में सर्वत्र विद्यमान है; यह सृष्टि का अद्भुत नियम है। विशेष संतुलन बनाये रखने के लिये है।

इन पशुओं में दो प्रकार की प्रवृत्ति पाई जाती है, एक शाकाहारी दूसरे माँसाहारी पशु। शाकाहारी प्राणी मानवादि के लिये अधिक उपयोगी हैं, जैसे—दूध देनेवाले प्राणी गाय, बकरी, और श्रम करनेवाले प्राणी गधा, घोड़ा, बैल, ऊंट, हाथी। ये अधिक बलवान् भी होते हैं। बाल देनेवाले भेड़, मैंढी आदि होते हैं।

शाकाहारी पशुओं की संतानों की जन्मते समय आंख खुली होती है और होठ से पानी पीते हैं। दूसरे मांसाहारी पशुओं में भी अनेक प्रकार के गुण पाये जाते हैं। एक तो मृतक पशुओं को खा करके सफाई करते हैं और दूसरा अर्थात् कुत्ता चौकीदारी करते हुए स्वामीभक्त होता है। और कुछ मांसाहारी पशु शिकार करते हैं और बलवान् हैं और निशाचर हैं अर्थात् रात्री में विचरनेवाले होते हैं। मांसाहारी पशुओं की जन्मते समय आंखें बन्द रहती हैं, जीभ से पानी पीते हैं।

यह विविध प्रकार की सृष्टि का अद्‌भुत रहस्य है। इस रहस्य को स्रष्टा ही जानता है।

उपरोक्त सभी पशु विविध प्रकार की बोलियां बोलते हैं। उसमें कोई सौम्य वोली वोलते हैं तो कोई भयायनक वोली वोलते हैं।

जरायुज मनुष्य—मनुष्य प्राणी संसार की सर्वश्रेष्ठ योनि-जाति है। यह जाति सर्व इन्द्रिय सम्पन्न बुद्धिमान् प्राणी है। यह विविध प्रकार के गुणों से सम्पन्न होता है।

विविध प्रकार के रूपरंग आकृतिवाले सुन्दर नर-नारी होते हैं, और ये सामाजिक प्राणी हैं, श्रमजीवी और बुद्धिजीवी प्राणी हैं।

मानव नैमित्तिक ज्ञान प्राप्त करके वड़े-वड़े उत्तमोत्तम कार्य सम्पादन करता है।

मनुष्य सृष्टि के विविध प्रकार के पशु आदि प्राणियों से उपयोग लेता है और कृषि कर्म आदि करके विविध प्रकार का अन्न, औषधी, दूध, दही, घृत, आहार आदि का सम्पादन करता है। आवास के लिये मकान भवनों का निर्माण करता है।

विविध प्रकार की फसलों से कपास, रेशम, फल, फूल, कन्द आदि सम्पादन करता है। वड़े-वड़े उद्योग कल कारखाने, बान्ध वना कर विद्युत् उत्पन्न करके आश्चर्यजनक वस्तुओं का निर्माण करके अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाता है। जैसे—मोटर, रेल, विमान, टेलीफोन, रेडियो, टेलीविजन, पानी का जहाज वना कर द्वीप-द्वीपान्तरों में सम्वन्ध बनाये रखा है।

विविध प्रकार के ज्ञान सम्पादन करने के लिये विद्यालय, विश्व-विद्यालय वनाता है, विविध प्रकार के अद्‌भुत ज्ञान-विज्ञान ग्रंथों का सम्पादन करता है।

स्वस्थ रहने के लिये विविध प्रकार के खाद्य पदार्थों को वनाता है। जैसे—दिव्य औषधी, च्यवनप्राश, अवलेह, रसायन आदि वनाता है।

रोग निवारण के लिये विविध प्रकार के रुग्णालय (हास्पिटल) वनाता है।

न्यायव्यवस्था के लिए राजतन्त्र का निर्माण करता है जैसे—कोर्ट, हाइकोर्ट, सुप्रीमकोर्ट, न्यायालयों का निर्माण करता है।

मनुष्य जाति में अनेक प्रकार की प्रवृत्तियां पायी जाती हैं, कोई बुद्धिजीवी पढने-पढ़ाने के कार्य में तथा समाज के संचालन के अनेक कार्य करता है। जैसे—यज्ञादि संस्कार कराना, विद्या विज्ञान की रक्षा करना तथा प्रसार करना।

जो शासन में मार्गदर्शन देकर आहार, आवास, न्याय सुरक्षा की सुव्यवस्था करता है, ऐसे व्यक्तियों को ब्राह्मण, अध्यापक, शिक्षक, प्रोफेसर, आचार्य, सलाहकार, मन्त्री, न्यायाधीश, सेनापति, कोषाध्यक्ष, राज्यपाल कहते हैं। ऐसे महानुभाव मनुष्य समाज में अनुमानतः ५ या ६ प्रतिशत होते हैं। अर्थात् न्यून होते हैं।

शासन—जो प्रजा की रक्षा करते हैं, आन्तरिक व्यवस्था बनाये रखते हैं और बाह्य आक्रमणों से रक्षा करते हैं, ऐसे प्राणी समाज में लगभग ११ प्रतिशत होते हैं। ऐसे लोगों को क्षेत्रीय पुलिस या सैनिक रक्षक कहते हैं। यह सर्वदा अन्याय का प्रतिकार करते हैं और न्याय की रक्षा करते हैं। छात्र स्वभाव के होते हैं।

जो प्रजा के लिये और स्वयं के लिए कृषि कर्म करके या विविध प्रकार के उद्योग करके आहार, वस्त्र, आवास, अन्य आवश्यक पदार्थों का उत्पादन करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को कृषक, वैश्य, पोषक, व्यापारी, उद्योगपति कहते हैं।

अनुमानतः ऐसे व्यक्ति समाज में ३०, ३५ प्रतिशत होते हैं। जो कठोर श्रमजीवी व्यक्ति दूसरों के आदेश पर विविध प्रकार के व्यवसायों में कार्य करते हैं। यह समाज के आधारस्तम्भ होते हैं और यह लगभग ५० प्रतिशत होते हैं। उपरोक्त प्रकार के व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र क्रमशः उत्तरोत्तर अधिक होते हैं। समयानुसार, आवश्यकता के अनुसार बुद्धिपूर्वक सभी कार्यों में परिवर्तन करके समाज सुव्यवस्थित रहता है।

मानवीय गुणों से युक्त परस्पर वात्सल्यपूर्ण दया, प्रेम, श्रद्धा, कर्तव्य, कर्म, सेवा करना अपना कर्तव्य समझता है।

पारिवारिक जीवन—मनुष्य पारिवारिक जीवन का पालन करता है, सामाजिक जीवन में परतन्त्र रहता है और व्यक्तिगत जीवन में स्वतंत्र रहता है।

मनुष्य आदिकाल से विविध प्रकार के शक्ति और गुणों से सम्पन्न,

बोली विज्ञान से सम्पन्न और भाषा होते हुए भी अल्प सामर्थ्यवाला ही है। इसमें अनेक दोष हैं, परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन रहता है। वह पाप-पुण्य के कर्म फल को विविध प्रकार से दुःख रूप भोगता रहता है।

मनुष्य कर्म भोग योनिवाला है, अपनी शुद्ध बुद्धि से उत्तम-उत्तम कर्म करता है। जिससे मानवता की रक्षा होती है। कुछ व्यक्ति अपने अल्प-ज्ञता से स्वार्थ बुद्धि से लोभ-मोह के कारण अनेक प्रकार के अनर्थ करके समाज को दूषित करते हैं।

नर-नारी, आहार-निद्रा, भय-मैथुन से युक्त हैं। ये अपनी सन्तति उत्पन्न करने में प्रयत्नशील रहते हैं। मानव-समाज में भी नर-नारी सुन्दर होते हैं, नारी से नर अधिक सुन्दर, बलवान् रक्षक पोषक (पालक) होता है।

यही स्रष्टा की सृष्टि में सर्वत्र सार्वभौम नियम दिखलाई देता है।

ऊष्मज, स्वेदज सृष्टि—विविध प्रकार की गरमी, जल, वायु, संयोग और वातावरण के कारण से "ऊष्मज प्राणी अनेक प्रकार के मच्छर" पैदा होते हैं।

शरीर के पसीने से जूं, लीक, पैदा होते हैं। ये चेतन सृष्टि के अंतर्गत हैं।

—:०:—

सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के प्रकार

सृष्टि-कर्त्ता के ईक्षण-मात्र से साम्यावस्था प्रकृति के तत्त्वों में सर्गोन्मुख प्रवृत्ति होती है। हिरण्यगर्भ में सत्त्व, रजस्, तमस् की पृथक्-पृथक् अवस्था चेष्टा रहित सम परिमाण समकाल (गूढतम अन्धकार) होता है। हिरण्यगर्भ के अन्तस्ताप से सत्त्व, रजस्, तमस् तीन गुणों में परस्पर आकर्षण उत्पन्न होता है। ये तीनों गुण आपस में मैथुन भाव से लिपटते हैं। इनका नाम गुण है, क्योंकि ये कपास के रेशे या धागा या रस्सी बनाते समय परस्पर लिपटते हैं। तभी इन रस्सियों का नाम गुणी होता है।

चेतन के सन्निधान से हिरण्यगर्भ में यह सृष्टि प्रक्रिया आरम्भ होती है। जैसे—नर-नारी के गर्भ में संकल्पमात्र से आन्तरिक रक्तादि में क्षोभ उत्पन्न होता है। सांख्यसिद्धान्त के अनुसार प्रकृति से महान्, महान् से अहंकार और अहंकार से पञ्चतन्मात्राएँ इन्द्रियां पञ्चमहाभूत के परमाणु बनते हैं। जैसे -- मानव शरीर में जठराग्नि के ताप से आहार से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से वीर्य बनता है। आहार से वीर्यादि बनने में लगभग चालीस दिन लगते हैं। ये सप्त धातुएं शरीर के बाहर कभी नहीं बनती हैं। इसी प्रकार हिरण्यगर्भ में पञ्चमहाभूतादि बनने में एक अरब बयालीस करोड़ छप्पन लाख वर्ष लगते हैं। यह तत्त्वों के बनने का प्रथम युग है।

उत्पन्न तत्त्व कारण तत्त्वों का अनुपात

	नाम	सत्त्व	रजस्	तमस्	
१.	बुद्धि	७	१	१	
१.	अहंकार	७	२	१	
१.	मनस्	६	४	१	अध्यातम
५.	ज्ञानेन्द्रिय	६	५	१	सृष्टि
५.	कर्मेन्द्रिय	४	५	३	

करण — १३

सूक्ष्मभूत — ५ तन्मात्र २ ५ २० | अधिभूत सृष्टि

पञ्चमहाभूतादि से महान् अण्डा बनता है। अन्तस्ताप से सलिलरूप गाढ़ा द्रव्य बनता है। तत्पश्चात् सौरमंडल के ग्रह-उपग्रह बनते हैं। इस के पूर्ण बनने में ४ करोड़ ३२ लाख वर्ष लगते हैं। यह महदण्ड परिप्लव अर्थात् बढ़ता है, सम्मिश्रण सरकता है और परिसर्पण चक्राकार में घूमता है। जैसे—स्त्री के गर्भ में पिण्ड रज-वीर्य सलिल के मिश्रण के पश्चात् कलल-पिण्ड विकसित होता है।

समकाल में गर्भ पिण्ड के अङ्ग-उपाङ्ग बनते हैं। और सप्तम मास से गर्भ पिण्ड घूमने लगता है। परिपक्व होकर उत्पन्न होता है। यदि गर्भ पिण्ड न घूमे तो गर्भ-पिण्ड एवं गर्भवती स्त्री के जीवन का खतरा रहता है। विशेष प्रयत्न से गर्भ-पिण्ड को घुमाया जाता है अर्थात् चिकित्सा की जाती है। यदि थोड़ी सी लापरवाही हुई तो गर्भपात या मृत्यु हो जाती है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रत्यक्ष का उदाहरण परोक्ष सृष्टि का प्रमाण है।

हिरण्यगर्भ में महदण्ड का पूर्ण परिपाक होने पर गतिमान् महदण्ड का विस्फोट होता है और सूर्यादि ग्रहोपग्रह उत्पन्न होकर शिक्याकृति में घूमने लगते हैं। ग्रहोपग्रह पिलपिले=मुलायम[1] गीले और अनियमित गति वाले होते हैं।

सौरमण्डल के ग्रहोपग्रहों की परिधि का धीरे-धीरे विस्तार होता रहता है। इसी काल में सूर्य की रश्मियों से सभी ग्रहों में दृढता और नियमित गति होती रहती है और स्वयं सूर्य में भी अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। द्युलोक के तेजस्वी होने से और पृथिवी आदि ग्रहों के दृढ ठोस होने से उन में विविध रचना होने और नियमित गति होने पर रात-दिन बनने लगते हैं। इसका काल ६९१२००००० वर्ष होता है। ग्रहोपग्रहों के

---

१. जैसे नवजात शिशु मुलायम गीला सामर्थ्यहीन होता है और प्रति वर्ष धीरे-धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है और युवावस्था पर्यन्त बढ़ता है। इस के विकास में २५ वर्ष लगते हैं।

ठोस दृढ नियमित गति के पश्चात् ब्रह्मदिवस के आरम्भ में जलप्लावन होकर पृथिवी पुलकित पृष्ठ उर्णायु:=ऊन के समान मुलायम होती है। और सूर्य की रश्मियों से सोम आने पर पृथिवी गर्भवती होती है।

प्रथम स्थावर वनस्पति औषधी अन्न उत्पन्न होते हैं, पश्चात् अण्डज पिण्डज योनिवाले प्राणी उत्पन्न होते हैं। यह तृतीय युग पूरा होता है।

यह जड़ चेतन सृष्टि अनेक युगों में परिपूर्ण होती है।

लड़का-लड़की जवानी में गृहस्थ में प्रवेश करते हैं। अपनी-अपनी गृहस्थी चलाते हैं, यह प्रत्यक्ष है।

सृष्टि की दूसरी अवस्था स्थितिकाल है। स्थितिकाल में भी सृष्टि में अर्थात् द्युलोक में और पृथिवीलोक में अनेक प्रकार के परिवर्त्तन व महान् घटनायें होती हैं—

जैसे सौरमंडल का प्रति मनु विकास और ह्रास तथा प्रतिमनु सृष्टि का स्वभाव नया पुराना होता है। सूर्यग्रहण चन्द्रग्रहण सन्धिकाल जल-प्लावन और पुन:-पुन: पृथिवी प्रसूता हो कर १४ बार प्रजा को उत्पन्न करती है। इसी स्थितिकाल में अनेक अवान्तर आंशिक प्रलयादि भी होते रहते हैं।

अनेक सौरमण्डल के उल्का पिण्ड भू भाग पर गिरते-गिरते जल जाते हैं। कोई-कोई तो भूमि पर आ गिरते हैं।

चेतन प्राणियों का ऋतुओं के अनुसार देश-देशान्तरों में आवागमन होता है। सूक्ष्म शरीर से जीव भी जन्म जीवन मृत्यु की अवस्थाओं में सौरमण्डल का भ्रमण करता है और मुक्तावस्था में ब्रह्मानन्द भी प्राप्त करता है।

—:o:—

प्रलय के प्रकार

सामूहिक प्राणियों एवं पदार्थों का विनाश होकर नवसृष्टि की उत्पत्ति के साधनों का प्रस्तुत होना ही प्रलय कहाता है। प्रलय के अनेक प्रकार हैं। यह भिन्न-भिन्न परिस्थितियां उत्पन्न करके होती है।

मुख्य प्रलय निम्न है –

१. साधारण प्रलय। २. अवान्तर प्रलय। ३. नैमित्तिक प्रलय। ४. प्राकृतिक महा प्रलय। ५. आत्यन्तिक प्रलय।

१—**साधारण प्रलय** में भूकम्प, महामारी, युद्धादि विनाशकारी आपत्तियों से सामूहिक प्राणियों और पदार्थों का नाश होता है।

२—**अवान्तर प्रलय** और पार्थिव प्रलय प्रत्येक मन्वन्तर की समाप्ति के उपरान्त होती हैं। उसमें प्रलयकाल के निकट के वर्षों में वर्षा नहीं होती। सूर्य की किरणों द्वारा पृथिवी के जल का शोषण होता है।

तत्पश्चात् प्रलय की वैश्वानर अग्नि उत्पन्न होकर समस्त पृथिवी को गोमय पिण्ड के समान जलाती है। फिर प्रलयकालीन आन्धी के द्वारा आकाश में धूल छा जाती है। ये धूल एक कल्प के कुछ वर्षों में एक योजन ऊंची चढ़ जाती है।

तदुपरान्त भयंकर मेघों द्वारा अनवरत वर्षों से समस्त पृथिवी जल-मग्न हो जाती है। ये घटनाएं मन्वन्तर के सन्धिकाल के वर्षों में होती हैं। इस प्रकार प्रलय के समय पृथिवी शुद्ध और स्वस्थ हो कर जल से ऊपर होती है। आगामी मन्वन्तर से पुनः सृष्टि का आरम्भ होता है।

३—**नैमित्तिक प्रलय**—कल्प के अन्त में होनेवाली प्रलय को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। इसमें ग्रह और उपग्रहों के सहित समस्त सौरमण्डल ब्रह्म में लीन हो जाता है। रात्रि के समाप्त होने पर ब्रह्मा के आगामी दिन से पुनः कल्प का आरम्भ और सौरमण्डल की उत्पत्ति होती है।

४ **प्राकृतिक महाप्रलय**—यह ब्रह्मा की आयु के दोनों परार्द्धों के समाप्ति हो जाने पर होती है, जिस में महत्तत्त्व अहंकार और पञ्च-तत्त्व—ये सातों प्रकृतियां भी लय को प्राप्त होती हैं।

५—**आत्यन्तिक प्रलय** यह सबसे विशाल प्रलय है, जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड का पूर्ण प्रकृति में लय हो जाता है। पुनः कालचक्र और स्वभाव से उस निराकार से साकार सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

पञ्चतत्त्व में जिस तत्त्व के द्वारा जो प्रलय होता है, वही तत्त्व आगामी नवसृष्टि का सृजनकर्ता होता है। जैसे ब्राह्म कल्प में प्राकृतिक प्रलय अग्नितत्त्व द्वारा हुआ तो पुनः सृष्टि की उत्पत्ति भी अग्नितत्त्व से ही हुई। इसी प्रकार महाप्रलय वायु और आकाश तत्त्व से, अवान्तर प्रलय जलतत्त्व से और आत्यन्तिक प्रलय निराकार ब्रह्म से होता है और उनकी उत्पत्ति के मूल भी वे ही तत्त्व होते हैं।

अवान्तर प्रलय का उद्देश्य सृष्टि की शुद्धि करना है। भविष्य में अनुकूल वातावरण हो सकें, इसी के निमित्त प्रलय होता है।

गत ब्रह्मरात्रि के द्वितीय प्रहर में विस्तृत व्योम में फैले पञ्चमहाभूतों के परमाणु अपने कारणों में लीन हो रहे थे। अर्थात् पञ्चतन्मात्रा में लीन हो रहे थे।

पञ्चतन्मात्र और ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय मन के ये तत्त्व भी अपने कारण अहंकार में लीन हो गये। अहंकार महान् में लीन हुआ और महान् तत्त्व सत्त्व रज तम—इन तीन गुणों में लीन हुआ। सत्त्व-रज-तम —ये तीनों गुण भी अन्तर्मुखी, प्रवृत्तिवाले होकर प्रलयोन्मुख होते-होते सम अवस्था को प्राप्त हुए।

इस सम अवस्था का नाम ही साम्यावस्था होता है। इस साम्य अवस्था में जो भी भाव सत् अव्यक्त था, वही प्रकृति होती है। यही प्रकृति वर्तमान सृष्टि का मूल उपादान कारण थी। इस का समय प्रलय की समाप्ति पर था, अर्थात् ब्रह्मरात्रि का पूर्ण मध्य काल था। उपर्युक्त महाप्रलय में दो अरब सोलह करोड़ वर्ष लगे थे। यह प्रलय ब्रह्मरात्रि के पूर्वार्द्ध में हुआ।

हिरण्यगर्भ स्रष्टा—सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय अनन्त ब्रह्माण्ड में हो रही है। ये सब महान् घटनाएं महत्तम हिरण्यगर्भ में ही होती रहती हैं। सर्वव्यापक अनन्त स्रष्टा के सन्निधान होने के कारण ही सब कुछ सम्भव है।

सृष्टि की उत्पत्त—साम्य अवस्था प्रकृति जो भी विद्यमान थी, वह महत्तम हिरण्यगर्भ में एकदेशी थी। अर्थात् एक स्रष्टा, द्वितीय प्रकृति विद्यमान थी। अर्थात् प्रकृति का पूर्ण अभाव कभी नहीं होता।

पृथिवी की जीवनी और प्राकृतिक शक्ति के क्षय को पुनः बल प्रदान करके के हेतु ही मन्वन्तर के अन्त में अवान्तर प्रलय होता है और सौर-मण्डल एवं ब्रह्माण्ड की शुद्धि के लिये भी नैमित्तिक एवं महाप्रलय का होना अत्यावश्यक है। इसी प्रकार प्राणिमात्र के समस्त पापों का प्रक्षालन करने के लिये ही आत्यन्तिक प्रलय का विधान है।

—:०:—

वेद में सर्गारम्भ

काम-देवता

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

(ऋ० १०।१२९।४)

सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत । भूयान्त्स्यां प्रजायेयेति सोऽश्राम्यत् स तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत, स ईक्षते मे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति ।

(ऐतरेय उपनिषद् १।३)

अर्थ.—जो परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् दर्शन विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को बनाकर प्रसिद्ध होऊं, अर्थात् सब जगत् उत्पन्न होता है, तभी जीवों के विचार ज्ञान ध्यान उपदेश श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध, और बहुत स्थूल पदार्थों से वह वर्त्तमान होता है। जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्त लोगों को छोड़ के शेष उस को कोई भी नहीं जानता।

साम्यावस्था में सत्त्व, रजस् और तमस्—तीनों तत्त्व पृथक् पृथक् रहते हैं, चेष्टारहित रहते हैं, सममात्रापरिणाम में रहते हैं। समकाल गूढतम अन्धकार रहता है। ईश्वर की ईक्षण शक्ति मात्र से ये तत्त्व सर्गोन्मुख होते हैं। यही सर्गारम्भ है। सत्त्व, रजस् तमस् के अनुपात से क्रमशः २४ तत्त्व बनते हैं।

उत्पन्न-तत्त्व में कारण-तत्त्वों का अनुपात

नाम	सत्त्व	रजस्	तमस्	
१. बुद्धि	७	१	१	
२. अहंकार	७	२	१	
३. मनस्	६	४	१	अध्यात्म
४. ज्ञानेन्द्रिय	६	५	१	सृष्टि
५. कर्मेन्द्रिय	४	५	३	

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कुर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥
(ऋ० १०।७२।२)

अर्थः—कलाकार स्रष्टा लोहार के समान अव्यक्त असत् से व्यक्त सृष्टि बनाता है।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवाँ उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥
(ऋ० १०।७२।८)

अर्थः—प्रकृति से सात तत्त्व बने। प्रकृति से महान् अहंकार और पञ्चतन्मात्रा की रचना की गयी।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः
(अथ० १।१।१)

अर्थः—तथा इन्हीं सातों से ३×७=२१ इक्कीस पदार्थ बनाये।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ।
(अथ० १९।९।५)

अर्थः—पञ्च इन्द्रियों को मन तत्त्व के समान बनाया है।

पुरुषसूक्त में स्वामी दयानन्द जी ने चौबीस तत्त्वों का वर्णन किया है। निम्नलिखित मन्त्र में ब्रह्माण्ड की चौबीस प्रकार की सामग्री (तत्त्व) से ब्रह्माण्ड बनने की सामग्री अर्थ किया—

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
(अथ० १९।६।१५)

सत्यार्थप्रकाश अष्टमसमुल्लास में (नित्याः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते) कहा है।

प्रकृति, महान्, अहंकार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चमहाभूत, पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय, मन—ये जीवात्मा के बन्धु हैं और ये अत्यन्त गतिमान् रहते हैं। तम आसीत्तमसा गूढमग्रे -अत्यन्त गूढतम अन्धकार में सृष्टिरचना आरम्भ होती है। सांख्यदर्शन में चौबीस तत्त्वों का वर्णन है।

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यंतामिव तीव्रो रेणुरपायत ।।
(ऋ० १०।७२।६)

ये चौबीस तत्त्व सलिल अवस्था में अत्यन्त गतिमान् थे, और चञ्चल थे ।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ।

यहां तत्त्वों के समुद्र का वर्णन है, न कि जलमय समुद्र का, जैसे जल में समुद्र हिलोरें लेता है, इसी प्रकार तत्त्वों का समुद्र भी क्षोभमान रहता है ।

आपो ह यद् बृहती विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।
(ऋ० १०।१२१।७)

अर्थः—२४ तत्त्वरूप आपः हिरण्यगर्भ में ही बनकर सलिलरूप समुद्र के समान व्योम में फैले हुए थे, क्षोभमान थे, अन्तस्ताप के कारण (महान् अण्डाकार) गाढ़ा पदार्थ जैसा बन रहा था ।

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ।।
(ऋ० १०।८२।६)

अर्थः—आपों=चौबीस तत्त्वों को हिरण्यगर्भ में धारण करके महदण्ड और लोक-लोकान्तर को बनाया ।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
(ऋ० १०।१२१।१)

अर्थः—एक स्रष्टा के हिरण्यगर्भ में पञ्चमहाभूतादि प्रथम उत्पन्न हुए ।

बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ।
(यजु० १२।८९)

बृहस्पतिप्रसूता अस्यै संदत्त वीर्यम् ।।
(यजु० १२।९३)

अर्थः—परमेश्वर और सूर्य सोमादि रसों को गर्भ में धारण करके जड़-चेतन सृष्टि को बनाता है।

समाने वै योनावास्तां सूर्याश्चाग्निश्च। ततः सूर्य ऊर्ध्व उदद्रवत्।

(काठकसंहिता ६।३; कापिष्ठलसंहिता ४।२)

आदित्यो मूर्ध्नोऽसृज्यत। सोऽस्य मूर्द्धानमुदहन्।

(ताण्डयब्राह्मण ६।५।१)

अर्थः—महदण्ड में ग्रह-उपग्रह समकाल में बन रहे थे, बनते हैं। उस में द्यौ और पृथिवी भी बन रही थी। इस एक ही महदण्ड से द्यौ और पृथिवी उत्पन्न हुई।

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा।

(ऋग्वेद १।१५९।४)

अर्थः—समान योनि से ही अर्थात् एक ही योनि से ही समान द्यावा पृथिवी का जोड़ा उत्पन्न हुआ।

एक ही हिरण्यगर्भ से महदण्ड बना और महदण्ड से द्यावापृथिवी उत्पन्न हुए। सूर्य प्रथम (निकला) उत्पन्न हुआ, बाद में क्रमशः ग्रह-उपग्रह-पृथिवी उत्पन्न हुए, बाद में पृथिवी का गोला जो गीला मुलायम, जलमय गुब्बारे के समान था, उत्पन्न हुआ। जैसे एक ही नारी के गर्भ से कभी लड़का कभी लड़की उत्पन्न होते हैं।

तदिदं हिरण्यमाण्डं यावत्संवत्सरस्य वेला तावत् पर्यप्लवत्
ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत् स प्रजापतिः।

(शतपथ ११।१।६)

अर्थः—यह हिरण्याण्ड=महदण्ड सुनहरा दिव्य वर्ष पर्यन्त बढ़ता रहा।

महदण्ड का विस्फोट—

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥

(मनु० १।१२)

महदण्ड का स्वरूप—

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

(मनु० १।९)

हिरण्यगर्भ में महदण्ड बनकर परिप्लव बढ़ा, विकास को प्राप्त होते-होते परिसर्पण अर्थात् सरकने लगा और संमेषण चक्राकार गति में घूमने लगा।

—:०:—

सौरमण्डल

खगोल में अनेक ब्रह्माण्ड हैं। प्रति ब्रह्माण्ड एक सौर मण्डल है। सौर मण्डल में अनेक ग्रह-उपग्रह होते हैं। सूर्य एक ही होता है। ग्रहों की अपेक्षा उपग्रहों की संख्या अधिक होती है। सूर्य के अतिरिक्त पृथिवी, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, यूरेनस (प्रजापति), नेपच्यून (वरुण) और प्लूटो सौर मण्डल के प्रधान ग्रह हैं। आकाश में विचरणशील पिण्डों का नाम ग्रह कहाता है।

सूर्य

ग्रहों में सूर्य सबसे बड़ा है। इसका व्यास नौ लाख वर्ग मील है। यही सौरमण्डल का केन्द्र है। सूर्य अग्निपुञ्ज है। अन्य ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। यों तो सूर्य में अनेक धातुएं हैं, परन्तु प्राधान्य तीन का ही है। इसकी रश्मियों को भी तीन धातुओंवाली बताया गया है, जो आकाश के ओर-छोर में सर्वत्र व्याप्त हो जाती हैं। इन्हीं धातुओं के कारण सूर्य में अग्नि की स्थिरता, ज्वालालपटों का निकलना और रश्मि प्रसारण पाया जाता है। वेद में इन्हें इन्द्र (वज्र लोह), वह्नि (अग्नि ज्वालाएं) और उस्रिया (रश्मियां) भी कहा गया है। ये धातुएं कान्त लोह, गन्धक और महाक्षार हैं। सूर्य की प्रदीप्त अवस्था का कारण ये धातुएं ही हैं।

'इन्द्र' सूर्य का प्रधान भाग है। इसमें कान्त लोह प्रमुख है। 'वह्नियां' गंधक आदि पदार्थ हैं, जिनके द्रवीभूत होने से तीक्ष्ण ज्वालाएं तीव्र वेग से निकलती हैं। अनुमानतः ये दो तीन लाख मील तक ऊपर उठती हैं। 'उस्रियाएं' महाक्षार हैं। यही सूर्य रश्मियों के कारण हैं। इन्हें वायव्य पदार्थ भी कहते हैं। ये स्फुरित होकर फैल जाते हैं, जैसे शोरा। इन्हीं पदार्थों के कारण सहस्रों प्रकार की सूर्य रश्मियां ज्वालालपटों के रूप में बाहर आकर आकाश मण्डल में निरन्तर स्फुरित और प्रसृत होती रहती हैं। प्रधान रश्मियां सात हैं। इनका कारण वर्ण (रङ्ग) भेद है।

सूर्य में काले धब्बे भी दिखाई देते हैं। इन्हें 'गुहाचित्' (गुहाएं = कन्दराएं) कहते हैं। इन्द्र रूप कान्त लोह इन्हीं गुहाओं से अपने वज्र

तत्त्वों को बाहर बिखेरता है। वह करोड़ों-अरबों वर्षों से निरन्तर जल रहा है। उसकी अनन्त ऊर्जा का क्या कभी अन्त होगा ? क्योंकि सूर्य से जो ऊर्जा अन्यत्र जाती है, वह ४३२ करोड़ वर्ष पर्यन्त पुनः सूर्य में पहुंच जाती है। जैसे पृथिवी का जल वाष्प बनकर उड़ जाता है; परन्तु मेघ बनकर बरस जाता है और पुनः पृथ्वी पर पहुंच जाता है। सूर्य की दो शक्तियां मित्र (सम्प्रेषण) और वरुण (आकर्षण) ही उसकी अनन्त ऊर्जा का कारण हैं। वेद में सूर्य को अजस्र अग्निपुञ्ज कहा गया है। वह अपनी ही धारण (आकर्षण) शक्ति से आकाश में विचरता है। यह आकर्षण शक्ति कैसी है, इसे प्रजापति (कः) अर्थात् परमेश्वर ही जानता है। सूर्य अन्य द्वारा आकर्षित भी नहीं है। इसने पृथिवी सहित सम्पूर्ण द्युमण्डल को अपनी शक्ति से धारण किया है।

चन्द्रमा

सूर्य के बाद सौर-मण्डल का दूसरा चमकीला पृथ्वी का उपग्रह 'चन्द्रमा' है। परन्तु इसमें अपना निज का प्रकाश नहीं है। यह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होता है। चन्द्रमा अन्तरिक्ष में ऐसे दौड़ता है, जैसे आकाश में पक्षी। इसकी गति विलक्षण है। यह सदा एकसा नहीं दिखाई देता। कभी पूर्ण चन्द्र दिखाई देता है । शनैः-शनैः कम होता जाता है, अन्ततः विलुप्त हो जाता है। फिर धीरे-धीरे बढ़ कर पुनः पूर्ण होता है । पूर्ण चन्द्र दर्शन को 'पूर्णिमा' और चन्द्र अदर्शन को 'अमावस्या' कहते हैं। इसी से मास और अर्द्धमास बनते हैं।[१] अर्द्धमासों को शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के नामों से जानते हैं।

भारतीय ज्योतिष में चन्द्रमा को 'हिम पिण्ड' माना गया है, जबकि सूर्य को 'अग्निपिण्ड'।[२] आर्यभट्टीय में सूर्य को अग्निमय, चन्द्रमा को जलमय और पृथ्वी को मृण्मय कहा है।[३] अर्थात् सूर्य अग्निपिण्ड, चन्द्रमा 'जल पिण्ड' और पृथ्वी मृत् पिण्ड है। शतपथ की दृष्टि में सूर्य का धर्म अग्नि और चन्द्रमा का धर्म 'सौम्य' है।[४]

चन्द्रमा को पृथ्वी का पुत्र कहा जाता है।[५] वह पृथ्वी के चारों ओर पश्चिम से पूर्व को घूमता है। चन्द्रमा और सूर्य के मध्य पृथ्वी के आ जाने पर 'चन्द्रग्रहण' पड़ता है। वेद में भी चन्द्रग्रहण का उल्लेख मिलता है।[६] चन्द्रमा सूर्य के सम्मुख पहुंचकर वह दीखना बन्द हो जाता

वर्षेण-भूमिः पृथिवी वृता वृता । (अ० १२।१।५२)

वार्षिक गति से पृथिवी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाकर लौट आती है।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कंभने० ।

—ऋ० १०।१४९

सूर्य किरणों से आकाश में गतिमान पृथिवी को थामा है।
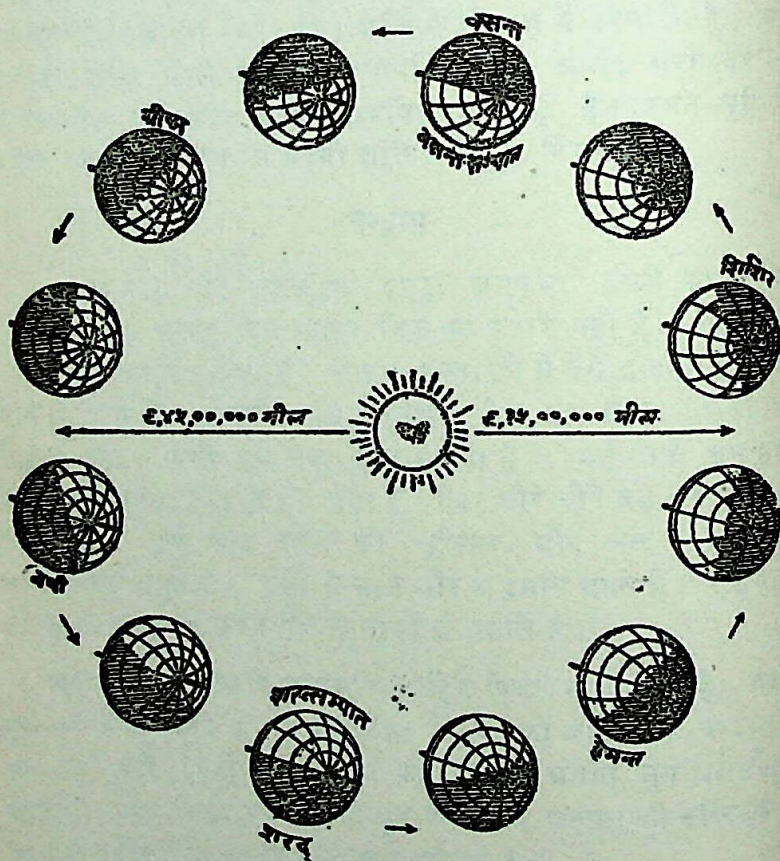
पृथिवी चक्र

पृथिवी, सूर्य, चन्द्र आदि लोक सब अपनी-अपनी परिधि में अन्तरिक्ष के मध्य में सदा घूमते रहते है। —यजु० ३।६॥

है, उस तिथि को अमावस्या कहते हैं। फिर जिस अमावस्या में चन्द्रमा इस प्रकार आजावे जबकि वह सूर्य और पृथिवी के मध्य में गति करता हुआ सूर्य का आच्छादक बनकर सूर्य प्रकाश को पृथिवी तक न पहुंचने दे, मेघ के समान अपनी छाया को पृथिवी पर डाले, उस घटना को सूर्य ग्रहण कहते हैं। सूर्यग्रहण सर्वदा खण्डग्रास हो या पूर्ण सूर्यग्रहण हो, अमावस्या को ही होता है और चन्द्रग्रहण सर्वदा पूर्णिमा को होता है। १९८० ई० में पूर्ण सूर्यग्रहण लेखक ने अनेक प्रकार से देखा। अद्भुत दृश्य देखने को मिले।

कलाकार स्रष्टा की तीन ज्योतियों में चन्द्रमा एक ज्योति है। सूर्य और बिजली भी ज्योतियां हैं।

पृथिवी

"पृथिवी" सौरमण्डल का एक अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रह है। इसी पर जलप्लावन और चेतन सृष्टि होती है। निघण्टु में पृथिवी के इक्कीस नामों का वर्णन है।[७] इसका व्यास ८००० मील और परिधि २५००० मील है। यह सूर्य से लगभग नौ करोड़ मील दूर है। पृथिवी को सूर्य अपनी रश्मियों से धारण करता है।[८] यह सूर्य के सम्मुख अपने अक्ष पर २३॥ अंश झुकी हुई है और सूर्य की एक परिक्रमा ३६५ दिन में करती है। इसकी कक्षा दीर्घवृत्ताकार है।[९] इसी से ऋतु चक्र बनता है।[१०] षड् ऋतुओं का कारण भी यही है।[११] पृथिवी अपने केन्द्र पर पूर्व की ओर गति करती है।[१२] इस वार्षिक गति के कारण वर्ष में दो बार दिन-रात बराबर होते हैं। एक वसन्त ऋतु के आरम्भ में और दूसरे शरद ऋतु के आरम्भ में। पृथ्वी कक्षा पर इन बिन्दुओं को वसन्त सम्पात और शरद सम्पात कहते हैं। ध्रुवों पर छः मास का दिन और छः मास की रात होती है।[१३] पृथिवी अपनी धुरी पर अक्ष के परितः २४ घण्टे में एक परिक्रमा करती है। इसी से दिन-रात बनते हैं। प्रति घण्टा १००० मील की गति से पृथिवी घूमती है। वर्त्तमान वैज्ञानिकों के अनुसार पृथिवी का वजन साठ हजार महाशंख टन है, यह आनुमानिक हिसाब है।

पृथिवी के चार मुख्य रंग बताये गये हैं। ये भूरा, काला, लाल और चमकदार (विश्वरूपा) हैं।[१४] वैसे इसे बहुत रंगों वाली भी कहा गया और बताया गया है। अथर्ववेद में 'भूरिवर्पसम्' शब्द पृथिवी के लिए आया है'।[१५] अभिप्राय है—बहुत (भूरि) रूपों (वर्पसम्) वाली।

पृथिवी की ऊपरी सतह असमतल है।[१६] फिर भी अधिकांश क्षेत्र समतल दिखाई देते हैं। पृथिवी की गोलाई में ८ मील की दूरी में एक इंच का ढलान है। पृथिवी समुद्र जल सहित अन्तरिक्ष में उड़ रही है, जैसे सूर्य-चन्द्र। ऊंचे तल वाले क्षेत्रों में टीले, साधारण पर्वत और हिमालय हैं। नीचे तल वाले क्षेत्रों में तालाब, झील और समुद्र हैं।[१७]

शिला, अश्मा और पांसु भेद से पृथिवी की तीन ऊपरी परतें हैं[१८], जो स्वाभाविक रूप से 'षड्विधानाः' अर्थात् छः भू प्रदेश नामों वाली हैं।[१९] इन्हीं को छः महाप्रदेश या छः महाद्वीप कहते हैं। महाभाष्यकार की दृष्टि में यह पृथिवी सात महाद्वीपोंवाली है।[२०] समय-समय पर लघु द्वीप, टापू, समुद्र से ऊपर निकल जाते हैं और डूब भी जाते हैं। इन महा-द्वीपों के प्राचीन नाम निम्न हैं—

१ - जम्बूद्वीप
२—प्लक्षद्वीप
३—शालमलद्वीप
४—कुशद्वीप
५—क्रौञ्चद्वीप
६—शाकद्वीप
७—पुष्करद्वीप

भूगर्भ संरचना में सर्वप्रथम रेत (पांसु-चूर्ण) उसके नीचे पत्थर (अश्मा) और उसके नीचे चट्टान (शिला) होती है। ये तीन भूमि की परतें हैं। इन्हें क्रमशः पांसुस्तर, अश्मस्तर और शिलास्तर कहते हैं। इनमें प्रथम भाग में औषधि-वनस्पति उत्पन्न होती है।[२१] यह आवरण भूमि का त्वचारूप है। इसके बाद भूगर्भ का मध्य भाग (अश्मस्तर) आता है। इसमें स्वर्ण आदि धातुएं और हीरा आदि मणियां उत्पन्न होती हैं।[२२] तीसरे शिलास्तरखण्ड में गन्धक आदि आग्नेय पदार्थ होते हैं।

पृथिवी में आकर्षण शक्ति होती है। इसे गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी कहते हैं। वेद में इसे 'ऊर्ज' कहा गया है।[२३] इसी शक्ति के कारण पृथिवी भार वाली वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है।[२४] महाभाष्यकार ने यही बात अन्य प्रकार से व्यक्त की है। उसका कहना है कि जो जिसका विकार होता है, वह उसी की ओर आकर्षित होता है। जैसे मिट्टी का

ढेला ऊपर को फेंकें तो कुछ दूर जाकर नीचे पृथिवी की ओर आने लगता है, क्योंकि मिट्टी पृथिवी का विकार है।[२५]

इसी प्रकार जलते हुए दीपक की लौ (दीपशिखा) उपर की ओर जाती हैं। क्योंकि ज्वाला या दीपशिखा सूर्यरूप ज्योति का विकार है। जिसका विकार उसी की ओर, यह महाभाष्यकार का सिद्धान्त है।

'पृथिवी अपनी आकर्षण शक्ति के कारण ऊपर की वस्तु को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है' ऐसा सिद्धान्तशिरोमणि में भी कहा गया है।[२६]

पृथिवी की उत्पत्ति और विकास का इतिहास भाग २ में देखिये।

मङ्गल

'मंगल' ग्रह ताम्रवर्णी है। आकाश में लाल-लाल चमकता है। यजुर्वद में इसका रंग तांबे जैसा लाल और भूरे रंग का मिश्रण बताया गया है।[२७] ज्योतिष ग्रन्थों में मंगल को लोहितांग, क्रूरदृक्, क्रूर, रक्तगौर और मिश्रितवर्ण वाला भी कहा है।[२८] यह जब सूर्य के सम्मुख होता है, तब आकार में बड़ा और बहुत चमकदार दिखाई देता है। फलित ज्योतिष ग्रन्थों में इसे सर्पों और हिंसक जानवरों को पीड़ा देनेवाला कहा गया है।[२९]

बुध

वेद में 'बुध' के लिए 'कण्व' शब्द आया है।[३०] कण्व का शब्दार्थ बुद्धिमान् है।[31] 'बुध' भी बुद्धिमान् को कहते हैं। अतः 'कण्व' शब्द 'बुध' के लिए सही प्रतीत होता है। यह सूर्योदय से आधा-पौन घण्टा पूर्व तक उदयाचल (पूर्वक्षितिज) और सूर्यास्त के आध-पौन घण्टा पश्चात् तक अस्ताचल (पश्चिमी क्षितिज) पर दिखाई देता है। 'कण्व' शब्द 'कण' धातु से बना है। यह धातु निमीलन अर्थ में प्रयुक्त होती है।[३२] अर्थात् निमीलन करनेवाला—'कण्व'। निमीलन - छिप जाना। बुध मात्र आधा-पौन घण्टा तक ही दीखता है, इसी से 'कण्व' संज्ञा ठहरती है।

बृहस्पति

'बृहस्पति' पृथिवी से बहुत बड़ा है। यह शुभ्र गौर नीलिमा लिए हुए है। वेद में ऐसा उल्लेख है कि सूर्य रूप महान् ज्योति के अधिकृत

आकाश में बृहस्पति ने प्रथम प्रकट होते हुए बहुरूपवाला सप्तमुखी तथा सात किरणोंवाला होकर अन्धकार को हटाया।[33]

सर्वप्रथम बृहस्पति तिष्य-पुष्य नक्षत्र पर उदय हुआ।[34] वेद ने इसे नीलपृष्ठ बृहन् हिरण्यवर्ण और अरुष कहा है।[35] इसके बारह उपग्रह माने गए हैं।

शुक्र

'शुक्र' ग्रह चमकीला और बड़ा है। शुभ्रता और चमक के कारण ही इसे 'शुक्र' और 'वेन' (कान्तिमान्) नाम दिए गए हैं। अथर्ववेद में भी शुक्रग्रह का वर्णन पाया जाता है।[36] ज्योतिष ग्रन्थों में 'भार्गव' भी शुक्र के लिए आया है। वेद में 'वेन:' शुक्र ग्रह का ही एक नाम है।[37]

इसमें भी चन्द्रमा की भांति कलाएं होती हैं। जब यह पृथिवी के निकट होता है, तो विशाल आकार का दिखाई देता है। इस समय इस की कलाएं स्पष्ट दीखती हैं।

प्रातःकाल सूर्योदय से लगभग तीन घंटा पहले से सूर्योदय तक शुक्र ग्रह को पूर्व दिशा में देखा जा सकता है। इसी प्रकार सूर्यास्त के पश्चात् पश्चिम दिशा में इसे तीन घण्टे तक देखा जा सकता है।

शनि

'शनि' खगोल का एक ऐसा ग्रह है, जिसके चारों ओर दीर्घवृत्ताकार घेरा है। यह कुछ मैले से पीले रंग का होता है। इसे 'असित' भी कहते हैं।[38] शुभ्र रंग के कारण शुक्र को जहां 'सित' कहते हैं, वहीं 'अशुभ्र' रंग के कारण शनि को 'असित'। इसके चारों ओर जो घेरा (कुण्डल) है, उसे सर्प रूप कहा जाता है। 'असित' कृष्ण सर्प को कहते हैं। इससे भी शनि असित नाम से विख्यात है। वेद में भी इसे असित नाम से वर्णित किया गया है।[39] इस मन्त्र में शनि की प्रकटता सूर्य से बताई गई है।[40] इसी से ज्योतिष ग्रन्थों में शनि को सूर्य पुत्र अथवा सौरि कहा गया है। ऋग्वेद के अनुसार स्थिर रंगवाली तीन चमकीली धाराएं शनि को घेरे हुए हैं। ये धारायें 'शुक्रः, शुचयः और रुचानाः' नामों से कही गई हैं।[41] इनसे बने घेरे में शनि सौरमण्डल में घूमता है।

शनि के नौ उपग्रह बताए जाते हैं।

यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो

ज्योतिष ग्रन्थों में उपर्युक्त ग्रहों का विशेष वर्णन मिलता है। यूरेनस नेपच्यून और प्लूटो की चर्चा कम है। ये सूर्य से बहुत अधिक दूर हैं। यूरेनस और नेपच्यून के कई भारतीय नाम विख्यात हैं। यथा—प्रजा-पति और वरुण, वरुण और वारुणी, अरुण और वरुण आदि।

वेद में यूरेनस के लिए 'अर्यमा' और नेपच्यून के लिए 'वरुण' शब्द आया है। तीसरे अन्य ग्रह को 'ऋत' कहा गया है।[४२] यह मन्त्र अति सुन्दर है। 'हे द्युलोक के ग्रहो ! तुम्हारे में से (अर्यम्णः महः पथा कत्) अर्यमन् का महापथ (कक्षा) कहां हैं ? (वरुणस्य चाक्षणं कत्) वरुण का दृश्य बिन्दु कहां है ? (ऋतस्य धर्णसि कत्) ऋत् का धरातल कहां है ?

यहां अति दूरस्थ ग्रह को 'ऋत' नाम दिया है। सुदूर अन्तरिक्ष में रहनेवाला ग्रह 'ऋत' कहाता है।[४३]

यूरेनस (अर्यमा) की कक्षा बहुत बड़ी और रंग समुद्र जैसा नील परक हरा है। इसके चार उपग्रह हैं। शेष वरुण और प्लूटो के विषय में विशेष अध्ययन जारी है।

धूमकेतु (पुच्छल तारे)

खगोलीय पिण्डों में एक विचित्र ज्योतिष्पिण्ड 'धूमकेतु' है। यह ग्रहों में नहीं गिना जाता। इसकी बहुत लम्बी पूछ होती है। सूर्य के निकट आने पर इसकी पूछ लम्बी और प्रकाशमान हो जाती है। वेद में 'धूमकेतु' को मृत्यु (मारक) विशेषण दिया गया है।[४४] इसमें अति विषैले पदार्थ होते हैं। इसी से इसे मारक की संज्ञा दी गई है। धूमकेतु का आकार वहुत बड़ा होता है।[४५] वेद में इसे 'सः महान् अनिमानः' कहा गया है।[४६] इसके तीन भाग होते हैं—शिर, नाभि और पूंछ। धूम के सिर का व्यास पृथिवी के व्यास का चार गुने से लेकर बीस गुने तक बड़ा होता है। इस आधार पर इसकी पूंछ की लम्बाई का अनुमान पाठक स्वयं लगा सकते हैं।

द्युमण्डल में अनेक धूमकेतु हैं। वेद में 'धूमकेतवः' शब्द उनके बहुत्व का संकेत कर रहा है।[४७] ये पृथक्-पृथक् गतिक्रम से दिखाई देते हैं। इन का गतिक्रम साढ़े तीन वर्ष से लेकर पांच सौ छः सौ वर्ष होता है। कुछ

तो इससे भी अधिक समय लेते हैं। इसकी पूंछ सूक्ष्म कणों से बनी है। जब ये सूर्य के निकट पहुंचते हैं। तो पूंछ सूर्य से विपरीत दिशा में मुड़ जाती है। सूर्य के सामने आ जाने पर भी इसकी छाया सूर्य पर नहीं पड़ती है।

उल्का

रात्रि में प्रायः तारे टूटते से दिखाई देते हैं, जो वस्तुतः 'उल्काएं' होती हैं। इस घटना को उल्कापात कहते हैं। ये प्राकृतिक द्रव्यों के टुकड़े होते हैं। इनकी उत्पत्ति धूमकेतुओं से होती है।[४८] वेद में कहा है—'नक्षत्रम् उल्काभिहतम्' अर्थात् उल्काओं से घिरा हुआ नक्षत्र। सो ऐसा नक्षत्र धूमकेतु ही हो सकता है। धूमकेतु उल्काओं को छोड़ता है।

अब प्रश्न उठता है कि उल्काओं को कौन धूमकेतु से अलग कर नीचे प्रेरित करता है। वेद में उत्तर दिया—सूर्य।[४९] इस मन्त्र का देवता बृहस्पति है। पृथिवी को सींचने के लिये बृहस्पति जल की योनि (मेघ) को ऐसे फेंकता है, जैसे सूर्य आकाश में उल्काओं को फेंकता है (अर्कं उल्कामिव द्यौः)।

उल्कापात से हानि होने की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। इसी से वेद में प्रार्थना की गई है कि 'कांपती हुई भूमि शान्त हो। उल्काओं से ताडित स्थान शान्त हो।[५०] उल्कायें बहुत विशाल आकार की ठोस धातुपिण्ड होती हैं। इनका भार पचास-पचास मन से हजारों मन तक का होता है। इनके गिरने से पृथिवी में विशाल गड्ढे हो जाते हैं और भूमि धंस जाती है।

सौरमण्डल का यह संक्षिप्त परिचय वैदिक मन्त्रों के आधार पर दिया। इस दिशा में और अध्ययन व मनन अपेक्षित है। विशेष विवरण स्वामी ब्रह्ममुनिकृत 'वैदिक ज्योतिष शास्त्र' नामक ग्रन्थ में देखा जा सकता है।

पाद-टिप्पणियां

१. अरुण आरोचनः। मासकृन्मासानां चार्धमासानां च कर्ता भवति। —निरुक्त ५।२१॥

२. तमा स्थितिविमर्दार्धंग्रासाद्यं तु यथोदितम्।
प्रमाणं वलनाभीष्टग्रासादिहिमरश्मिवत्॥

—सूर्यसिद्धान्त

३. चन्द्रो जलमर्कोऽग्निमृद्भूः ॥ —आर्यभट्टीय सिद्धान्त

४. सूर्य एवाग्नेयः । चन्द्रमाः सौम्यो ॥ —शतपथ० ६।३।२४।

५. शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।

—ऋ० ९।१०२।१॥

६. शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः :

—अथर्व० १९।९।१०॥

७. गौः ग्मा ज्मा क्ष्मा ज्ञा क्षमा क्षोणिः क्षितिः अवनिः उर्वी पृथिवी मही रिपः अदितिः इडा निर्ऋतिः भूः भूमिः पूषा गातुः गोत्रा इत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि ॥ —निघण्टुः

८. दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ।

—ऋ० ७।९९।३॥

९. आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।

—ऋ० ५।४५।९॥

१०. आ यातु मित्र ऋतुभिः कल्पमानः संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः ।

—अथर्व० ३।८।१॥

११. ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥

—अथर्व० १२।१।३६॥

१२. दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ।

—ऋ० ७।९९।२॥

ककुभ इति दिङ्नाम । —निघण्टुः १।६॥

१३. रविवर्षार्धं देवाः पश्यन्त्युदितं तथा प्रेताः ।

—आर्यभट्टीय, गोलपादः—१७

१४. बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥

—अथर्व० १२।१।११॥

१५. विद्मो त्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ।
—अथर्व० १।२।१॥

१६. यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।
—अथर्व १२।१।२॥

१७. गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।
—अथर्व० १२।१।११॥

१८. तिस्रो भूमीरुपरा: षड्विधाना: ।
—ऋ० ७।८७।५॥

१९. सप्तद्वीपा वसुमती ॥ —महाभाष्य १।१।११॥

२०. शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ॥
—अथर्व० १२।१।२६॥

२१. इमा यास्तिस्रः पृथिवीस्तासां ह भूमिरुत्तमा ।
तासामधि त्वचो अहं भेषजं समु जग्रभम् ॥
—अथर्व० ६।२१।१॥

२२. निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।
—अथर्व० १२।१।४४॥

२३. यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेहि० ॥
—अथर्व० १२।१।१२॥

२४. बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ।
—ऋ० ७।३४।७॥

२५. लोष्ठः क्षिप्तो बाहुवेगं गत्वा नैव तिर्यग्गागच्छति नोर्ध्वमारोहति पृथिवीविकारः पृथिवीमेव गच्छति । —महाभाष्य १।१।७॥

२६. आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या । आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात्क्व पतत्वियं खे ॥
(सि० शि० —भुवनकोश—६)

२७. असौ यस्ताम्रोऽअरुणऽउत बभ्रुः सुमंगलः ।
—यजु० १६।६॥

२८. लोहिताङ्गः क्रूरदृक् क्रूरः रक्तगौरसिश्रितवर्णः ॥

—ज्योतिषतत्त्वम्

२९. दष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडाम्० ।

—बृहत्संहिता - मङ्गलाचार ६।३॥

३०. याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरा
श्विना गतम् ॥

ऋ० १।११२।५॥

३१. कण्वो मेधावी । —निघण्टुः ३।१५॥
३२. कण निमीलने । (चुरादि०)

३३. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥

—ऋ० ४।५०।४॥

३४. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव ।

—तै० ब्रा० १।१।५॥

३५. आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥

—ऋ० ४।४३।१२॥

३६. द्यौश्चं म इदं पृथिवी च प्रचेतसौ शुक्रो बृहन् दक्षिणया
पिपर्तु ।

—अथर्व० ६।५३।१॥

३७. अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमानैः ।

—यजु० ७।१६॥

३८. असितः शनिग्रहः । —हलायुधकोश

३९. अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः ।
व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥

—ऋ० १।४६।१०॥

४०. (सूर्यः अंशवे हिरण्यं प्रति भाः उ अभूत्—उ०) अर्थात् जब सूर्य उत्पन्न होते समय किरण फैलाने के लिए हिरण्य जैसा सुनहरे तेजवाला देदीप्यमान बना, तब (असितः जिह्वया व्यख्यत्) शनिग्रह जिह्वा के साथ प्रकट हुआ।

४१. ता इन्न्वे३व समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः॥
—ऋ० ४।५१।९॥

४२. कद्व ऋतस्य धर्णसि कद् वरुणस्य चक्षणम्।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी॥
—ऋ० १।१०५।६॥

४३. ऋतमेव परमेष्ठि॥ —तै० ब्रा० १।५।५।१॥

४४. शं नो मृत्युर्धूमकेतुः।
—अथर्व १९।९।१०॥

४५. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः।
धिये वाजाय हिन्वतु॥
—ऋ० १।२७।११॥

४६. वह महान् तथा अपरिमित आकारवाला है।

४७. हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि।
यतन्ते वृथगग्नयः।
—ऋ० ८।४३।४॥

४८. नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु॥
—अथर्व० १९।९।९॥

४९. आमुषायन् मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
—अथर्व० २०।१६।४॥

५०. शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्॥
—अथर्व० १९।९।८॥

—:०:—

पृथिवी की अवस्था

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदाः पृथिवी दक्षिणावत एषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
—अथर्व० १८।३।४९॥

अर्थः—हे जीव ! तू सृष्टि में जन्म पाने के लिये बहुविध जीवदेहों को प्रकट करनेवाली सुखदायिनी इस पृथिवी भूमिरूप माता को प्राप्त हो। युवति ऊन जैसी मृदु हो जाती है। तुझे विपत्ति के आश्रय से बचावे। या पूर्व प्रथम सृष्टि के पथाग्र पर तेरी रक्षा करे।

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवी मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥
—अथर्व० १८।३।५०॥

अर्थः—तथा हे पृथिवी ! तू इस जीव के लिये पुलकितपृष्ठा—उफनी हुई होजा। बाधा या रुकावट न डाल किन्तु इसके लिये भली प्रकार उपयुक्त और उसके उभरने के योग्य हो। हे भूमि ! माता जैसे पुत्र को दुग्धरस सेचन पार्श्व से आश्रय देती है, ऐसे इसे भी आश्रय दे।

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतःस्योना विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥
—अथर्व० १८।३।५१॥

अर्थः—उफनी हुई पृथिवी भली प्रकार हो। उसके अन्दर जीव शरीर के निर्माण करनेवाले गृह-कोश-गर्भ-कोश सहस्रों ही आश्रय देने-वाले बने तैयार हों। वे गर्भकोश गर्भकोहे इस के लिये रसपूर्ण सुखकारक शरण हों।

द्वीपों का विवरण

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ही आठ उपद्वीप और बन गये, ऐसा कुछ लोगों का कथन है। वे स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लंका हैं।

प्लक्षद्वीप—श्री शुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! अब परिमाण लक्षण और स्थिति के अनुसार प्लक्षादि अन्य द्वीपों के वर्षविभाग का वर्णन

किया जाता है। जिस प्रकार मेरु पर्वत जम्बूद्वीप से घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले खारे जल के समुद्र से परिवेष्टित है। फिर खाई जिस प्रकार क्षार समुद्र भी अपने से दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीप से घिरा हुआ है। उसी के कारण इसका नाम प्लक्षद्वीप है।

इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज इध्मजिह्व थे।

इनमें भी सात पर्वत और सात नदियां ही प्रसिद्ध हैं।

वहां मणिकूट वज्रकूट इन्द्रसेन ज्योतिष्मान् सुपर्ण हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—ये सात मर्यादापर्वत हैं तथा अरुणा नृम्णा आङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—ये सात महानदियां हैं। वहां हंस, पतङ्ग उर्ध्वायन और सत्याङ्ग नाम के चार वर्ण हैं।

प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तारवाले इक्षुरस के समुद्र से घिरा हुआ है। उस के आगे उससे दुगुने परिमाणवाला शाल्मली द्वीप है, जो उतने ही विस्तारवाले मदिरा के सागर से घिरा है। प्लक्षद्वीप के पाकर के पेड़ के बरावर उस में शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है।

कुशद्वीप—इसी प्रकार मदिरा के समुद्र से आगे उससे दूने परिमाण वाला कुशद्वीप है।

पूर्वोक्त द्वीपों के समान यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृत के समुद्र से घिरा हुआ है। इसमें भगवान् का रचा हुआ एक कुशों का झाड़ है, उसी से इस द्वीप का नाम निश्चित हुआ है।

वह दूसरे अग्निदेव के समान अपनी कोमल शिखाओं की कान्ति से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता रहता है। उन की सीमाओं को निश्चय करनेवाले सात पर्वत हैं और सात ही नदियां हैं।

पर्वतों के नाम चक्र चतु:श्रृङ्ग कपिल चित्रकूट देवानिक उर्ध्वरोमा और द्रविण हैं।

नदियों के नाम हैं—रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता और मन्त्रमाला।

क्रौञ्चद्वीप—राजन्! फिर घृतसमुद्र से आगे उससे द्विगुण परिमाण वाला क्रौञ्चद्वीप है।

जिस प्रकार कुशद्वीप घृतसमुद्र से घिरा हुआ है, उसी प्रकार यह अपने ही समान विस्तारवाले दूध के समुद्र से घिरा हुआ है। यहां क्रौञ्च

नाम का एक बहुत बड़ा पर्वत हैं, उसी के कारण इसका नाम क्रौञ्चद्वीप हुआ है।

शाकद्वीप इसी प्रकार क्षीर समुद्र से आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप है, जो अपने ही समान परिमाणवाले मट्ठे के समुद्र से घिरा हुआ है।

इसमें शाक नाम का एक बहुत बड़ा वृक्ष है, वही इस क्षेत्र के नाम का कारण है। उसकी अत्यन्त मनोहर सुगन्ध से सारा द्वीप महकता रहता है।

मेधातिथि नामक उसके अधिपति भी राजा प्रियव्रत के ही पुत्र थे। उन्होंने भी अपने द्वीप को सात वर्षों में विभक्त किया और उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने पुत्र पुरोजय, मनोजव, पवमान, धुम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधार को अधिपतिरूप से नियुक्त कर स्वयं भगवान् अनन्त में दत्तचित्त हो तपोवन को चले गये। इन वर्षों में भी सात मर्यादापर्वत और सात नदियां ही हैं, जो प्राणादि वृत्तिरूप अपनी ध्वजाओं के सहित प्राणियों के भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं तथा सम्पूर्ण दृश्य जगत् जिनके आधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी वायु भगवान् हमारी रक्षा करें।

पुष्करद्वीप--इसी तरह मट्ठे के समुद्र से आगे उसके चारों ओर उससे दुगने विस्तारवाला पुष्करद्वीप है। वह चारों ओर से अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जल के समुद्र से घिरा है। वहां अग्नि की शिखा के समान देदीप्यमान लाखों स्वर्णमय पंखड़ियोंवाला एक बहुत बड़ा पुष्कर (कमल) है, जो ब्रह्मा जी का आसन माना जाता है।

उस द्वीप के बीचोंबीच उसके पूर्वीय और पश्चिमीय विभागों की मर्यादा निश्चित करनेवाला मानसोत्तर नाम का एक ही पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊंचा और उतना ही लम्बा है। इसके ऊपर चारों दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों की चार पुरियां हैं। इन पर मेरुपर्वत के चारों ओर घूमनेवाले सूर्य के रथ का संवत्सररूप पहिया देवताओं के दिन और रात हैं।

—:०:—

चित्र का वृत्तान्त

भूसंस्थानम्—सम्राट् कार्तवीर्य अर्जुन के काल का प्राचीन जगत्, सन् ६४०० ईसा पूर्व ।

१. **जम्बूद्वीपः**—एशिया भूखण्ड, एशिया माइनर और अरबस्तान और येनिसीई के पश्चिमी मैदानों को छोड़कर ।

नववर्षाणि --नौ प्रमुख देश—१—उत्तरा कुरवः—तन्द्रा और साइबेरिया के जङ्गलों की पट्टी । २—हिरणमय—साइबेरिया के दक्षिण-पूर्व के जनपद, आर्य संस्कृति का केन्द्र ६००० से ४५०० ईसा पूर्व तक । ३—रम्यक - येनिमीई नदी और बलखाश झील के बीच का प्रदेश । ४—केतुमाल—रूसी तुर्क स्थान, राष्ट्रों का जन्म स्थान । ५—इलावृत—ऊपरी मङ्गोलिया और पूर्वी तुर्क स्थान । ६—भद्राख—मनचूरिया । ७—हरिवर्ष—असल चीन ८—किंपुरुष—तिब्बत । ९—भारत—इण्डिया ।

२. **प्लक्षद्वीपः**—दक्षिणपूर्व अर्बस्थान, एशिया माइनर और योरूप में एशिया ।

सप्तवर्षाणि--सप्त देशः १- शान्तमय—एलहासा और अर्बस्थान में उमान । २—शिशर—सीरिया । ३ सुखद—खुरदिस्थान और आरमिनिया । ४—आनन्द—एशिया में तुर्की । ५—शिव—योरूप में दक्षिणी रूस और युकरेन । ६—क्षेपक—योरूप में रूस महान् । ७—ध्रुव—उत्तरी रूस और नोवाया जेमिया ।

सप्तवर्षपर्वताः—सप्त देशों के सप्त पर्वत—

१—गोमेद—जिमेल अखदार शान्तमय में हरे पर्वत । २—चन्द्र—लेवनान, शिशिर में श्वेत पर्वत । ३—भारत—अरफात, एशिया माइनर में सबसे ऊंची चोटी, जो सुखद में १६९१६ फीट ऊंची है । ४. दुन्दुभि—तौरस आनन्द में । ५. सोमक—काकेसस् शिव में । ६. सुमनाः—यूराल क्षेपक में । ७. वैभाग—यूराल के उत्तरी फैलाव ध्रुव में ।

सप्तनद्यः—सप्त नदियां—हर देश में एक-एक— अनुतप्ता, शिखी, रिपाशा, विदिशा, क्रमु, अमृता, सुकृता ।

३. **शाल्मलद्वीपः**—पूर्वी अफ्रीका के साथ गोण्डवाना का प्राचीन भूखण्ड, जिसे लेमारिया भी कहते है ।

सप्त वर्षाणि—सप्त देश—१—श्वेत—२—हरित—३ निभूत—गोण्डवाना के प्राचीन भूखण्ड के प्रदेश या लेमारिया। ४—रोहित—तंगानिका, गोण्डवाना के कुछ भाग और सोमालीलैण्ड। ५-वैद्युत—कीनिया और युगाण्डा। ६—मानस—अविसीनिया। ७—सुप्रभ—एंग्लो इजिपशियन, सूडान और लीबिया।

सप्तवर्षपर्वताः—सात देशों के सात पर्वत—१—कुमुद। २—उन्नत। ३—बलादक—प्राचीन गोण्डवाना या लेमिनिया के पर्वत। ४—द्रोण—लिविंगटन रोहित में। ५-कङ्क—एल्गन, केनिया और किलि-यानजारू वैद्युत में। ६—महिष—आतिशफिशां ४६०० ईसा पूर्व, मानस में। ७—ककुद्मान—मारा पहाड़ियां, सुप्रभ में।

सप्तनद्यः—सात नदियां, हर देश में एक। योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और निवृत।

४. कुशद्वीप—दक्षिणी और पश्चिमी अफ्रीका।

सप्त वर्षाणि—सात देश—१—उद्भिद-केप कालोनी। २ वेणुमत—नटाल, आरेन्ज फ्री स्टेट और ट्रान्सवाल। ३—वैरथ—दक्षिण पश्चिम अफ्रीका और बेचुआना लैण्ड। ४—लम्बन—पोरचुगीस का पश्चिमी अफ्रीका, कान्गो और फ्रेन्च इक्वीटोरियल अफ्रीका। ५-धृति-लेक-चाड और नैजर नदी के बीच का प्रदेश। ६—प्रभाकर—पश्चिमी अफ्रीका। ७—कपिल—सहारा तक फैला हुआ लेकचाड का उत्तरी भाग।

सप्तवर्षपर्वताः—सात देशों के सात पर्वत—१—विद्रुम—उद्भिद में रुवेनजोरा पहाड़ियां। २—हेमशैल—वेणुमत में ड्राकेन्सबर्गरेंज। ३—द्युतिमान्—वैरथ में जेंकर अफ्रिकान्दर पहाड़ियां। ४—पुष्पवान—लम्बन में लोबिली। ५—कुशेशय—धृति में कामेरुन। ६—हरि—काँग पहाड़ियां, प्रभाकर में सईरा, लिओन (लायन पहाड़ी) के पहाड़ी इलाके। ७—मन्दर—कपिल में तिबेस्ता।

सप्तनद्यः—सात नदियां। हर देश में एक—धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सभति, द्युति, गर्भा और मही।

५. क्रौञ्चद्वीप—उत्तरी अफ्रीका और योरुप, योरुप में रशिया को छोड़कर।

सप्तवर्षाणि—सात देश—१—कुशल—मोरक्को और अलजिरिया। २ मन्दग—पोरचुगल, स्पेन और कोरसीका और सारडीनिया तक का भू-भाग। ३—उष्ण—कोरसीका और सारडीनिया से कालासागर तक का प्रदेश। ४—पावर—फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड आस्ट्रिया और जर्मनी का कुछ भाग ५ - अन्धकारक—हंगरी और जिकोस्लावाकिया। ६—मुनि—ग्रेट ब्रिटेन, आयरलेण्ड, बेलजियम्, हालैण्ड, डेनमार्क, प्रुशिया और उत्तरी सागर का कुछ भू-भाग। ७—दुन्दुभि—स्कानडीनाविया, लापलैण्ड और उत्तरी सागर का भू-भाग।

सप्त वर्षपर्वताः—सप्त पर्वत सात देशों के—१—क्रौञ्च—एटलास पहाड़ियां कुशल में। १—वामन—मन्दग मेपिरीनीस। ३—अन्धकारक उष्ण में अपिन्नाइन। ४—देवावृत—पीवर में आलन्स। ५—पुण्डरीकवान—अन्धकारक में कारपाथियन। ६—दुन्दुभि—मुनि में ग्रामपियन पहाड़ियां ७—महारौल—दुन्दुभि में स्कान्डीनेवियन पहाड़ियां।

सप्तनद्यः—सात नदियाँ, हर देश में एक—गौरी, कुमदती, सन्ध्या, रात्रि, मनोज वा क्षन्ति और पुण्डरीका।

६. **शाकद्वीप**—उत्तरी अमेरिका, ग्रीनलैण्ड, मध्य अमेरिका, वेस्ट इण्डीज, इक्वेडर, कोलम्बिया और वेनीजुएला।

सप्तवर्षाणि—सात देश—१—जलद—अलासका। २—कुमार—केनेडा के तन्द्रा बड़े तालाबों से घिरे हुए। ३—सुकुमार—केनडा। ४—मनीक—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका। ५—कुसुमोद—ग्रीनलैण्ड तक फैला हुआ लेब्राडर। ६—मौदाकि—मेक्जिको मध्य अमेरिका और वेस्ट इण्डीज। ७—महाद्रुम—इक्वेडर कोलम्बिया और वेनीजुआला।

सप्त वर्षपर्वताः—सप्त पहाड़ियां सात देशों के - १ उदयगिरि—मेक किनले, १.० ग्रीनविच के उत्तरी मलद में। २—जलाधार—कुमार में प्रशान्त महासागर का कोस्ट रेंज। ३—रैवतक—रोकी सुकुमार में (या नित्य रैवती प्रतिष्ठिता)। ४—खान—अलेधानी पहाड़ियां, जो अपनी उच्चतम शिखिर ६७०७ फीट तक गये—ब्लाएक डोम पहाड़ी पनीचक में। ५—अस्तगिरि—कुसुमेद में—अप्पालाचियन पहाड़ियां। लब्राटर से ग्रीनलैण्ड तक ८० से २० लागीट्यूड ग्रीनचित्र के पश्चिम में। ६—अश्विकेप—मौदाकि में साईरा नेवादा। ७—केसरी—महाद्रुम में उत्तर कारडिलर्स।

सप्त नद्यः—सात नदियां, हर देश में एक—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षुः, वेणुका तथा गभस्ती।

७. पुष्करद्वीप— दक्षिण अमेरिका अमाजान नदी से लाप्लाटा तक।

वर्षद्वय—दो देश—१—महावीर—चिली प्रशान्त सागर की फाउण्डर्ड भूमि। २—घातकीखण्ड—ब्राजील, बोलिविया, पारागुआ उरुग्वे और अरजन टैन रिपब्लिक, अटलाण्टिक की फाउण्डर्ड भूमि के साथ। ३—वर्षपर्वतः—पानसोत्तर—महावीर और घातकीखण्ड के बीच अण्डस।

८. सप्तसमुद्राः—सात समुद्र—१—लवणसमुद्र—साइबिरिया के निचले मैदान, कस्पियन समुद्र और पश्चिमी पर्शिया। २—इक्षुसमुद्र—बालटिक समुद्र, पूर्वी प्रुशिया, काला सागर, और पूर्वी भूमध्यसागर। ३—सुरा समुद्र—लाल सागर, और शाल्मल और कुश के बीच का समुद्र। ४—सर्पिःसमुद्र—ग्रीनलैण्ड और स्कानडिनेविया के बीच का समुद्र। ६—क्षीरसमुद्र - प्रशान्त। ७—जलसमुद्र—दक्षिणी अटलाण्टिक।

९. सप्त पातालानि—ओशानिया। १—अतल—सुमात्रा। २—पितल—बोरनियो। ३—नितल - जावा। ४—गभस्तल—सिलिबीस। ५—महातल—आस्ट्रेलिया। ६—सुतल (श्रीतल)—न्यू गिनी। ७—पाताल—न्यूजीलैण्ड।

—:०:—

सूर्यमण्डल के सप्त गण

सूर्य-मण्डल अथवा सूर्य-रथ में सात गण निवास करते हैं। ये प्रति मास बदलते हैं।

१. चैत्र—मधुमास में ऋतुस्थला पुलस्त्य वासुकि रथकृत हेतिः तुम्बुरु।

२. वैशाख—माधव मास में अर्यमा पुलहः रथोजा पुञ्जिकस्थला प्रहेतिः कच्छनीरः नारद।

३. ज्येष्ठ—शुचि मास में मित्रः अत्रिः तक्षकः रक्षः पौरुषेयः मेनका हाहा।

४. आषाढ—शुक्रमास में वरुण वसिष्ठ रम्भा सहजन्या हूहू बुधः रथचित्रः।

५. श्रावण—नभस् मास में इन्द्र विश्वावसुः स्तोत्र एलापत्र अङ्गिरा प्रम्लोचा सर्पः।

६. भाद्रपद—मास में विवस्वान् उग्रसेन भृगु आपूरण अनुम्लोचा शखपाल व्याघ्रः।

७. आश्वयुज—मास में पूषा सुरुचि धाता गौतम धनञ्जय सुषेण घृताची।

८. कार्तिक—मास में विभावसु भरद्वाज पर्जन्य ऐरावत विश्वाची सेनजित आपः (राक्षस)।

९. मार्गशीर्ष—मास में अंशु काश्यप तार्क्ष्य महाप्रज्ञ उर्वशी चित्रसेन विद्युत्।

१०. पौष—मास में ऋतुः भगः ऊर्णायुः स्फूर्जः कर्कोटकः अरिष्ठनेमिः पूर्वचित्तिः।

११. माघ—मास में त्वष्ट्रा जमदग्निः कम्बल तिलोत्तमा ब्रह्मापेत ऋतजित् धृतराष्ट्र।

१२. फाल्गुन—मास में विष्णु अश्वतर रम्भा सूर्यवर्चा सत्यजित् विश्वामित्र यज्ञापेत।

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥

—यजु० १३।८॥

ऋग्वेद में ऐन्द्र सूक्त के बारहवें मन्त्र में इन्द्र की सात रश्मियां कही गयी हैं—

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥

—ऋग्वेद २।१२।१२॥

सूर्य की सहस्र रश्मियों में ये सात प्रधान रश्मियां ग्रह-योनियां लिखी हैं—

रवे रश्मिसहस्रं यत् पराङ् मया समुदाहृतम्।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः॥

दिशाओं का वर्णन

प्राची दिशा के साथ अग्निमुख वसुओं का,

दक्षिण दिशा के साथ इन्द्रमुख रुद्रों का,
प्रतीची दिशा के साथ वरुणमुख आदित्यों का,
उदीची दिशा के साथ विष्णुमुख विश्वेदेवा का,
ऊर्ध्वा दिशा के साथ ईशानमुख मरुतों का सम्बन्ध है।

मनसापरिक्रमा मन्त्राः

दिशा	देवता	रक्षक	
१. प्राची	अग्नि	आदित्य	असित
२. दक्षिणा	इन्द्र	पितर (ज्ञानी)	तिरश्चि
३. प्रतीची	वरुण	अन्न	पृदाकू
४. उदीची	सोम	अशनि	स्वजः
५. ध्रुवा (नीचे)	विष्णु	वीरुध	कल्माषग्रीव
६. ऊर्ध्वा (ऊपर)	बृहस्पति	वर्षा	श्वित्रा

नोट—प्रत्येक दिशा का एक-एक देवता है। एक-एक विघ्न कारण दोष से उस दिशा का रक्षक देवता रक्षा करता है। इस प्रकार से उपासना तथा चिकित्सा करने से शारीरिक आध्यात्मिक लाभ बल निर्भयता प्राप्त होती है।

अतीन्द्रिय ज्ञान के उदाहरण

अब हम अतीन्द्रिय ज्ञान के कतिपय उदाहरण उपस्थित करते हैं—
द्यावापृथिवी का सामीप्य अथवा द्यावापृथिवी का सहभाव—
दीर्घतमा-दृष्ट द्यावापृथिवी सूक्त की ऋक्—

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा।
—ऋ० १।१५९।४॥

अर्थात्—ते=वे द्यावापृथिवी [जो] जामी=भगिनियां, सयोनी=समान उत्पत्ति स्थानवालियां, मिथुना=परस्पर संयुक्त समोकसा=समान निवास स्थानवालियां।

स्पष्ट है कि द्यावापृथिवी का स्थान ओक=साथ ही था।
अगस्त्य-दृष्ट द्यावापृथिवी सूक्त की ऋक्—

सङ्गच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे।
—ऋ० १।१८५।५॥

प्रजापति वैश्वामित्र-दृष्ट विश्वेदेवा सूक्त की ऋक्—

समान्या वियुते दूरेअन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥
—ऋ० ३।५४।७॥

यहां पहली दो ऋचाओं में द्यावापृथिवी को—जामी सयोनी मिथुना समोकसा संगच्छमाने समन्ते स्वसारा पित्रोरुपस्थे पदों से एक अत्यन्त अतीन्द्रिय दशा का ज्ञान वर्णित है। तीसरी ऋक् में सामान्या पद से लगभग वैसा ही भाव दिखाया है और अगले वियुते पद से द्यावापृथिवी के एक-दूसरे से पृथक् होने का तथ्य कहा गया है। देखो निरुक्त भाष्य ४।२४ के अन्त में वियुते पद पर भाष्य।

अन्य संहिताओं तथा ब्राह्मणों में—

इमे वै सहास्ताम्। तैत्ति सं० ३।४।३॥
द्यावापृथिवी सहास्ताम्। तै० सं० ५।२।३।तै० ब्रा० १।१।३।२॥
इमे वै सहास्ताम्। मैत्रा० सं० ३।२।२॥
इमे वै सहास्ताम्। काठक सं० १३।१२॥
इमे वै सहास्ताम्। का० सं० १३।१२॥
इमौ वै लोकौ सहास्ताम्। ताण्ड्य ब्रा० ७।१०।१॥
इमे वै लोकाः सहासन्। ता० ब्रा० ८।१।६॥
सह हैवेमावग्रे लोकावासतुः। शतपथ ब्रा० ७।१।२।२३॥
इमौ वे लोकौ सह सन्तौ व्यैताम्। जैमिनि ब्रा० १।१४५॥

सब ऋषि एक स्वर से प्रवचन कर रहे हैं, कि किसी समय द्यावा-पृथिवी, जो आज एक दूसरे से लाखों योजन की दूरी पर हैं, साथ-साथ थे।

द्यौः का अङ्ग आदित्य पृथिवी के साथ—

असावादित्योऽस्मिन् लोक आसीत्। तै० सं० ७।३।१०॥
इह वा आदित्य आसीत् तमितोऽध्यमुं लोकमहरन्।
मै० सं० १।११।१७॥ ३।६।३॥

अर्थात्—यहां पृथिवी के साथ ही कभी आदित्य था। उसे यहां से उस लोक को ऊपर ले गये।

—:०:—

सृष्टि-भोक्ता जीवात्मा का परिचय

१. जीव —प्राणियों का वह चेतन तत्त्व, जिससे वह जीवित रहते हैं।

२. आत्मा—निरन्तर क्रियाशील होने से जीव का नाम आत्मा भी है।

३. प्राणी —जीव प्राण को धारण करने से इसका नाम प्राणी है। सृष्टि को भोगने से जीव को भोक्ता भी कहते हैं।

जीव का स्वरूप —जीव एक सूक्ष्मतर चेतन तत्त्व है। वह अजन्मा, अमर, अजर, नित्य है।

जीव के गुण—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख ज्ञान यह जीव के छः गुण हैं। —'वैशेषिकदर्शन'

ये गुण प्राणी मात्र में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।

जीव के तीन शरीर होते हैं—

१. एक स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुणरूप हैं। चेतन तत्त्व रूप, जो अगोचर होता है।

२. सूक्ष्म शरीर—पञ्च प्राण, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च सूक्ष्मभूत (पञ्च तन्मात्र) और मन तथा बुद्धि, सत्रह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म, मरण आदि में भी जीव के साथ रहता है। जब तक कि जीव की मुक्ति नहीं होती, वह सूक्ष्म शरीर से संयुक्त रहता है। यह सूक्ष्म शरीर सूक्ष्मभूतों के अंशों से बना है।

—सत्यार्थप्रकाश का ९वां समुल्लास

स्थूल शरीर—जो दृष्टिगोचर होता है। स्थूल शरीर पञ्च महाभूतों से बना है। यह मानव का स्थूल शरीर ग्यारह इन्द्रियां, पञ्च कोषों से तथा अङ्ग उपांग से सुशोभित है, सुन्दर है।

इन्हीं इन्द्रियों के कारण मनुष्य कर्म-भोग-योनि वाला कहाता है। जीव के कर्मानुसार स्थूल शरीरों में भी इन्द्रियां कम ज्यादा होती हैं। एकेन्द्रिय प्राणी, २ इन्द्रिय प्राणी, ५ इन्द्रिय प्राणी, ११ इन्द्रिय प्राणी, केवल मानव शरीर को ही प्राप्त हैं।

यह इन्द्रिय जीव के बन्धु, मित्र हैं, जीव के सहायक हैं। सूक्ष्म तत्त्व रूप इन्द्रिय स्थूल शरीर के स्थूल इन्द्रियों के कर्म कार्य में सहायक हैं।

स्थूल शरीर के विना जीवन का कोई भी कार्य सम्पादन नहीं होता।

स्थूल शरीर के अङ्ग जिसके विकलांग हैं, या इन्द्रियों का अभाव है, जैसे लंगड़े, अन्धे, गूंगे, बहरे, वह बड़े असमर्थ हो जाते हैं। यह स्थूल शरीर वेदों में देवपुरी कहा गया है। यह स्रष्टा का बना हुआ आत्मा का श्रेष्ठ मन्दिर है। —अथर्ववेद

जीवात्मा का स्वरूप—जीव सूक्ष्म तत्त्व है, वह लिंगरहित है, असंख्य है, अल्प सामर्थ्यवाला क्रियाशील है, अल्पज्ञ है, कर्म करने में स्वतन्त्र है, फल भोगने में ईश्वराधीन है।

जीव का सामर्थ्य—जीव का सामर्थ्य चौबीस प्रकार का होता है। बल पराक्रम आकर्षण प्रेरणा गति भीषण विवेचन क्रिया उत्साह स्मरण निश्चय इच्छा प्रेम द्वेष संयोग विभाग संयोजक विभाजक श्रवण स्पर्शन दर्शन स्वादन और गन्ध ग्रहण तथा ज्ञान—इन चौबीस प्रकार के सामर्थ्य युक्त जीव हैं। —सत्यार्थप्रकाश ९वां समुल्लास

जीव कभी पुरुष शरीर, कभी स्त्री शरीर कभी नपुंसक शरीर धारण करके विविध नाटक धारण करता है। विविध लिंगवाले शरीरों में रहकर भी कभी शिशु कुमार कुमारी युवक युवति वृद्ध वृद्धा—अनेक अवस्थाओं में जीवन में नाटक खेलता है। जैसे एक ही व्यक्ति नटशाला में विविध रूपों को धारण कर नाटक खेलता है, ऐसे ही जीव जन्म जीवन मृत्यु पुनर्जन्म में कर्म भोग चक्कर का नाटक खेलता है। सृष्टि-रूपी नटशाला में स्रष्टारूप अध्यक्ष नटराज की व्यवस्था में जीवों का नाटक होता है।

जीव की गति—सृष्टि की उत्पत्ति के समय अन्य ब्रह्माण्डों से जीवों का सामूहिक आगमन होता है। सृष्टि की स्थिति के समय, जन्म, जीवन, मृत्यु के समय स्व-स्व कर्मानुसार अकेला ही आता-जाता है। जब-जब धरती पर भूकम्प या पूर्ण जल प्लावन होता है, तब-तब सामूहिक रूप से जीव अन्य लोक में चले जाते हैं।

जब जलप्लावन की अवधि समाप्त होती है, पुनः चेतन सृष्टि के आरम्भ के समय सामूहिक रूप से जीव पुनः पृथ्वी पर आ जाते हैं।

जब सृष्टि का प्रलय होता है, तब भी जीव सामूहिक रूप से दूसरे ब्रह्माण्ड में चले जाते हैं।

जैसे विविध प्रकार के पक्षी ऋतुओं के कारण देश-देशान्तर से आते और जाते हैं यह प्रत्यक्ष है। जीव के परोक्ष आवागमन का उपरोक्त उदाहरण प्रत्यक्ष है, जैसे बाढ़ और अकाल के कारण भी मनुष्य आदि प्राणी स्थान-परिवर्त्तन कर देते हैं।

जीव का भ्रमण—जीव का गमन तथा आगमन ईश्वर के व्यवस्थानुसार होता है। जब-जब जीव का आगमन या गमन होता है, तब जीव सूक्ष्म शरीर के सहारे सूर्य रश्मि और वायु के माध्यम से आता है।

मृत्यु के उपरान्त जीव शरीर को छोड़कर प्रथम दिन सूर्य में, दूसरे दिन अग्नि में, तीसरे दिन वायु में, चौथे दिन आदित्य में, पांचवें दिन चन्द्रमा में, छठे दिन ऋतु में, सातवें दिन मरुत में, आठवें दिन बृहस्पति में, नवें दिन मित्र-प्राण में, दसवें दिन वरुण में, ग्यारवें दिन इन्द्र में, बारहत्रें दिन विश्वेदेवा (खाद्य पदार्थों) में भ्रमण करते हुवे अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होता है।

—यजुर्वेद ३९।६

विविध योनि में जाने से पूर्व जीव वायु के साथ रहता है। जल औषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है अर्थात् जिस योनि में जाना होता है, उस योनि के नर शरीर में प्रथम प्रवेश करता है। पुनः गर्भाधान द्वारा स्त्री गर्भाशय में स्थित होकर पुनः जन्म लेता है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पुनर्जन्म का विषय यह अति गूढतम रहस्य स्रष्टा और वेदज्ञ मुनि योगी जानते हैं।

जीव के कर्मफल—जो जीव मनुष्य शरीर में सात्त्विक होता है, वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं, वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं, वे नीच गति को प्राप्त होते हैं।

जो अत्यन्त तमोगुणी हैं, वे स्थावर वृक्षादि कृमि-कीट मत्स्य, सर्प कच्छप पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं।

जो मध्यम तमोगुणी हैं, वे हाथी, घोड़ा, शूद्र म्लेच्छ निन्दित कर्म करनेहारे सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् शूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं।

जो उत्तम तमोगुणी हैं, वे चारण (जो कि कविता, दोहा आदि

बनाकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं), सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुख के लिये अपनी प्रशंसा करनेहारे राक्षस जो हिंसक पिशाच अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहारकर्त्ता और मलिन रहते हैं, वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है।

जो अधम रजोगुणी हैं, वे लुहार, मल्लाह नट नाटक करनेवाले सेवक होते हैं।

जो मध्यम रजोगुणी होते हैं, वे राजा, राजमन्त्री, राजपुरोहित, राजदूत, वकील, सेनापति का जन्म पाते हैं।

जो उत्तम रजोगुणी होते हैं, वे ज्ञान-विद्या-विशेषज्ञ, बाजा बजाने-वाले, यक्ष, अप्सरा विद्वानों के सेवक होते हैं।

जो उत्तम सतोगुणी होते हैं, वे तपस्वी, संन्यासी, वेद-पाठी, विमान चलानेवाले, ज्योतिषी और देह को स्वस्थ और पुष्ट रखनेवाले होते हैं।

जो मध्यम सतोगुणी होते हैं, वे जीव यज्ञकर्ता वेदार्थवित् विद्वान् विशेषज्ञ और अध्यापक होते हैं।

—मनुस्मृति १२।४०-४२, ५०-५२॥

स्रष्टा की अतिगुप्त व्यवस्था रहती है, सामान्य जन कर्म ही करते हैं। कर्मफल प्रदाता ही सब जानता है। लोक में प्रत्यक्ष है कि अच्छे कर्म का फल परिणाम अच्छा होता है, बुरे कर्म का बुरा फल होता है। कभी-कभी कर्मफल में देर होती है। क्रमशः फल मिलने में देर हो सकती है। कुछ कर्म फल वर्तमान जीवन में कुछ कर्म फल अगले जीवन में मिलते हैं।

जीव का जन्म पुनर्जन्म—जन्म का अर्थ प्रकट होना, जीव शरीर को धारण करके उत्पन्न होने का नाम जन्म है। जीवन-मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म का नाम पुनर्जन्म है।

वेदादि शास्त्रों में जन्म-पुनर्जन्म में उत्तम इन्द्रियें, उत्तम शरीर, उत्तम योनि प्राप्ति के लिये अनेक प्रार्थना-मन्त्र हैं। योगी, विद्वान् मुनि, जो पवित्रता में सिद्धि प्राप्त कर लेता है, उसको पुनर्जन्म का ज्ञान होता है। —'योगदर्शन'

लोक में अनेक बालक-बालिकायें विभिन्न प्रदेशों में, विदेशों में समय-समय पर पूर्व जन्म की घटनायें प्रायः सुनाते रहते हैं और युवा अवस्था

आने पर भूल जाते हैं। लेखक को एक बालक की पूर्व जन्म की सत्य घटना का ज्ञान है।

पूर्व जन्म की स्मृति स्वल्पकाल ही रहती है, पूर्व जन्म को भूल जाना दैवी व्यवस्था है। नहीं तो लोक में पूर्वजन्म के बन्धु-बान्धव, पति-पत्नी का सम्बन्ध, धन-सम्पत्ति, जमीन-जायदाद के विविध प्रकार के झगड़े होने से मानवजीवन दुःखी होता है। वर्तमान जीवन में भी लोगों में मोह अज्ञानवश अनेक झगड़े होते हैं। यदि पूर्वजन्म की स्मृति हो तो और जीव अधिक दुःखी, परेशान होता है।

जीव को पूर्वजन्म की स्मृति रहती है, किन्तु वह नवजात शिशु को दुग्ध पीने का संस्कार रहता है, हंसता है, रोता है। वाणी इतनी असमर्थ होती है कि वह बोल नहीं पाता, जब बोलने का सामर्थ्य होता है, तब तक वह ३, ४ वर्ष में पूर्व स्मृतियां भूल जाता है।'

लाखों, करोड़ों जीवों में एक दो जीव ही हैं, जो मानव शरीर में पुनः-पुनः आते हैं। वे पूर्वजन्म की घटनायें बता सकते हैं।

मुक्ति के साधन

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म का आचरण और पुण्य का करना सत्संग, विश्वास, तीर्थसेवन, सत्पुरुषों का संग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना—ये सब मुक्ति के साधन कहलाते हैं। —आर्योद्देश्यरत्नमाला

मुक्ति का अधिकारी—

१. वेद के सिद्धान्तों को यथार्थ जानता हो।

२. निश्चय पूर्वक यथार्थ दृढ़ विश्वास ईश्वर और वेद में रखता हो।

३. सभी प्रकार की भौतिक वासनाओं से रहित होना।

४. योगानुष्ठान से चित्त-आत्मा को निर्मल बनाना।

५. शुद्ध अन्तःकरणवाले संन्यासी स्थितिप्रज्ञ योगी शुद्धात्मा मुक्ति को प्राप्त होकर आवागमन से छूट जाते हैं।

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ ३।६॥

—मुण्डकोपनिषद्

मुक्ति में जीव का अस्तित्व बना रहता है और संकल्पमात्र शरीर से इच्छानुसार उत्तम सुख ब्रह्मानन्द को प्राप्त कराता है। परान्त काल के बाद मुक्त जीव लोक-उपकार के लिये पवित्र मानव देह धारण करते हैं। ईश्वर के अनुग्रह से यह मानव देह मिलता है।

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।

— अथ० ११।४।२०॥

अर्थात् जीव गर्भपिण्ड में गतिमान् होते हुये पुनः-पुनः उत्पन्न होता है।

पुनर्मनः पुनरायुर्म ऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म ऽआगन्० ।

—यजु० ४।१५॥

अर्थात् जीव पुनः-पुनः मन इन्द्रिय प्राण आयु प्राप्ति की इच्छा करता है।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥

—अथर्व० ११।४।१४॥

अर्थात् गर्भ के अन्दर ही यह जीव प्राण लेता है। अप्राण दूर करता है, पुनः-पुनः जन्म लेता है ॥

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥

—यजु० ३५।२॥

अर्थात् जीव शरीर को छोड़ कर वायु सूर्य रश्मि के माध्यम से लोक-लोकान्तर में जाता है, पुनः आता है।

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।

—यजु० ८।२८॥

अर्थात् जीव जरायु के साथ गर्भ से दश मास में उत्पन्न होता है। यहां चान्द्र मास के दश मास हैं। स्त्री के ऋतुधर्म चक्र से गणना करना चाहिये।

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम् ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भो अपामसि ॥

—यजु० १२।३७॥

अर्थात् जीव विविध प्रकार के ओषधि-वनस्पति जलचर आदि योनियों के गर्भ में रहता है, पुनः-पुनः गर्भ से उत्पन्न होकर भी जीव अजन्मा है। जीव शरीर धारण करता है, जीव का जन्म मरण नहीं होता। वेद शास्त्र उपनिषद् गीता ऋषि मुनि इसी सिद्धान्त को मानते हैं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

—यजुर्वेद ४०।२॥

अर्थात् हे जीव ! सौ वर्षों तक कर्म करते हुये जीने की इच्छा कर। कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करने पर कर्मबन्धन नहीं होता।

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

—अथर्ववेद १०।२।३१॥

अर्थात् आठ चक्र नव द्वारवाली पुरी में जीव रहता है। अतः जीव का पुरुष नाम है।

मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः ॥

—अ० १०।२।२६॥

अर्थात् मस्तिष्क के हृदय में जीव सुरक्षित रहता है। चेतन शरीरों में सर्वत्र योनियों में यही व्यवस्था स्रष्टा की है।

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥

—अथर्व० १०।८।४३॥

अर्थात् आत्मा-यक्ष नव द्वारवाला कमल के समान सुन्दर शरीर में

रहता है, जो सत्त्व, रज, तम तीन गुणों से घिरा है, बना है। विद्वान् ब्रह्म ज्ञानी जानते हैं।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा।
वि मुच्यन्तामुस्रियाः॥

—यजु० ३५।३॥

अर्थात् जीव को गर्भ में प्रवेश समय किरणें छोड़ देती हैं।

पिङ्गल-गण्ड-माला

चित्र में सुषुम्णा तथा इसके पार्श्ववर्ती पिंगल-गण्ड-माला का सम्बन्ध दर्शाया गया है। जैसे—१—मछलियां सी घ्राण-खण्ड हैं। २—दृष्टि नाड़ियां हैं। ३—नेत्रचालिनी नाड़ियां है। ४—सेतु है। ५—सुष्णुम्णा-शीर्ष है। ६—सामने से दीखनेवाली सुषुम्णा में पड़ी 'घाई' है। ७—अश्व-पुच्छ है, जो सौषुम्णतन्तु-जाल से बना है। ८—ग-गण्डों को मिलानेवाली इडा है। ९—घ-पिंगल-गण्ड तथा वक्ष की नाड़ियों का संगमस्थल है। ङ—मिश्रित-नाड़ियां है, च—यहां कटि-गण्ड का कटि की ओर त्रिक-नाडियों उ—पर्शुकायें-पसलियां यहां होती हैं, अ—पाश्चात्य मूल है, ए—यह पूर्वमूल है।

हरे मनकों की यह माला सी पिंगल-गण्ड-माला कही जाती है।

—सन्ध्यायोग-रहस्य

इसका निम्न विशेष विवरण सब बातों को स्पष्ट कर देगा। ऊपर से साधारण दीखनेवाले इस मानव-देह की और इसके किस अंग की रचना आश्चर्यजनक विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है?

किसी भी एक अंग के अभाव से शेष समस्त शरीर अपंग और अधूरा रह जाता है। विचित्र कला-कृति से पूर्ण मस्तिष्क के शरीर, जीवनदाता हृदय के सहित धड़ एवं समस्त क्रियाओं के सम्पन्न करनेवाले हाथ-पैरों को परस्पर संयुक्त मानव-आकृति प्रदान करने के कारण यह 'मेरु-दण्ड' अपनी विशेष ही महत्ता रखता है।

यह विरूपास्थि-खण्ड कशेरुओं से मिलकर बना सर्प के समान आकृतिवाला है। प्रत्येक कशेरु के मध्य में मांस-निर्मित एक-एक गद्दी-सी रहती है, जिस पर प्रत्येक कशेरु टिका और 'सूत्रों' से कसा हुआ है। इसी कारण यह लचीला और प्रत्येक दिशा में मुड़-तुड़ जाता है।

ग्रीवा में ७ पीठ में १२ कटि प्रदेश में ५ और कटि से निचले भाग 'वस्तिगह्वर' में ५, एवं इस के अन्तिम भाग 'पुच्छास्थि' अथवा 'चंचु' में ४ कशेरु हैं। इन सब की संख्या ३३ है।

ग्रीवा के प्रथम कशेरु से लेकर बस्तिगह्वर के अन्तिम भाग 'त्रिकास्थि' तक सब कशेरु अन्दर से पोले हैं, अतः यह मेरुदण्ड खोखले बांस के समान बना हुआ है। यह पोलापन निरर्थक नहीं है।

इसमें महत्त्वशाली अंग हमारी 'सुषुम्णा' का निवास है। प्रत्येक कशेरु के पिछली और दायें-बायें अर्धवृत्ताकार एक-एक छिद्र होता है, अतः दो कशेरुओं के सन्धि-स्थल पर इन छिद्रों से बने मार्ग से सुषुम्णा में से ३१ नाडी-युगल बाहर निकलकर समस्त काया में फैलकर कार्य करते हैं।

केवल 'चंचु-कशेरु' ही पोले नहीं हैं।

चित्र में स्पष्ट दीख रहा है कि ग्रीवा के प्रथम दो कशेरुओं को छोड़कर शेष कशेरु एक ही जैसे हैं, केवल छोटे-बड़े का भेद है। ग्रीवा से कटि की ओर के कशेरु क्रमशः बड़े होते गए हैं और कटि-प्रदेश के कशेरु सब से मोटे तथा सुदृढ़ भी हैं।

'त्रिक-देश' में ५ कशेरुओं से बनी दो अस्थियों में से ऊपर की बड़ी और निचली छोटी है, इनके परस्पर जुड़ जाने से बनी इस नलिका में नाड़ियां रहती हैं। इस अस्थि के अगले-पिछले पृष्ठों पर ८-८ छिद्र हैं, जिनमें से होकर कुछ सामान्य तथा रक्तवहा नाड़ियां बाहर आती-जाती हैं।

मानव-मस्तिष्क ज्ञान-विज्ञान का केन्द्र एवं समस्त देह पर शासन करनेवाला मुख्य अंग है। यहां से समस्त देह को प्रसारित होनेवाला ज्ञान, आज्ञायें और क्रियायें 'सुषुम्णा-पथ' से जाती हैं, सिर के साथ समस्त काया को संयुक्त करनेवाला यह मानो एक सेतु है। कपाल की पश्चादस्थि में स्थित लघु-मस्तिष्क के मध्य भाग के ही समक्ष स्थित 'चतुर्थ-कोष्ठ' तथा 'सेतु' के निम्नभाग से सुषुम्णा का निकास होकर मेरुदण्ड में इसका आवास है।

स्थूल शरीर चित्र में स्पष्ट दीख रहा है कि लघुमस्तिष्क के सामने से निकलकर मेरुदण्ड के प्रथम कशेरु में प्रविष्ट होकर यह ग्रीवा तथा पृष्ठवंश के कशेरुओं में से होती हुई कटिप्रदेश के प्रथम-द्वितीय कशेरु के

सामने 'शंकु' के आकार की हो गई है। यह निचला भाग 'शंकु-शिखर तथा लघुमस्तिष्क के समक्ष का निकास-स्थान 'सुषुम्णा' शीर्ष कहलाता है।

'शंकु-शिखर' की नोक से निकला एक पतला श्वेत-सूत्र ७-८ इंच नीचे जाकर गुदास्थि से आ लगा है, इसे सुषुम्णा का 'मध्यवन्धन' कहते हैं। यहां के प्रारम्भिक भाग में थोड़ा 'वात-तन्तु' और शेष भाग में 'सौत्रतन्तु' होता है।

सुषुम्णा की लम्बाई १८ इंच, मोटाई ग्रीवा के तीसरे कशेरु से लेकर वक्ष के प्रथम कशेरु तक के भाग का घेरा आधा इंच और वक्ष के द्वितीय कशेरु से छाती के नवें कशेरु तक पौन इंच रहकर नवम से बारहवें कशेरु के मध्य में यह घेरा ७ इंच होकर आगे कटिप्रदेश के दूसरे कशेरु से यह सुषुम्णा सूत्ररूप होकर अन्त तक ऐसी ही बनी है। सुषुम्णा के सम्मुख भाग में एक सीधी-सी पतली धाई पड़ी है, जो सूत्रभाग तक ही रहती है और यह एक इंच के आठवें हिस्से की गहराई लिये सुषुम्णा को दाएं-बाएं पार्श्वों में समानरूप से विभक्त करती-सी प्रतीत होती है। वास्तव में यह विभक्त नहीं करती, क्योंकि यह ऊपरी पृष्ठ पर ही होती है।

सुषुम्णा के दाएं-वाएं पार्श्वों से निकले ३१-३१ नाड़ी-युगल 'वात-सूत्र' निर्मित हैं और यह प्रत्येक युगल दो भागों में विभक्त हैं। युगल के अग्रिम भाग को 'पूर्व-मूल' और पिछले भाग को 'पाश्चात्य-मूल' कहते हैं। ये दोनों मूल सुषुम्णा के अति समीप ही परस्पर मिलकर कशेरु-सन्धियों से बाहर निकलते हैं और इन दोनों मूलों के संयोग से एक पूरा युगल बनता है, क्योंकि 'पूर्वमूल' के श्वेत-सूत्र गतिवाहक और पाश्चात्य मूल के धूसर-तार सांवेदनिक होते हैं। इन दोनों से मिलकर बना प्रत्येक युगल आगे सन्देश पहुंचाने में सशक्त होता है।

'पाश्चात्य-मूल' के सांवेदनिक धूसर तार सुषुम्णा में से भीतर घुस कर फिर ऊपर को चढ़ गए हैं और 'पूर्वमूल' के गतिवाहक श्वेत-सूत्र बाहर आकर शरीर में सर्वत्र फैल गए हैं।। इन सूत्रों का सम्बन्ध 'पेशियों' की गतिविधि से है।

'पाश्चात्य मूल' के सांवेदनिक 'धूसर-सूत्र', जो सुषुम्णा में घुसे थे, वे पृष्ठवंश के अन्दर जाकर कशेरु बन्धन और सुषुम्णा-आवरण को चले

जाते हैं। मकड़ी के जाले के समान सूक्ष्म से सांवेदनिक धूसर-तार शिर, ग्रीवा, छाती तथा उदर के पिछले भागों में और 'पूर्वमूल' से निकले गतिवाहक श्वेत तार ग्रीवा वक्ष तथा ऊपर के अगले सम्मुखी-भागों में जाकर फैल गए हैं।

प्रथम और द्वितीय कटि-कशेरुओं के मध्य से इक्कीसवीं नाड़ी निकलती है, शेष १० नाड़ी-युगल सुषुम्णा में से निकलकर 'कशेरु-नलिका' के भीतर ही फैल गये हैं। यहां पर इन सब के एकत्रित हो जाने से कटि-प्रदेश में सुषुम्णा 'अश्व-पुच्छ' के समान बनी दीखती है। इसी से इस नाड़ी-समूह को 'अश्व-पुच्छ' कहा जाता है।

फिर धीरे-धीरे यहां की नाड़ियों के बाहर निकल कर फैलते जाने से यह 'पुच्छ' पतली पड़ती चली गई है।

कटिप्रदेश में तो पूर्व और पाश्चात्य-मूल की शाखायें कटि-कशेरुओं के मध्य में से बाहर निकल आती हैं, परन्तु 'त्रिक-प्रदेश' की नाड़ियां, 'त्रिकास्थि' के अन्दर जाकर पूर्व और पाश्चात्य शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं।

पूर्वशाखायें 'त्रिक' के अगले छिद्रों में से निकलकर 'कटि-प्रदेश' में प्रविष्ट हो जाती हैं। ग्रीवा के तीसरे कशेरु से लेकर वक्ष के प्रथम कशेरु तक 'बाहु-शाखा' सम्बन्धी नाड़ियां निकलती हैं और वक्ष वा पीठ के नवें से ग्यारहवें कशेरु के मध्य से टांगों से सम्बद्ध नाड़ियां, इस प्रकार यह सुषुम्णा गति तथा ज्ञानवाहक-सूत्रों से बना इस देवपुरी अयोध्या का राजपथ है।

आवरण-मस्तिष्क के समान ही सुषुम्णा में भी बाह्य, माध्यमिक तथा आन्तरिक आवरण होते हैं। बाह्य आवरण में गतिवाहक श्वेत सूत्रों की अधिकता होने के कारण इसका रंग श्वेत तथा अन्तःस्थ भाग में सांवेदनिक (ज्ञानवाहक) सेलों (कोष्ठकों) की प्रधानता के कारण यह भाग धूसर-वर्ण का होता है, जो मस्तिष्क की रचना से भिन्न प्रकार का है।

व्यस्त कटी हुई सुषुम्णा अन्तःस्थ धूसर-भाग दोनों पार्श्वों से मुड़ा तथा मध्य में जुड़ा रहता है, इसलिये यह भाग एच (H) अक्षर की आकृति से मेल खाता है, इस जोड़ में एक छिद्र होता है, जो सुषुम्णा-

शीर्ष से लेकर नीचे तक चला जाता है। मस्तिष्क के चौथे कोष्ठ से मिली हुई सुषुम्णा के इस सिद्ध में थोड़ा-सा वैसा ही 'तरल' भी भरा रहता है, जैसा कि मस्तिष्क के कोष्ठों में विद्यमान हैं।

सौषुम्ण-युगल

इनकी गणना प्रदेशों के अनुसार इस प्रकार की जाती है—ग्रीवा में ८ वक्ष में १२ कटि में ५ त्रिक में ५ चंचु में १—ये सब ३१ होते हैं। इस नाड़ी-जाल में ६ मुख्य केन्द्र हैं। प्रथम ग्रीवा के ऊपरी भाग में है, जिसका सम्बन्ध प्रथम सौषुम्ण नाड़ी तथा 'आज्ञा-चक्र' से है। ग्रीवा का पूर्ण नाड़ी-जाल २-३-४ सौषुम्ण-नाड़ियों से मिलकर बनता है। द्वितीय ग्रीवा के निचले भाग वक्ष का केन्द्र विशुद्धचक्र से सम्बद्ध है, क्योंकि केन्द्र का सम्बन्ध अनाहत-चक्र से है।

चतुर्थ वक्ष के मध्य भाग में उदर के सामने वा ११, १२ नाड़ियों के समक्ष बने केन्द्र का सम्बन्ध 'मणिपूर-चक्र' से है। पञ्चम, बस्तिगह्वर के ऊर्ध्व भाग में कटिप्रदेश के ५ वें कशेरु के सामने (मूत्राशय वा मसाने के पीछे) स्वाधिष्ठान-चक्र है। षष्ठ, त्रिकास्थि के अन्त में ही मूलाधार-चक्र अन्तिम केन्द्र है। २१ से २४ नाड़ी-युगल तक 'कटि नाड़ी-जाल' कहा जाता है। २१ वां नाड़ी-युगल सुषुम्णा का अन्त माना जाता है। इस के आगे नीचे तक सुषुम्णा एक तन्तु के रूप में चंचु-अस्थि तक चली गई है। इस प्रकार सौषुम्ण-नाड़ियों का शाखा-प्रशाखामय विस्तृत जाल समस्त देह में व्याप्त है।

आगे प्रत्येक सौषुम्ण-नाड़ी का पिंगल-नाड़ी मण्डल से सम्बन्ध है।

हठयोगी तान्त्रिक इस नाड़ी जाल से बने इन्हीं मर्मस्थलों को चक्र की संज्ञा देते हैं। अब यह हठयोग का पारिभाषिक नाम बन गया है, किन्तु तान्त्रिक ग्रन्थों के आधार पर ही इस सुषुम्णा में वज्रा चित्रिणी और ब्राह्मनाड़ी नाम की तेजोमयी भास्वर नाड़ियों की विद्यमानता मानी गई है।

शरीरशास्त्र की परिभाषा के अनुसार इन नाड़ियों को सांवेदनिक कहा जा सकता है। सांवेदनिक तत्त्व भास्वर होता है, इस में फास्फोरस (ओजस) की अधिकता होती है। इसी कारण इन में ब्रह्मनाड़ी विशेष चमकीली है। ऐसा ध्यानस्थ अवस्था में संयमबल से देखने पर ज्ञात होता है।

—:०:—

जीव का आवागमन

'नाडीतत्त्वदर्शनम्' से साभार—

पृ० ९९ –'अत्यन्त सूक्ष्म चारों भूतों (रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-तन्मात्राओं) के साथ मन की क्रिया से क्रियावान् आत्मा कर्मवश एक शरीर से दूसरे शरीर में संक्रमण करता है।' सूक्ष्म भूतों के साथ रहने का तात्पर्य लिंगशरीर या कारण शरीर से है।—चरक० शारीर० अ० २-३० ॥

पृ० ९९—'जो कर्मज (आत्मकर्मज, पूर्वजन्मकृत, शुभाशुभकर्मज) चार भूत हैं, वे आत्मा से युक्त रहकर ही गर्भ में प्रवेश करते हैं। वे बीजधर्मा लिंगशरीर, आत्मा के दूसरे देह में प्रवेश करने पर उसके साथ ही देहान्तरों में प्रवेश करते हैं।'– चरक शारीर० अ० २-३४।

जिस प्रकार सूक्ष्म बीज स्थूल वृक्ष को उत्पन्न करता है उसी प्रकार सूक्ष्म-भूतात्मा स्थूल शरीर को उत्पन्न करता है।

पृ० ९९—'जिस कर्म के कारण जीव पुनर्जन्म में प्रेरित होता है, उसी के अनुसार उस जन्म में सब कुछ प्राप्त करता है और पूर्वजन्म में अभ्यस्त सभी गुण उस जन्म में भी प्राप्त होते हैं।'—सुश्रुत शा० २।६०।

पृ० १००—'जन्म-जन्मान्तरों में जो दान, तप या अध्ययन किया गया है, अत्यन्त अभ्यास के कारण जीव, दूसरे जन्म में भी उन्हीं के अनुरूप वृत्तियों को प्राप्त होता है।'

पृ० १००—'यज्ञ करनेवाला पुरुष, जिस प्रकार इस लोक में यज्ञ करता है, उसी प्रकार इस लोक से चले जाने पर भी यज्ञ करनेवाला होता है'—छान्दो० उप० ३।१४।

पृ० १००—'मनुष्य जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ अन्त में शरीर का त्याग करता है, हे अर्जुन ! दूसरे जन्मों में भी उसी भावना से भावित होने के कारण उस-उस भाव को प्राप्त करता है।' –गीता ६।४४ तथा ८।६।

पृ० १००—'जीव मरण के समय जिस भावना से बद्ध रहता है, जन्मान्तर में भी उसी को प्राप्त करता है। शुभ और अशुभ की प्रेरणा और मन की गति से शाश्वत और अव्यय जीव कृमि की भान्ति एक देह से दूसरे देह में जाता है।'—योगवशिष्ठ, ४।१७।२६।

पृ० ६६—'प्राणियों में जो बुद्धि और आकृति का भेद दीखता है, इसमें सत्त्व, रज और तम– इन तीन गुणों से विशिष्ट कर्म ही कारण है।'—चरक शारीर, अ० २।

पृ० ११८–'पुरुष एक चौड़े खम्भे (यूप) के समान है। यूप चतुष्कोण होता है। स्त्री, पुरुष के अपने भाग का आधा है, इसलिए जब तक पुरुष स्त्री को प्राप्त नहीं करता तब तक अपने रूप (सन्तान) को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता। स्त्री के विना पुरुष आधा है। जब स्त्री को प्राप्त करता है और उसमें उत्पन्न होता है तब पूर्ण होता है।'

—शतपथ ब्रा० ५।२।१।१०॥

सारांश यह है कि पुरुष की पूर्णता स्त्री पुरुष के सम्मुख मिलने से ही होती है।

—:०:—

स्रष्टा का परिचय

सृष्टि बनी हुई वस्तु है, यह स्पष्ट दिखाई दे रही है। बनी हुई अर्थात् यह कार्य है। प्रत्येक कार्य का कारण होता है, यह अटल सिद्धान्त है। कार्य यह स्पष्ट निर्देश करता है कि उसका कोई कारण है। जब तक मनुष्य के सिर में मस्तिष्क है, मस्तिष्क में विचार करने की शक्ति है, तब तक यह मानना पड़ेगा कि कार्य है तो उसका कारण अनिवार्य है और वह कारण ही स्रष्टा परमात्मा है।

नास्तिकों का मन्तव्य कि सृष्टि बिना कारण के उत्पन्न हुई और इस सृष्टि के लिए स्रष्टा की कोई आवश्यकता नहीं, यह बात अस्वीकार्य है। यह बात मनुष्य के लिए तभी मान्य हो जब उसके सिर में से मस्तिष्क निकल जाए और विचारशक्ति समाप्त हो जाय। लेकिन जब तक विचारशक्ति है, तब तक कार्य कारण के अटल सिद्धान्त को मानना पड़ेगा। जब सृष्टि है तो स्रष्टा का होना अनिवार्य है। स्रष्टा के अस्तित्व में निम्न प्रमाण हैं—

१. लोक में प्रत्यक्ष है कि स्रष्टा को विभिन्न विचारशील विद्वान् विविध प्रकार के नामों से स्मरण करते हैं।

२. स्रष्टा के अस्तित्वमात्र से सकल ब्रह्माण्ड में नियमित गति प्रगति विकास ह्रास उत्पत्ति और प्रलय हो रहा है, जैसे कि आत्मा के अस्तित्व से शरीर में गति, चेष्टा, कर्म होते हैं। आत्मा के अभाव में शरीर शव मात्र रह जाता है।

३. मनुष्य शुभ कर्म करता है उसको परमेश्वर की ओर से उत्साह प्रेरणा, और प्रसन्नता प्राप्त होती है और अशुभ काम करने से लज्जा भय तथा शङ्का होती है। स्रष्टा के सर्वव्यापक होने से ही प्रेरणादि होती हैं।

यस्तिष्ठ॑ति चर॑ति यश्च॒ वञ्च॑ति॒ यो नि॒लाय॒ं चर॑ति॒ यः प्र॒तङ्क॑म् ।
द्वौ सं॑नि॒षद्य॒ यन्म॒न्त्रये॑ते॒ राजा॒ तद्वे॑द॒ वरु॑णस्तृ॒तीयः॑ ॥

—अथर्ववेद ४।१६।२

४. स्रष्टा प्राणीमात्र के गर्भ में विविध प्रकार के रूप-रंग आकृति वाले शरीरों की रचना करता है। ऋग्वेद मण्डल १०

५. परमेश्वर की विधिपूर्वक उपासना करने से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है, अतः सृष्टि में सर्वत्र स्रष्टा विद्यमान है। उपासक किसी भी स्थान पर उपासना करके यह अनुभव कर सकता है।

६. अनादिकाल से ऋषि, महर्षि, मुनि, सन्त, विद्वान् और योगियों ने स्रष्टा का अस्तित्व और उसको सर्वव्यापक माना है।

७. स्वयं स्रष्टा ने सृष्टि के संविधान वेद में अपने अस्तित्व का और सर्वव्यापकत्व का प्रतिपादन किया है। ऋषि मुनियों के प्रणीत ग्रन्थ उपनिषद् उपवेद वेदाङ्ग—दर्शनों में भी उपरोक्त स्रष्टा के विविध नाम, गुण, कर्म, स्वभाव का विस्तृत वर्णन है।

अतः उपर्युक्त लिखित स्रष्टा का अस्तित्व—पञ्चीकरण सिद्धान्त अथवा पांच प्रकार की परीक्षाओं से सिद्ध होता है।

१६ कलाओं तथा ३ ज्योतियों का कलाकार

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥
—यजुर्वेद ८।३६॥

इस पर ब्रह्म के सिवाय दूसरा कोई उत्तम पदार्थ नहीं है, जो सब विश्व अर्थात् सब जगह में व्याप्त हो रहा है। वही सब जगत् का पालन करता और अध्यक्ष है तथा सब प्राणियों को सुख देता है।

तीन ज्योति अर्थात् अग्नि, सूर्य, विद्युत्=बिजली के सर्वजगत् के प्रकाश होने के लिए रच के संयुक्त किया है।

स्रष्टा का नाम षोडशी है, क्योंकि उसने सोलह कलाओं को बनाया है। १६ कलाएं निम्न प्रकार की हैं—

१. ईक्षण—यथार्थ विचार और कर्म करने की इच्छा।

२. प्राण—सब विश्व का धारण करना। जैसे जीव प्राण शरीर को धारण करता है।

३. श्रद्धा—सत्य में विश्वास।

४. आकाश—पञ्च महाभूतों का प्रथम तत्त्व, जहां सूर्य की रश्मि प्रकाशित होती है।

५. वायु—प्राणिमात्र का जीवनाधार।

६. अग्नि—शक्तिरूप होकर जड़ और चेतन को गति देता है। विविध शक्तिरूपों में जीवनोपयोगी है।

७. जल—जन्म से लेकर मरण=प्रलय पर्यन्त उपयोगी तरल पदार्थ है, जो शान्तिदायक है।

८. पृथिवी (भूमि)—जड़ चेतन को उत्पन्न करनेवाली भूमि माता। रासायनिक पदार्थ तथा अन्न, ओषधि, मानवादि को उत्पन्न करनेवाली है।

९. इन्द्रिय—पञ्च ज्ञानेन्द्रियों तथा पञ्च कर्मेन्द्रियों के द्वारा जीव सुख पाता है।

१०. मन—उभय इन्द्रियों का सहायक।

११. अन्न—खाद्य पदार्थों का नाम अन्न है।

१२. वीर्य—बल और पराक्रम। वीर्य वह अद्भुत पदार्थ है, जो संतति की उत्पत्ति करनेवाला है।

१३. तप—धर्मानुष्ठान, सत्याचरण में पुरुषार्थ।

१४. मन्त्र—वेदमन्त्र, अर्थात् ज्ञान-विज्ञान का सूक्ष्म रूप से वर्णन करना।

१५. कर्म—विविध प्रकार की चेष्टा, कर्म करने का सामर्थ्य।

१६. नाम—दृश्य और अदृश्य पदार्थों की संज्ञा रखना।

उपर्युक्त तीनों ज्योतियों तथा सोलह कलाओं को संसार के विचित्र कलाकार ने अद्भुत पद्धति से बनाया है।

सभी योनियों के जीवधारी उपर्युक्त कला और ज्याति के माध्यम से ही संसार में विविध प्रकार के कर्म करते हैं और कर्म भोग को प्राप्त होते हैं तथा जीवन को सफल करते हैं। यदि उपर्युक्त ये कलाएं तथा ज्योतियां न होतीं तो जीवों के लिए कर्म-क्षेत्र ही नहीं होता, अतः अद्भुत कलाकार के लिए शतशः धन्यवाद है।

स्रष्टा का स्वरूप

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

—यजुर्वेद ४०।८

(सः पर्यंगात्) वह परमात्मा सब ओर से व्याप्त है। (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम) छिद्र रहित और नहीं छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाडी आदि के साथ सम्बन्धरूप वन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करनेवाला कभी नहीं होता, (कविः) सर्वत्र (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जाननेवाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करनेवाला (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप (याथा-तथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (वि) विशेषरूप से (अदधात्) बनाता है। शाश्वतीभ्यः) अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये बनाता है।

हे मनुष्यो ! जो अनन्त शक्तियुक्त अजन्मा निरन्तर सदा मुक्त न्यायकारी निर्मल सर्वज्ञ सब का साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द अर्थ और उनके सम्बन्ध को जनानेवाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और न धर्म काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो, इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करो।

स्रष्टा के नाम

अष्टोत्तरशतनाममालिका –

ओमजः कविराचार्य आदित्यः परमेश्वरः।
प्रजापतिरनन्तश्च परमात्मा पितामहः ॥१॥
दयालुर्दिव्य आकाशो न्यायकारी बृहस्पतिः।
ब्रह्मा ब्रह्म महादेवः सविता सत्य ईश्वरः ॥२॥
शुक्रः शुद्धः खमानन्दः शिवः शक्तिः शनैश्चरः।
शंकरः शेष आत्मा च प्राणः प्राज्ञः सरस्वती ॥३॥
मातरिश्वा च माता च मनुर्भूमिरुरुक्रमः।
वायू रुद्रो यमो यज्ञो वरुणः श्रीर्विराड् वसुः ॥४॥
अग्निरत्ता तथा द्वैतम् अनादिर्निर्गुणः प्रियः।
सगुणः सत् सुपर्णश्चाप्यन्तर्यामी बुधस्तथा ॥५॥
चन्द्राश्चिन्मित्रमाप्तश्च गरुत्मान् सर्वशक्तिमान्।
स्वयम्भूर्भगवान् होता पुरुषः प्रपितामहः ॥६॥

अक्षरस्तैजसो बन्धुः देवः देवी निरञ्जनः ।
नित्यो नारायणः सूर्यः विश्वो विश्वम्भरः पिता ।।७।।
कालः कालाग्निरन्नादः इन्द्रः गणपतिर्गुरुः ।
अन्नं ज्ञानं जलं राहुः कूटस्थः पृथिवी स्वराट् ।।८।।
सर्वः पूर्वो जगत्कर्त्ता मुक्तो लक्ष्मीश्च मंगलम् ।
बुद्धो हिरण्यगर्भोऽयं कुबेरः केतुरर्यमा ।।९।।
अचिन्त्यो धर्मराजश्च निराकारस्तथैव च ।
विष्णुर्विश्वेश्वरश्चैव कीर्त्यतेऽयं जगत्प्रभुः ।।१०।।
प्रोक्तमेतत् प्रभोर्नाम्नामष्टोत्तरशतं पुनः ।
कीर्तयन् स्मरणं कुर्वन्नेभिर्ध्यायंस्तथैव च ।।११।।
भगवन्तं जगन्मूर्ति भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम् ।
मनः शुद्धिमवाप्नोति लभते च परं पदम् ।।१२।।

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास के १०८ नामों को पं विद्याधर जी ने अपनी लिखित 'अष्टोत्तरशतनाममालिका' में ये श्लोक बनाकर छापे हैं। हमने वहीं से साभार यह लेख लिया है ।

१०-१५ दिन में ये श्लोक सभी स्मरण कर सकते हैं ।

विष्णुसहस्रनाम में एक हजार नाम गिनाए हैं। इन नामों पर पूज्य पं० सत्यदेवजी ने 'विष्णुसहस्रनाम-सत्यभाष्य' चार भागों में छापा है ।

सब जगत् के पालन करने और रक्षा करने से उस का नाम पिता है। सब जगत् का उत्पादक होने से सविता है।

जो अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी है और बड़ा होने से उस का नाम बृहस्पति है।

जो जगत् का व्यवस्थापक एवं द्रष्टा और स्वामी होने से उस का नाम अध्यक्ष हैं।

जिसमें अनन्त प्रकार के ब्रह्माण्ड का उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय होता है, इसलिए उस स्रष्टा का नाम हिरण्यगर्भ है ।

जो सब जगत् के भीतर बाहर और मध्य में व्याप्त है, सर्वनियंता है, अतः उस का नाम सर्वान्तर्यामी है ।

सृष्टि बनाने से सृष्टिकर्त्ता है। ईश्वर का भाव होने से सत्, चेतनता होने से चित् तथा आनन्दमय होने से उस परमात्मा का नाम सच्चिदानन्द है।

सुखदायक वस्तुओं का निर्माता होने से और स्वयं सुखी होने से सुखस्वरूप है।

अनन्त ब्रह्माण्ड को धारण कर रहा है तथा सबका आधार होने से सर्वाधार है।

ईश्वर का गुण-कर्म-स्वभाव

गुण—ईश्वर एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वव्यापक अनादि और अनन्त आदि सत्य सर्वाधार सर्वव्यापक सुखस्वरूप निर्विकार स्वयम्भू सच्चिदानन्दस्वरूप है।

कर्म–ईश्वर जगत् की उत्पत्ति पालन और विनाश करता है तथा सर्वजीवों को पाप-पुण्य के फल ठीक-ठीक पहुंचाता है। जीवों के कर्मानुसार उनको विविध प्रकार की योनियों में संयुक्त करता है।

विविध प्रकार की योनि के अनुसार रेंगने का तैरने का उड़ने का, भागने का, बोली का भाषा का तथा वेदविद्या का आदि सृष्टि में संस्कार देता है।

स्वभाव—ईश्वर अविनाशी ज्ञानी आनन्दी शुद्ध न्यायकारी दयालु और अजन्मादि है, अनन्त अनादि अनुपम अजर अमर अभय नित्य और पवित्र है।

सर्वान्तर्यामी परमात्मा सब जीवों के कर्मानुसार सब के अन्तरात्मा में स्वाभाविक तथा नैमित्तिक ज्ञान देता है। मनुष्यों को कर्मानुसार धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि देता है।

मुक्त आत्माओं को परान्तकाल पर्यन्त ब्रह्मानन्द प्राप्त करा कर लोकोपकारार्थ पुनः लोक में दिव्य गुणों से युक्त अवतरित करता है।

अनन्तकोटि-ब्रह्माण्ड-नायक–अनन्त प्रकार के ब्रह्माण्डों में सूक्ष्म और स्थूल विविध प्रकार की सर्वोत्तम सुन्दर व्यवस्था सर्वदा करता रहता है।

स्रष्टा की उपासनायें

सृष्टिकर्ता के नाम गुण कर्म स्वभाव तथा कर्म और कला का परिचय लिख चुका हूं, ऐसे महान् स्रष्टा की स्तुति प्रार्थना उपासना करना

मनुष्य का परम कर्तव्य है। अतः वेदोक्त विधि के अनुसार उपासना करना श्रेष्ठ कर्म है। उपासना दो प्रकार की होती है—

निर्गुणोपासना—शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध संयोग वियोग हलका भारी अविद्या जन्म मरण और दुःख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है, उसको निर्गुणोपासना कहते हैं।

—आर्योद्देश्यरत्नमाला

सगुणोपासना—जिसको सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् शुद्ध नित्य आनन्द सर्वव्यापक एक सनातन सर्वकर्त्ता सर्वाधार सर्वस्वामी सर्वनियन्ता सर्वान्तर्यामी मंगलमय सर्वानन्दप्रद सर्वपिता सब जगत् का रचनेवाला न्यायकारी दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जान के जो ईश्वर की उपासना करता है, सो सगुणोपासना कहाती है।

ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान से ओंकार और गायत्री आदि संध्योपासना आदि करने से उपासक भक्त को निम्न लाभ होता है।

उपासना का फल—परमेश्वर के गुण धर्म स्वभाव के सदृश गुण धर्म और स्वभाव जीवात्मा के पवित्र हो जाते हैं और परमेश्वर का ब्रह्मानन्द भी प्राप्त होता है।

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है और आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा।

—सत्यार्थप्रकाश, सप्तम समुल्लास

यह सिद्धयोगी की अनुभूति है। लेखक का भी चालीस वर्षों का स्वरूप अनुभव है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥

—ऋग्वेद ३।२९।२॥

भावार्थ—दो समिधाओं के भीतर जैसे अग्नि छुपी हुई सुरक्षित रहती है, परस्पर घर्षण से अग्नि प्रकट होती है, जैसे गर्भावस्था में आरम्भिक मास दो मास के गर्भ की प्रतीति नहीं होती और गर्भवती

गर्भ को सावधानी से पालित पोषित करके यथासमय नवें मास में सन्तान उत्पन्न करती है, ठीक इसी प्रकार से उपासक भक्त सावधानी से नित्य-नित्य की उपासना यज्ञादि कर्म कर के अपने अन्दर की आध्यात्मिक अग्नि को विकसित करता है।

आध्यात्मिक अग्नि निरन्तर विकसित होते-होते इतनी बढ़ जाती है कि अन्दर की अग्नि बाहर फूट पड़ती है, जिससे भक्त के कपड़े लाल, अग्निरूप हो जाते हैं। (भक्त लोकोपकार की भावना से पारिवारिक सम्बन्ध को त्याग कर के विश्वकल्याण की भावना से संन्यास की दीक्षा लेकर के लोगों में आध्यात्मिक अग्नि जगाता है।) जैसे आदि शंकराचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती, स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, स्वामी श्रद्धानन्द, तपोमूर्ति स्वामी ब्रह्मानन्द दण्डी, स्वामी सर्वदानन्द वीतराग महानुभावों ने देश में खूब आध्यात्मिक अग्नि से सामाजिक क्रान्ति लाकर समाज की सर्वतोमुख उन्नति की, जिससे राष्ट्र स्वतन्त्र हुआ। विश्व में उन्नत विचारों की क्रान्ति हुई।

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

—यजुर्वेद ३६।३॥

भू—प्राणाधार, भुवः—दुःख नाशक, स्वः—सुख स्वरूप, तत्—वह, सवितुः जगत् उत्पादक, वरेण्यम्—वरण करने योग्य, भर्गः—शुद्ध स्वरूप, देवस्य—देव का, धीमहि—हम ध्यान करें, धियः—बुद्धियों को, यः—जो, नः—हमारी, प्रचोदयात्—प्रेरणा करे।

भावार्थ—प्राणाधार दुःखनाशक सुखस्वरूप जगत् उत्पादक का ही हम वरण करें, शुद्ध स्वरूप देव का हम ध्यान करें। वह देव हमारी बुद्धि को उत्तम कार्य में प्रेरणा करे।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्।
मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

—अथर्ववेद १९।७१।१॥

भावार्थः—जो गायत्री द्वारा वेदमाता स्रष्टा की उपासना करता है,

उस उपासक को आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्म विद्या इत्यादि का सुख इस लोक में प्राप्त होता है और लोकोपकार का कार्यों में समर्पण कर के मोक्ष को भी प्राप्त करता है।

उपासक जप उपासना कर्म करते हुये धर्म अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त करता है।

ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना कर्म विधि-विधान निषेध आदेश परम आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक सहस्रों मन्त्र वेदों में हैं।

—:०:—

स्रष्टा जिन पदार्थों को उत्पन्न करता है, उन्हीं पदार्थों से वह प्रसिद्ध होता है

अथर्ववेद सूक्त १३ के सातवें काण्ड के निम्न मन्त्र द्रष्टव्य हैं—

स वा अह्नोऽजायत तस्मादहरजायत ।।२९।।

वह सविता प्रेरक परमेश्वर (वै) निश्चय से (अह्नः) दिन से पैदा हुआ अर्थात् प्रकट हुआ, क्योंकि उससे दिन पैदा हुआ है।

स वै रात्र्या अजायत तस्माद् रात्रिरजायत ।।३०।।

(सः वै) वह निश्चय से (रात्र्याः) रात्रि से (अजायत) प्रकट हुआ है, क्योंकि उस से रात्रि पैदा हुई है।

स वा अन्तरिक्षादजायत तस्मादन्तरिक्षमजायत ।।३१।।

(सः वै) वह निश्चय से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से प्रकट हुआ है, क्योंकि उससे (अन्तरिक्षम्, अजायत) अन्तरिक्ष पैदा हुआ है।

स वै वायोरजायत तस्माद् वायुरजायत ।।३२।।

वह निश्चय से वायु से प्रकट हुआ है, क्योंकि उस से वायु पैदा हुई है।

स वै दिवोऽजायत तस्माद् द्यौरध्यजायत ।।३३।।

वह निश्चय से द्युलोक से प्रकट हुआ है, क्योंकि उस से द्युलोक पैदा हुआ है।

स वै दिग्भ्यो॒ऽजायत॒ तस्मा॒द् दिशो॒ऽजायन्त ॥३४॥

वह निश्चय से दिशाओं से प्रकट हुआ है, क्योंकि उससे दिशाएं पैदा हुई हैं।

स वै भूमे॑रजायत॒ तस्मा॒द् भूमि॑रजायत ॥३५॥

यह निश्चय से भूमि से प्रकट हुआ है, क्योंकि उससे भूमि पैदा हुई है।

स वा अ॒ग्नेर॑जायत॒ तस्मा॑द॒ग्निर॑जायत ॥३६॥

वह निश्चय से अग्नि से प्रकट हुआ है, क्योंकि उस से अग्नि पैदा हुई है।

स वा अ॒द्भ्यो॒ऽजायत॒ तस्मा॒दापो॒ऽजायन्त ॥३७॥

वह निश्चय से जलों से प्रकट हुआ है, क्योंकि उससे जल पैदा हुआ है।

स वा ऋ॒ग्भ्यो॒ऽजायत॒ तस्मा॒दृचो॒ऽजायन्त ॥३८॥

वह निश्चय से ऋचाओं से प्रकट हुआ है, क्योंकि उस से ऋचाएं पैदा या प्रकट हुई हैं।

स वै य॒ज्ञाद॑जायत॒ तस्मा॑द् य॒ज्ञो॒ऽजायत ॥३९॥

वह निश्चय से यज्ञ से प्रकट हुआ है, क्योंकि उस से यज्ञ पैदा हुआ है।

स य॒ज्ञस्तस्य॑ य॒ज्ञः स य॒ज्ञस्य॒ शिर॑स्कृ॒तम् ॥४०॥

वह सविता यज्ञ है, उस सविता का यज्ञ है, वह सविता यज्ञ के सिर रूप में कल्पित किया गया है।

इसी प्रकार निम्न मन्त्र भी द्रष्टव्य है—

असति॒ सत् प्रति॑ष्ठितं स॒ति भू॒तं प्रति॑ष्ठितम् ।
भू॒तं ह॒ भव्य॒ आहि॑तं॒ भव्यं॑ भू॒ते प्रति॑ष्ठितं॒ तवेद्
विष्णो बहुधा वी॒र्या॑णि त्वं नः॑ पृणीहि
प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धायां॑ मा धेहि पर॒मे व्यो॒॑मन् ॥

—अथर्ववेद १७।१।१९॥

(असति) जिसकी सत्ता अनुभव में नहीं आ रही, उस अव्याकृत प्रकृति में (सत्) विद्यमान जगत् (प्रतिष्ठितम्) स्थित है और (सति) सत् जगत् में (भूतम्) पूर्वकालीन प्रकृति (प्रतिष्ठितम्) स्थित है। (भूतम्) भूतकालीन प्रकृति (ह) निश्चय से (भव्ये) भविष्यत्काल में होनेवाले जगत् में (आहितम्) रखी हुई है, और (भव्यम्) होनेवाला जगत् परमेश्वर की सामर्थ्य में है। हमारी पालना कर विश्व को निरूपित करनेवाला हमारी आध्यात्मिक भौतिक उन्नति करे।

गर्भाशय में गर्भ का अभाव रहता है। गर्भ में वीर्य प्रवेश होते ही रज (स्त्री-शक्ति) में प्रतिष्ठित होता है। गर्भवती स्त्री प्रसिद्ध पूर्ण हो जाती है और वीर्यदाता पुरुष पिता बनकर पूर्ण और प्रसिद्ध हो जाता है। पुत्र में पिता प्रतिष्ठित है। भविष्य में पुत्र पिता बन जाता है। पिता-पुत्र का चक्र आदिकाल से सर्वदा बना रहता है। यह सार्वभौम नियम है।

> उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
> एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥
>
> —अथर्ववेद १०।८।२८॥

एक ही जीव कभी पिता कभी पुत्र बनता है, वही जीव ज्येष्ठ भ्राता और छोटा भाई बनता है। एक ही जीव मन में प्रविष्ट हुआ पहले पैदा होता है, वही शरीर त्याग कर गर्भ के भीतर आता है। इसी क्रम से बार-बार नाना रूपों में जन्म लेता है।

हमने ब्रह्माण्ड में, पिण्ड में, गणितविद्या में, प्राकृतिक नियम व पदार्थों में सिद्ध कर दिया और वेद के अनेक मन्त्रों के प्रमाण देकर यह दर्शा दिया कि ईश्वर जीव व प्रकृति का अनादिकालीन सृष्टिचक्र है।

इससे यह लाभ हुआ कि स्रष्टा की सिद्धि हो गयी। स्रष्टा में श्रद्धा होने से योगाभ्यास द्वारा ब्रह्मानन्द का नित्य-नित्य आनन्द भोगता है।

जैसे गृहस्थ में गर्भाधान के समय क्षणिक चरमानन्द प्राप्त होता है। मुक्ति में ब्रह्मानन्द को परान्तकाल तक जीव प्राप्त करता है।

मैंने सृष्टिविद्या में शतशः प्रमाणों से वैदिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला है। ऋषियों के आप्त प्रमाणों के साथ-साथ भी प्रकाश डाला है। वेद से भिन्न कोई पुस्तक संसार में नहीं है, जो सत्यविद्याओं का प्रकाश देवे।

यदि भौतिक वैज्ञानिकों के पास कुछ पदार्थविद्यायें हैं, तो वे वेदों से ही ली गई हैं। जिन भौतिक तत्त्वदर्शियों ने मनोयोग से पुरुषार्थ कर के विद्या व सिद्धान्त प्राप्त किया है, वे वैज्ञानिक धन्यवाद के पात्र हैं। संसार उनका कृतज्ञ है। मिथ्या विकासवादी ईसाई मतावलम्बी या इलाहमी लोगों की मनुष्यकृत पुस्तकों में विज्ञान का किञ्चित् प्रकाश नहीं है। उनकी इलाहमी पुस्तकों में अविद्या मिथ्यावचन व संसार के प्राणिमात्र के लिये बहुत सी हानिकारक बातें लिखी हैं। वे ईश्वरकृत नहीं हो सकतीं। नाना मतावलम्बियों के कारण संसार में दंगे झगड़े होकर अशान्ति और दुःख है, यह प्रत्यक्ष है। अतः वैदिक व्यवस्था से सुख शान्ति हो सकती है।

पुरुषसूक्त में स्रष्टा की महिमा

एतावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि॥

—यजु० ३१।३॥

भावार्थ—यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड परमपुरुष स्रष्टा की महिमा का सूचक है। अनन्त ब्रह्माण्ड से परमपुरुष अति प्रशंसित और बड़ा है, पृथिव्यादि चराचर जगत् एक पाद अर्थात् चौथाई अंश मात्र है। अनन्त ब्रह्माण्ड से तीन-चौथाई महापुरुष नाशरहित अमृतरूप बड़ा है।

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ऽअधि॒ पूरु॑षः।
स जा॒तोऽअत्य॑रिच्यत प॒श्चाद् भूमि॒मथो॑ पु॒रः॥

—यजु० ३१।५॥

भावार्थ—महापुरुष स्रष्टा से प्रकाशमान् ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है। वह अधिष्ठाता परिपूर्ण और प्रसिद्ध है, सूर्य भूमि आदि क्रमशः उत्पन्न हुए हैं।

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षराक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥

- गीता

एक विराट् ब्रह्माण्ड पुरुषाकार दूसरा निराकार परमपुरुष है। क्षर ब्रह्माण्ड पुरुषाकार जो है, वह नष्ट होता है, परिवर्तित होता है और अक्षर निराकार परमपुरुष कूटस्थ सर्वत्र निश्चल नष्ट अपरिवर्तित

सर्वदा रहता है। जैसे पिण्ड पुरुषाकार नष्ट होता रहता है और निराकारात्मा पुरुष नष्ट नहीं होता, अजर अमर नित्य रहता है।

महान् विराट् पुरुषोत्तम का आलङ्कारिक स्वरूप वर्णन

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो
अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥

—अथर्व ९।७।१॥

सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥

—अथर्व० ९।७।२॥

विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा
घर्मो वहः ॥

—अथर्व० ९।७।४॥

विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥

—अथर्व० ९।७।४॥

श्येनः क्रोडो३न्तरिक्षं पाजस्यं१ बृहस्पतिः ककुद्
बृहतीः कीकसाः ॥

—अथर्व० ९।७।५॥

विराट् प्रजापति निराकार परमपुरुष का वेद में आलङ्कारिक वर्णन लघु पिण्ड शरीर के अङ्गोपाङ्गों की उपमा देकर अरबों योजनों में विस्तृत ब्रह्माण्ड के ग्रह ग्रहपति तीनों लोकों में फैले हुए के आकार का वर्णन किया है। क्या मानव की मेधा में शक्ति है, जो विराट् ब्रह्माण्ड की कल्पना करके परम पुरुष के आकार को समझ सकेगा ? कदापि नहीं। कल्पना के लिये महान् मेधा बुद्धि बढ़ानी चाहिये।

विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः।
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्य
भूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु ॥

—अथर्व० ९।१०।२४॥

अर्थात् विविध जगत् का राजा वाक्=प्रवक्ता है। विशाल पृथिवी असीम अन्तरिक्ष और विराट्=बृहत् सूर्यरूप है। महाकाल मृत्युरूप होकर विराट् ब्रह्माण्ड को नष्ट करता है। वह साधनाशील का अधिराजा है, भूत और भविष्य उसके वश में है।

भूत और भविष्य को मेरे वश में करें अर्थात् साधनाशील महापुरुष वर्तमान का सदुपयोग करके भूत और भविष्य को अपने वश में रखते हैं। वर्तमान ही भूत हो जाता है। आनेवाला भविष्य वर्तमान बन जाता है, वर्तमान भूतकाल में समा जाता है।

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।
दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
—अथर्व० १०।७।३२॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
—अथर्व० १०।७।३३॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
—अथर्व १०।७।३४॥

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्समानशे ।
सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥
—अथर्व० १०।७।३६॥

भावार्थः—

भूत भविष्यत् वर्तमान का स्वामी जो ।
विश्व अधिष्ठाता है अन्तर्यामी जो ।
केवल परमानन्द रूप है नामी जो ।
नमस्कार उस ब्रह्म ज्येष्ठ परमेश्वर को ।
नमस्कार उस सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर को ॥१॥

अवनि अन्तरिक्ष दिव्य लोक रचाये हैं।
चरण उदर मूर्धा समान प्रकटाये हैं।
जिसने अपने ज्ञापक लोक बनाये हैं।
नमस्कार उस ब्रह्म ज्येष्ठ परमेश्वर को।
नमस्कार उस सर्वश्रेष्ठ सर्वेश्वर को ॥२॥

जिसके दो दृग् सूर्य पुनर्नव चन्द्र बने।
कल्प-कल्प में नूतन रूप धरे अपने।
एवं अग्नि बनायी मुख अपनी जिसने।
नमस्कार उस ब्रह्म ज्येष्ठ परमेश्वर को।
नमस्कार उस सर्वश्रेष्ठ सर्वेश्वर को ॥३॥

जिसकी प्राण-अपान सारी हवा बनी।
आंखें जिसकी ज्योतिर्मय रश्मियां बनीं।
जिसकी विजयपताकायें सब दिशा बनीं।
नमस्कार उस ब्रह्म ज्येष्ठ परमेश्वर को।
नमस्कार उस सर्वश्रेष्ठ सर्वेश्वर को ॥४॥

सर्वलोक-मानस में तप से प्रकट हुआ।
सोम किया केवल जो श्रम से प्रकट हुआ।
जो केवल सुख-सार घट-घट प्रकट हुआ।
नमस्कार उस ब्रह्म ज्येष्ठ परमेश्वर को।
नमस्कार उस सर्वश्रेष्ठ सर्वेश्वर को ॥५॥

—पं. रामनिवास विद्यार्थी, वाराणसी से साभार

वेद में स्रष्टा स्वयं अपना परिचय दे रहा है

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम् ॥

—यजुर्वेद २३।५०॥

भावार्थः—सब जीवों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मैं कार्य कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूं, मेरे विना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है। जहां जगत् नहीं है, वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूं। जो इस अति विस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं, यह मेरे आगे अणु-मात्र भी नहीं है। इस बात को वैसे ही विद्वान् सब को जनावें।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥
—ऋग्वेद १०।१२९।७॥

हे मानव ! जिससे यह अनन्त सृष्टि बनी और प्रकाशित है और सुदीर्घ काल पर्यन्त यह स्थित बनी रहेगी, पश्चात् प्रलय के द्वारा नष्ट हो जायगी, जो इसका स्वामी अध्यक्ष परिपूर्ण स्रष्टा द्रष्टा है, उस सर्वाधार महापुरुष को ज्ञान-विज्ञान से समझो ।

सृष्टि का अध्यक्ष स्रष्टा अणु परमाणु और अनन्त ब्रह्माण्डों को सर्वतोरूप से पूर्णतया देखता है और मालिक है, वही अध्यक्ष हो सकता है ।

जीव कोई भी वस्तु को जो छोटी हो या बड़ी, उस के एक भाग को ही देख सकता है और लघु अंश मात्र का ही मालिक होता है, वह भी किञ्चित् जीवन पर्यन्त । उसमें भी बंटवारा झगड़ा विवाद से दुःखी होता है । तब भी अहङ्कार से अपने को मालिक हिस्सेदार समझता है । परम पुरुष ही सभी का अध्यक्ष है, निराकार होने से सर्वत्र व्यापक है । उसके सामने अर्थात् तुलना में वह महान् है और अनन्त ब्रह्माण्ड अणुमात्र है । जैसे विशाल समुद्र के आगे जल बिन्दु मात्र हैं ।

ब्रह्माण्ड परमेश्वर के अधीन है

यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
—अथर्व० ४।२।४॥

जिसके वश में बड़े-बड़े द्युलोक हैं, जिससे यह विस्तृत अन्तरिक्ष हुआ है, जो सूर्यादि लोकों को रचकर बड़ी महिमा के साथ चमकाता है, उस आनन्दस्वरूप देव की स्तुति प्रार्थना उपासना करना चाहिये ।

वेद तथा लोकादि पदार्थों का स्रष्टा—

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥
—ऋ० ९।९६।५॥

संसार के स्रष्टा पवित्रकर्ता विज्ञानदाता वेदों को उत्पन्न करनेवाला द्युलोक को पैदा करनेवाला पृथिवीलोक का निर्माता अग्नि का उत्पादक सूर्य का उत्पादयिता इन्द्र=विद्युत् वायु ऐश्वर्य का स्रष्टा और जल को उत्पन्न करनेवाला सब को गति देता है और पवित्र करता है।

जड़ चेतन सृष्टि का कर्ता—

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—ऋ० १०।१२१।३॥

जिसने जड़ चेतन सृष्टि को उत्पन्न करके धारण कर रखा है, एक ही राजा धारण करता है, इस जगत् में दो पैरवाले और चार पैरवाले प्राणियों पर जो अकेला राज्य करता है, उसकी उपासना श्रद्धा से करना चाहिये।

—:०:—

आप्त पुरुषों के वचन

सूक्ष्म भौतिक पदार्थों की गणना का मान

सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता, उसका नाम परमाणु होता है। साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु है। दो अणु का एक द्वयणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्वयणुक का अग्नि, चार द्वयणुक का जल, पांच द्वयणुक की पृथिवी अथवा तीन द्वयणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम मिलकर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं।

—सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ८

गणितविद्या से पदार्थविद्या के समस्त पदार्थों के सूक्ष्म स्थूल अवयवों की गणना होती है। कालविभाग=काल-अवयवों की गणना भी गणित से ही सम्भव है।

६० परमाणु=१ अणु।

१२० परमाणु=२ अणु=१ द्वयणुक वायु तत्त्व।

३ द्वयणुक=१ त्रसरेणु १ अग्नि तत्त्व।

४ द्वयणुक=१ जलकण।

५ ,, =१ पृथिवीकण=पार्थिव कण।

३ ,, १ त्रसरेणु।

६ ,, २ ,, पृथिवी का सूक्ष्म कण।

—:०:—

वेदों के प्रकाण्ड भाष्यकार अनेक सत्यविद्याओं के ज्ञाता स्वामी दयानन्द सरस्वती का अतीन्द्रिय ज्ञान

प्रति कल्प सृष्टि की समानता—

प्रश्न—कल्प-कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण-विलक्षण बनाता है अथवा एकसी ?

उत्तर—जैसी कि अब है वैसी पहले थी और आगे होगी। वह भेद नहीं करता। इसका वर्णन वेद में किया गया है—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—ऋ० १०।१९०।३॥

अर्थात् धाता=परमेश्वर ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य चन्द्र विद्युत् पृथ्वी अन्तरिक्ष आदि बनाये थे, वैसे ही अब बनाए हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा।

इसलिये परमेश्वर के काम विना भूल-चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ है तथा जिसका ज्ञान वृद्धि और क्षय को प्राप्त होता रहता है, उसी के काम में भूल-चूक होती है। ईश्वर के काम में नहीं होती। —सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ८

और भी प्रमाण देखिए—

'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्, अन्नाद् रेतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः।'

—यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है

अर्थात् उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश=अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्न-सा होता है।

वास्तव में आकाश की किसी भी काल में उत्पत्ति नहीं होती; क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें? आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है।

अति संक्षेप से सूक्ष्म रूप से यहां पुरुषादि की उत्पत्ति का वर्णन है। अन्नादि का परिपाक भूगर्भ में ही होता है। अन्न से रस रक्त मांस मेद अस्थि मज्जा रज वीर्य के क्रमशः निर्मित होने पर सूक्ष्म रज वीर्य का भूगर्भ में ही मिथुन होता है। भूगर्भ में मानवादि के ऊर्ध्वमुखी पिण्ड=शरीर पूर्ण युवा होने पर ही उत्पन्न होते हैं।

लोकान्तरों के प्राणियों में आकृति-भेद सम्भव

प्रश्न—जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि के आकृति अवयव हैं, वैसे ही अन्य लोकों में भी होंगे वा विपरीत ?

उत्तर—कुछ-कुछ आकृति में भेद होने का सम्भव है। जैसे इस देश में चीन हब्शी और आर्यावर्त यूरोप में अवयव और रङ्ग-रूप और आकृति का भी थोड़ा-थोड़ा भेद होता है। इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है, वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस-जिस शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अङ्ग हैं, उसी-उसी प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं। —सत्यार्थप्रकाश

टिप्पणी—एक-एक सौरमण्डल में एक-एक सूर्य, एक-एक पृथिवी और अन्य ग्रह-उपग्रह होते हैं। जिस-जिस ग्रह में जो-जो प्रधान तत्त्व होते हैं, उस-उस तत्त्व से प्रधान शरीर के मानवादि प्राणी होते हैं। जैसे इस ब्रह्माण्ड में पृथिवी नाभिस्थानी है। पार्थिव शरीर के पिण्डों की अनेक प्रकार से प्रति मनु उत्पत्ति होती है।

पार्थिव प्रधान भूमि पर पञ्चमहाभूतादि शरीरवाले प्राणी हैं। इसी प्रकार अन्य ब्रह्माण्डों में भी पृथिवी पर पार्थिवप्रधान शरीरवाले प्राणी होते हैं और अन्य ग्रहों में सूक्ष्म शरीर धारी जीवों का समय-समय पर आवागमन होता रहता है।

अनन्त जीवों के लिए अनन्त ब्रह्माण्ड बनाए गए हैं। स्रष्टा द्वारा जो भी निर्माण का कार्य होता है वह सब प्रयोजन और उद्देश्य के साथ होता है।

जैसे मानव की भी जो कोई कृति यहां होती है वह भी प्रयोजन और उद्देश्य के साथ होती है। रचयिता प्राणियों के उपयोग के लिए सब वस्तुयें बनाता है।

सृष्टि प्रवाह से अनादि है

प्रश्न—कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं ?

उत्तर—नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है, इसी

प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि, तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादिकाल से चक्र चला आता है। इस का आदि वा अन्त नहीं होता है। किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का अन्त देखने में आता है। क्योंकि जैसे परमात्मा जीव और जगत् का कारण तीनों स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत् की उत्पत्ति स्थिति और वर्तमान प्रवाह से अनादि हैं।

जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है, कभी सूख जाता नहीं दीखता, फिर बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव अनादि हैं, वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करना भी अनादि हैं। जैसे कभी ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, इसी प्रकार उसके कर्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं। —सत्यार्थप्रकाश, समु० ८

अवान्तर प्रलय

जब महाप्रलय होता है, उस के पश्चात् आकाशादिक्रम अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है, [तब] अग्न्यादि क्रम से और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता, तब जलक्रम से सृष्टि होती है। अर्थात् जिस-जिस प्रलय में जहां-जहां तक प्रलय होता है, वहां-वहां से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं, वे सब परमेश्वर के हैं। —सत्यार्थप्रकाश, समु० ८

जगत् की उत्पत्ति में तीन कारण

प्रश्न—जगत् के कारण कितने होते हैं?

उत्तर—तीन। एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण। निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने, न बनाने से न बने। आप स्वयं बने नहीं, दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे। दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं, जिसके विना कुछ न बने। वही अवस्थान्तररूप होके बने बिगड़े भी। तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो।

निमित्त कारण दो प्रकार के हैं। एक—सब सृष्टि के कारण से बनाने धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखनेवाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा है। दूसरा—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेकविध कार्यान्तर बनानेवाला साधारण निमित्तकारण जीव है।

उपादान कारण—प्रकृति परमाणु, जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं। वह जड़ होने से आप से आप न बन और न बिगड़ सकती है। किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है। कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है। जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं। परन्तु इन का नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है।।

जब कोई वस्तु बनाई जाती है, तब जिन-जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान दर्शन बल हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा काल और आकाश, वे साधारण कारण हैं। जैसे घड़े को बनानेवाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान और दण्ड-चक्र आदि सामान्य निमित्त, दिशाकाल आकाश प्रकाश आंख हाथ ज्ञान क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है।

—सत्यार्थप्रकाश, समु० ८

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. ऋग्वेद २. यजुर्वेद ३. सामवेद ४. अथर्ववेद ५. चारों वेदों के भाष्य ६. उपनिषदें ७. सांख्यदर्शन ८. योगदर्शन ९. वैशेषिकदर्शन १०. न्यायदर्शन ११. मीमांसादर्शन १२. वेदान्तदर्शन १३. मनुस्मृति १४ सत्यार्थप्रकाश १५. संस्कारविधि १६. ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका १७. ऋग्वेदभाष्य १८. यजुर्वेदभाष्य १९. अथर्ववेदभाष्य २०. आर्योद्देश्यरत्नमाला २१. निरुक्त विमर्श २२. श्रौतयज्ञ-मीमांसा २३. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा २४. वैदिक-स्वर-मीमांसा २५. वैदिक-छन्दो-मीमांसा २६. मीमांसा-शाबर-भाष्य २७. सूर्यसिद्धान्त २८. वैदिक-ज्योतिषशास्त्र २९. वैदिक-सम्पदा ३०. वैदिक सम्पत्ति ३१. वैदिक वाङ्मय का इतिहास ३२ वेदामृत ३३. वेदार्थप्रक्रिया के मूलभूत सिद्धान्त ३४. ऋग्वेद-महाभाष्यम् ३५. चतुर्वेद-विषयसूची ३६. शतपथब्राह्मण ३७. तांड्य ब्राह्मण ३८. ऐतरेयब्राह्मण ३९. तैत्तिरीयब्राह्मण ४०. यजुर्वेदभाष्य-विवरण-भूमिका ४१. वेद-विद्या-निदर्शन ४२. निरुक्त-भाष्य ४३. महाभारत ४४. रामायण ४५. निरुक्तशास्त्र ४६. विष्णु-सहस्रनाम-सत्यभाष्यम् ४७. अष्टोत्तरशतनाममालिका ४८. भारतीय कालगणना ४९. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास ५०. भाषा का इतिहास ५१. पातञ्जल महाभाष्य ५२. दूत-नाडी-विज्ञान ५३. भागवतपुराण ५४. वायुपुराण ५५. विश्वेदेवा विज्ञान ५६. भगवद्गीता ५७. वेदवाणी पत्रिका ५८. सार्वदेशिक पत्रिका ५९. आर्यमित्र पत्रिका ६०. ऋचाओं की छाया ६१. भारतीय ज्योतिष ६२. विश्व-भारती ६३. हिन्दी शब्दकोश ६४. शब्दकौस्तुभ (संस्कृत)

इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत पुस्तकों से सहयोग लिया है। स्रष्टा तथा उक्त पुस्तकों के लेखक महापण्डित ऋषियों का हार्दिक धन्यवाद।

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

भूमिका

अथ सृष्टि-जिज्ञासा—

वाल्यावस्था से ही कई वालकों को विविध प्रकार की जिज्ञासा (जानने की इच्छा) बनी रहती है। खाद्य पदार्थों के विषय में तथा जगत् में सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-तारे और भूमि के वन्य पशुओं के जानने की इच्छा होती है। वह धीरे-धीरे माता, पिता, गुरुओं तथा अनेक मित्रों और विद्वानों से पूछता है तथा अपनी जिज्ञासा को पूर्णरूप से शान्त करना चाहता है।

मेरी भी जिज्ञासा वाल्यकाल से रही कि धार्मिक ग्रन्थ वेद का नाम सुनते हैं, यह वेद क्या है? वेद को देखने की इच्छा और जिज्ञासा थी। आत्मा, परमात्मा तथा पुनर्जन्म इत्यादि के विषय में भी जिज्ञासा होती रहती थी। १९४६ से यह जिज्ञासा धीरे-धीरे शान्त हुई।

लगभग ४२ वर्षों से अध्ययन, स्वाध्याय और सत्सङ्ग से मन को वहुत समाधान हुआ। गत २० वर्षों से सृष्टि के विषय में विशेषरूप से मन में जिज्ञासा उठीं। सृष्टि के विषय में कुछ चित्र वनाए। पुनः पूज्य-पाद पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, श्री १०८ पं० सत्यदेव वासिष्ठ तथा आदरणीय आचार्य विजयपाल जी विद्यावारिधि के पास बार-वार शङ्कासमाधानार्थ आकर विचार-विमर्श करता रहा। उसी का यह परिणाम है कि मैं आपके समक्ष सृष्टि-विद्या के विषय में कुछ विषय प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूं। यहां लघुरूप में ही सृष्टि-परिचय प्रस्तुत है। इसको पढ़ने से सृष्टि के विषय में पाठकों की भी कुछ जिज्ञासा शान्त होगी।

इस जिज्ञासा की प्रवृत्ति ने विश्व में अनेकों दार्शनिक उत्पन्न किये। उन दार्शनिकों ने दर्शनशास्त्रों की रचना की तथा उन शास्त्रों को भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान का भण्डार बना दिया, जिस से संसार में सामान्य जन को निरन्तर लाभ हो रहा है और होता रहेगा।

सम्मतियाँ

श्री व्रतपालजी द्वारा सङ्कलित विचार और उन विचारों के आधार पर सृष्टि-क्रम के चित्रों को देखने का अवसर मिला। व्रतपालजी की तपस्या निःस्पृह अध्यवसाय और ज्ञान-सञ्चय की प्रवृत्ति के लिए शतशः साधुवाद और मङ्गल कामनायें। अरवों वर्ष की अवधि में वनी सृष्टि और प्रलय के कौतूहल, जगन्नियन्ता के असीम स्नेह और कौशल का आभास है। उन्हें समझने और समझाने का एक छोटा सा प्रयास व्रतपाल जी ने किया है। आरम्भिक विज्ञान और प्राचीन ऋषि की अनुभूतियों का विस्मयकारक समन्वय, चित्रकार को भी आशीर्वाद और व्रतपालजी के प्रति हम अनुगृहीत हैं।

सत्यप्रकाश सरस्वती
१८।३।७६
कटरा आर्यसमाज, प्रयाग

भारत के प्राचीन शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति और उसके क्रमिक विकास का जो ज्ञान है,वह अत्यन्त रहस्यमय है। रहस्य की इन ग्रन्थियों को सुवोध, सरल शैली और भाषा से खोलने का जो प्रयास श्री व्रतपाल जी ने चित्रों के माध्यम से किया है, वह वहुत सराहनीय है। चित्रों को देखकर अनेक प्रकार की शङ्काओं का, जो सृष्टि के विकास-विषयक प्रश्नों से सम्वन्धित थीं, समाधान हुआ। इसलिये मैं श्री व्रतपालजी का कृतज्ञ हूं। वे साधना के मार्ग में और भी आगे वढ़ें और ईश्वर उन्हें यह क्षमता दें कि वे सर्वसाधारण के हृदय में उत्पन्न होनेवाली जिज्ञासा को शाँत करें, यही कामना है।

सत्यकाम विद्यालङ्कार
चन्द्रेश्वर भवन २/२०८, सायन पालम
बम्वई २२
१८।३।१९७६

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय विषय को सप्रमाण चित्रों में प्रस्तुत करने के विषय में व्रतपालजी को भगवत्कृपा से सिद्धि मिली।

आचार्य वाचस्पति उपाध्याय
गुरुकुल काङ्गड़ी
जनवरी, १९८०

वेद-परिचय

लोक में देखा जाता है प्रत्येक निर्माता अपनी-अपनी निर्मित वस्तु के साथ एक परिचय-पत्र (सेवनविधि) देता है, यदि यंत्र है तो यंत्र का विवरणपत्र =कैटलाग् देता है, जिस से उपभोक्ता वस्तु का सदुपयोग कर सके और लाभ उठाये। ठीक इसी प्रकार सृष्टिकर्ता सृष्टि के पूर्ण बनते ही आदिमानव को सृष्टि का परिचय (ज्ञान-विज्ञान) देता है।

अन्तर्यामी परमात्मा अन्तर्वाणी से ऋषियों की अन्तरात्मा में जो प्रतिभासित ज्ञान देता है, उसे वेदज्ञान कहते हैं, सुनने-सुनाने से वेदों को श्रुति भी कहते हैं।

सृष्टिकर्ता ने ब्रह्माण्ड वना कर तदनुरूप उपमाकृति पिण्ड= शरीर भी वनाया। पिण्ड को खाने के लिये पिण्ड की आकृति के अनुरूप कन्द-मूल-फल भी वनाया। ब्रह्माण्ड, पिण्ड और प्राकृतिक पदार्थों का ज्ञान वेद में लिखित है, अतः इन चारों में घनिष्ठ सामञ्जस्य है, क्योंकि इन चारों का रचयिता एक ओ३म् है।

वेद चार हैं--१. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद। सृष्टि के आदि में महर्षि अग्नि को ऋग्वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ, महर्षि वायु को यजुर्वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ, महर्षि आदित्य को सामवेद का ज्ञान हुआ और महर्षि अङ्गिरा को अथर्ववेद का ज्ञान प्राप्त हुआ।

जैसे सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सभी के हैं, सभी इनका उपयोग कर सकते हैं, ठीक इसी प्रकार चारों वेदों को सभी को पढ़ने का अधिकार है।

स्त्री और सामान्य जन पुरुषार्थ करें, पढ़ें, सुनें और लाभ उठायें। वेद सृष्टि का अनन्त ब्रह्माण्डों का संविधान है। जो वेदानुकूल आचरण करेगा, उसको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धियां मिलेंगी। जो विपरीत चलेगा, उसको विद्याविहीन योनियों में =नीच योनियों में जाना पड़ेगा। अतः उत्तम कर्म करें, मनुष्य, देव, मुनि, ऋषि वनें, भावी मानव-जीवन का आरक्षण तत्काल करा लेवें।

चतुर्वेद-विषय-सूची

ऋग्वेद-देवता-विषयसूची-विवरण

मं०	सूक्त	मन्त्र	देवता	विषय-विवरण
१	१	१	अग्निः	ब्रह्माण्ड, सर्ग का प्रेरक, सम्पादक की उपासना।
१	६	१-३	इन्द्रः	सूर्य विज्ञान, प्रकाशक, ब्रह्माण्ड का झण्डा।
१	९५	१-३	अग्निः	काल विभाग, रात-दिन पदार्थ-विद्या।
३	९	१-९	अग्निः	३३३९ तत्त्वों का वर्णन
३	६२	१०-१२	सविता	गायत्री जाप उपासना फल सफल जीवन।
४	५५	१-१०	विश्वे देवाः	द्यावाभूमि पिता माता के समान रक्षक।
५	६८	१-९	गर्भस्राविण्युः	गर्भ विज्ञान, वायु, समुद्र उदाहरणों, गर्भकाल १० वाँ मास, चान्द्रमास, जन्म।
५	८३	१-१०	पर्जन्यः	पर्जन्य द्वारा पृथिवी का गर्भधारण औषध, अन्नादि उत्पत्ति।
६	१६	३५	अग्निः	अग्निस्वरूप हिरण्यगर्भ, माता-पिता के समान गर्भ धारण करके जगत् को उत्पन्न करता है।
६	१८	८	सूर्यः, इन्द्रः	हजार रश्मिवाला सूर्य, ऋतुकारक, रश्मि माया।
६	७०	१-६	द्यावापृथिवी	भूगर्भ-विद्या, सूर्य-विद्या को जानकर, वृद्धि की कामना।
७	३५	१-१५	विश्वे देवाः	शान्तिप्रकरण, ब्रह्माण्ड पिंड सकल पदार्थ कल्याणकारी, शान्तिकारी हों।

८	१०१	११	सूर्यः	सूर्य का परिमाण बड़ा दूर बलवान् महान् देवता पुरोहित।
९	७६	१-४८	पवमानः, सोमः	जीव-स्रष्टा का सख्य भाव गुरु-ज्ञान से मोक्ष प्राप्ति, देह-देहान्तर आत्मा की गति।
९	९७	२९	पवमानः, सोमः	विविध प्रकार की बोली, भाषा, विशेष ज्ञानप्रदाता।
१०	१०	१-९	यमः	प्रश्नोत्तर सृष्टि सम्बन्धी
१०	६३	१-१७	विश्वे देवाः	सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पिण्ड की मङ्गल कामना स्वस्ति पाठ।
१०	७१	१-१०	ज्ञानम्	वेद विद्या को देनेवाला बृहस्पति, शुद्ध वाणी-विज्ञान।
१०	७२	१-९	अदितिर्वा	सृष्टि-रचना के आरम्भ का इतिहास, प्रकृति-विकृति।
१०	९०	१-१६	पुरुषः	पुरुषसूक्त, सृष्टि-विज्ञान
१०	१२९	१-७	भाववृत्तमः	नासदीय सूक्त सोम्यावस्था प्रकृति सृष्टि-सम्बन्धी प्रश्नोत्तर, अनन्त ब्रह्माण्ड के अध्यक्ष को जानो।
१०	१९०	१-३	भाववृत्तमः	अघमर्षण मन्त्र, सृष्टि-रचना का क्रम, दिन रात की रचना, यह सृष्टि पूर्व सृष्टि के अनुसार पुनः पुनः बनती है,तीनों लोक सुखदायक हैं।

यजुर्वेद-देवता-विषय-विवरण

१	१	सविता	यज्ञकर्त्ता ईश्वर की प्रार्थना पशुपालन रक्षादि।
१	४	विष्णुः	स्रष्टा सृष्टि का रचयिता सृष्टि की आयुः विद्या।

२	२१	प्रजापतिः	स्रष्टा सर्वज्ञ वेद प्रदाता।
३	६	अग्निः	पृथिवी भ्रमण काल विभाग विद्या।
३	८	अग्निः	अग्नि, पृथिवी आदि तीस स्थानों को प्रकाशित करता है।
३	५५	मनः	जन्म पूर्व जन्म क्रम विद्या।
४	१५	अग्निः	जन्म पुनर्जन्म इन्द्रियादि बलवान् पवित्र कामना प्रार्थना विद्या।
७	५	ईश्वरः	पिण्ड शरीर में ब्रह्माण्ड का निरूपण, स्थापित पिण्ड में ब्रह्माण्ड का निर्देश।
६	३१	अग्न्यादयः मन्त्रोक्त	अक्षर विद्या गणित विज्ञान विविध कर्म निर्देश।
१०	२	वृषः	राष्ट्र निर्माण राज्य तन्त्र विद्या।
१२	३७,३८	अग्निः	जीव कहाँ-कहाँ कर्मानुसार (जन्म लेता रहता है) देहान्त के वाद शरीर की गति और जीव के पुनर्जन्म की विद्या।
१२	११७	अग्निः	ब्रह्माण्ड का सम्राट् एक ईश्वर के गुण धर्म का विधान।
१३	६	हिरण्यगर्भः	गतिशील सौर मण्डल में सब प्राणियों को अन्न प्राप्त होगा।
१७	२७	विश्वकर्मा	समस्त ब्रह्माण्डों का केवल एक पितावत् जनक, नाम धाम प्रसिद्ध हैं—कर्मफल प्रदाता है उसी की ज्ञान उपासना करनी योग्य है।

१७	३०	विश्वकर्मा	साम्यावस्था में प्रकृति, और समस्त जीवों को अनादि काल से अपने हिरण्यगर्भ में धारण पालन-पोषण करता रहता है। समस्त पदार्थों में व्यापक है उसी को जानना चाहिये।
१७	६९,७०	अग्निः	परकाया प्रवेश
१८	१९	पदार्थविद्या	ब्रह्माण्ड पिण्ड यज्ञात्मक
१८	२४,२५	विषमांक गणित	विद्याविदात्मा समांक गणित विद्या।
१९	७६	इन्द्र	गर्भाधान, आकृति संस्कार।
२१	५	आदित्य	पृथ्वी, स्त्री अलङ्कार मातृवत् पृथ्वी सबका पालन करती है।
२३	२४	भूमिसूर्यौ	भूमि माता, पिता सूर्य।
२३	५९	प्रष्टा	प्रश्न, ब्रह्माण्ड सम्बन्ध।

अथर्ववेद-देवता-विषय-विवरण

१	१	१	वाचस्पति	प्रकृति विकृत्ति वर्णन
२	२८	४	द्यावा पृथिवी	द्यौ पिता, पृथिवी माता।
४	३०	१-८	वाक्	वेद विज्ञान, वेद-वाणी।
५	२१	१२	आदित्यः	ब्रह्माण्ड में सूर्य झण्डे के समान है।
६	८८	१-३	ध्रुवः	विश्व, जगत्, गतिमान् ध्रुव।
८	२	२०	आयु	सृष्टि की आयु, परिमाण।
१०	२	१-३३	पुरुष	पिण्ड के अंग, इन्द्रियों के नाम प्रश्नोत्तर, आत्मा का निवास स्थान।
१२	१	१-६३	भूमिः	भूमि का आधार, भूसम्पदा, माता भूमि, प्रजा, भूमि के

				नाम, ऋतु गति, काल विभाग, भू रक्षक पालक भूमि प्रसूता,पशु-पक्षी नाम।
१२	३	१-६०	स्वर्ग, अग्निः	स्वर्ग की साधना, गृहस्थ धर्म का उपदेश, पारिवारिक, सम्बन्ध तीन लोक, परिचय, राज्य कर्म, दिशा विज्ञान।
१३	२	२५	रोहितः	जीव का मोक्ष, पुनर्जन्म, विविध योनि में आवागमन।
१७	१	२७	आदित्य	सहस्र आयु, १ लाख वर्ष।
१८	१	१०	यम, यमी	दिवा, पृथिवी, मिथुना सब द्यु उपमेय, गृहस्थाश्रम नर-नारी उपमा, अलङ्कार।
१८	२	७	जातवेदा	देहान्त के पश्चात् जीव का भ्रमण।
१९	३	१	अग्निः	तीन लोकों के द्वारा ओषधि निर्माण।
१९	६	१-१६	पुरुष	पुरुष सूक्त, जगत् उत्पादक सृष्टि-विज्ञान, ब्रह्माण्ड पिंड सम्बन्ध।
१९	७	१-५	नक्षत्राणि	२८ नक्षत्रों के नाम कार्तिक कल्याणकारी हो।
१९	८	१-७	नक्षत्राणि	२८ नक्षत्रों के नाम कार्तिक कल्याणकारी हो।
१९	९	१-१३	शान्ति	ब्रह्माण्ड पिण्ड, इन्द्रिय,उल्का राहु धूमकेतु सब शान्त कल्याणकारी हों।

[बृहत् चतुर्वेद-विषय-सूची तथा सृष्टि-वेदपरिचय के विस्तृत लेख आचार्य श्री विजयपालजी ने हैदराबाद आकर १९८० में ही लिखा दिये थे, दुर्भाग्य से १९८४ में बरेली यात्रा में पेटी चोरी हो गयी, लेखादि भी पेटी में थे। अतः अनेक विघ्नों में से यह भी एक विघ्न था।]

कालमान (कौटिल्य)

१/४	निमेष	—	१ तुट
२	तुट	—	१ लव
२	लव	—	१ निमेष—१.७७ सैकिण्ड
५	निमेष	—	१ काष्ठा—३.१७८ ,,
३०	काष्ठा	—	१ कला—८६.०० ,,
४०	कला	—	१ नाडिका
२	नाडिका	—	१ मुहूर्त—४८.०० मिनट
१५	मुहूर्त	—	१ अहः—१२.०० घण्टे
३०	मुहूर्त	—	१ अहोरात्र—२४.०० ,,
१५	अहोरात्र	—	१ पक्ष—शुक्ल-कृष्ण पक्ष
२	पक्ष	—	१ मास
२	मास	—	१ ऋतु
६	मास (३ऋतु)	—	१ अयन
१२	मास (६ऋतु)	—	२ अयन—एक वर्ष

मासों के लौकिक एवं वैदिक नाम

लौकिक वैदिक	लौकिक वैदिक
१. चैत्र मधु	२. वैशाख—माधव
३. ज्येष्ठ—शुक्र	४. आषाढ़—शुचि
५. श्रावण—नभ	६. भाद्र—नभस्य
७. आश्विन—इष	८. कार्तिक—ऊर्ज्
९. मार्गशीर्ष—सह	१०. पौष—सहस्य
११. माघ—तप	१२. फाल्गुन—तपस्य

ये सब वैदिक नाम यजुर्वेद अ० १४ में ६, १५, १६; २७ तथा यजुर्वेद अ० १५।५७ में है। क्रमशः—दो-दो मास की ६ ऋतुयें बनती हैं।

लघुयुग

पाँच-पाँच वर्षों का एक-एक लघु युग होता है।[1]

५ वर्ष—१ लघु युग

---

१. ५-५ वर्षों के १२ (बारह) लघुयुग होते हैं, जिनके प्रभव आदि ६० नाम हैं, जिन्हें "षष्टि संवत्सर" में आगे दर्शाया जायेगा। यजुर्वेद ३०।१५ द० भा०।

१२ लघुयुगों का—६० वर्ष चक्र
६० वर्षों के १२ चक्र—७२० वर्ष
७२० वर्षों के ६०० चक्र—४,३२,००० वर्ष कलियुग में बनते हैं।[1]
४,३२,००० × ४ = १७,२८,००० वर्ष कृतयुग का परिमाण है।

बृहद् युग[2]

१. सतयुग / कृतयुग	—१७,२८,००० वर्ष
२. त्रेतायुग	—१२,९६,००० वर्ष
३. द्वापरयुग	— ८,६४,००० वर्ष
४. कलियुग	— ४,३२,००० वर्ष

१ चतुर्युगी	—	४३,२०,०००
७१ चतुर्युगी	—	१ मन्वन्तर
१ कृतयुग प्रमाण	—	१ सन्धि
१५ सन्धि	—	६ चतुर्युगी
१४ मनु	—	९९४ चतुर्युगी
१५ सन्धि + १४ मनु	—	१,००० चतुर्युगी[3]
१००० चतुर्युगी	—	१ ब्रह्मदिन
१००० चतुर्युगी	—	१ ब्रह्मरात्रि[4]

काल महिमा

काल क्या है ? काल एक द्रव्य है। काल शब्द की निष्पत्ति कल गतौ संख्याने च धातु से हुई है। प्रत्येक वस्तु बनाने में विभिन्न कारण में काल भी एक कारण है। उसका वर्णन वेदादि शास्त्रों में विभिन्न प्रकार से दर्शाया है। काल नित्य है। अतः पहले उसकी महिमा का वर्णन अथर्ववेद काण्ड १९। सूक्त ५३ के अनुसार करते हैं।

---

१. भारतीय काल-गणना, पृ० ८४।
२. सूर्य-सिद्धान्त, मनुस्मृति।
३. सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि। यजु० १५।६५॥
४. मनुस्मृति, अध्याय १।७८-८०।

महावलवान् काल सर्वव्यापी और अति शीघ्रगामी, शुक्ल, नील, रक्त, हरित, कपिश, चित्र वर्ण किरणोंवाले सूर्य के समान प्रकाशमान है। उस काल को बुद्धिमान् लोग सब अवस्थाओं में घोड़े के समान सहायक जानकर अपना कर्तव्य सिद्ध करते हैं ॥१॥

काल व्यापक और नित्य है। काल से ही संसार के सब कार्य सिद्ध होते हैं। मनुष्य काल के यथायोग्य उपयोग से उन्नति को प्राप्त होवे ॥२॥

समय के सुप्रयोग से धर्मात्मा लोग अनेक सम्मतियों के साथ सद् गति प्राप्त करते हैं। वह (काल) महाप्रवल सब स्थानों से परमात्मा के सामर्थ्य के वीच वर्तमान है, उसकी महिमा को बुद्धिमान् जानते हैं ॥३॥

काल सब सत्ताओं में व्यापक है, काल ही सृष्टि का पिता और पुत्र है। अर्थात् पहले, वर्तमान और आगामी सृष्टि काल से ही है। अर्थात् नित्य होने से वही (काल) पहले और वही पीछे है। इसी से वह (काल) संसार में वड़ा प्रतापी है ॥४॥

काल को पाकर ही यह दीखता हुआ आकाश और पृथिवी आदि लोक उत्पन्न हुये हैं और परमेश्वर के नियम से भूत और भविष्य भी काल के भीतर हैं ॥५॥

काल ही को पाकर सब ऐश्वर्य प्रकाश और पदार्थ उत्पन्न होते हैं॥६॥

काल के उत्तम उपयोग से मन और प्राण अर्थात् सब इन्द्रियों का स्वरूप और यश बढ़ता है, तव ही सब प्राणी सुख पाते हैं ॥७॥

काल के ही उत्तम उपयोग से मनुष्य ब्रह्मचर्य के साथ श्रेष्ठ कर्म और वेद का अध्ययन करते और प्रजापालक होते हैं ॥८॥

यह जगत् काल के उत्तम उपयोग से उत्पन्न होकर ठहरा हुआ है और उसके ही उत्तम उपयोग से मनुष्य अन्नादि पाकर उच्च पद पाते हैं ॥९॥

प्रलय के पीछे सृष्टि के आदि में काल के प्रभाव से सब प्रजायें और प्रजापालक राजा आदि उत्पन्न होते हैं और तभी स्वयंभू परमात्मा अपने गुणों और अद्भुत रचनाओं और नियमों के कारण प्रसिद्ध होता है ॥१०॥

समय के प्रभाव से प्रलय के पीछे परमात्मा द्वारा सब पदार्थों और नियमों का उत्पन्न करना और प्रलय के समय में लय कर देना है, जैसे

सूर्य पृथिवी के सम्मुख होने से दिखाई देता है और पृथिवी की आड़ में होने से अदृश्य हो जाता है। अथर्ववेद काण्ड १६।५४।१॥

समय के कारण वायु, पृथिवी, आकाशादि के परमाणु संयोग जाकर साकार हो कर संसार का उपकार करते हैं ॥२॥

समय के उपयोग से विद्वान् लोग सत् कर्म करके सद्गति पाते हैं और काल में ही संसार के सब पदार्थ ठहरे हैं ॥३॥

काल के सादर निरन्तर सेवन से मनुष्य ज्ञानी, ऋषि होकर और सब व्यवहारों और समाजों में प्रतिष्ठा पाकर परमगति प्राप्त कर आनन्द भोगते हैं ॥४॥

नित्य वर्तमान काल पिता के समान पहले और पुत्र के समान पीछे भी विद्यमान रहते हैं। काल के ही प्रभाव से सब आगे-पीछे की सृष्टि और वेदों का प्रादुर्भाव होता है ॥५॥

तथा ऋग्वेद में भी काल का विभागरूप से वर्णन मिलता है जैसे **"अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी"**। स्रष्टा ने ब्रह्म अहोरात्रि बनाये तथा उनके विभाग रूप में लघु काल के अहोरात्रि और बृहत् काल के अवयव ब्रह्म अहोरात्रि भी बनाये।

"बृहत् काल जैसे "रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्" इस प्रकार से अथर्ववेद १८।१।१०॥ में वर्णन आता है।

भुक्त-भोग्य-काल

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में व ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में जो संवत् लिखा है, वह केवल भुक्त भोग्य काल ही है।

"एकस्मिन् ब्रह्मदिने १४ चतुर्दश भुक्तभोगा भवन्ति। एकसहस्र १००० चतुर्युगानि ब्रह्मदिनस्य परिमाणं भवति। ब्राह्म्या रात्रेरपि तावदेव परिमाणं विज्ञेयम्। सृष्टेर्वर्त्तमानस्य दिनसंज्ञास्ति, प्रलयस्य च रात्रिसंज्ञेति। अस्मिन् ब्रह्मदिने षण् मनवस्तु व्यतीताः, सप्तमस्य वैवस्वतस्य वर्त्तमानस्य मनोरष्टाविंशतितमोऽयं कलिर्वर्त्तते। तत्रास्य वर्त्तमानस्य कलियुगस्यैतावन्ति ४६७६ चत्वारि सहस्राणि, नवशतानि, षट्सप्ततिश्च वर्षाणि तु गतानि, सप्तसप्ततितमोऽयं संवत्सरो वर्त्तते।

यमार्या विक्रमस्यैकोनविंशतिशतं त्रयस्त्रिंशत्तमोत्तरं (१९३३) संवत्सरं वदन्ति।"

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्तिविषयः)

सृष्टि संवत् भुक्तकाल	१,९६,०८,५२,९७६ वर्ष है
सृष्टि का भोग्यकाल	२,३३,३२,२७,०२४ वर्ष है
१४ मनु=९९४=	४,२९,४०,८०,००० वर्ष है
६ चतुर्युगी	२,५९,२०,०००
१ ब्रह्मदिवस में १००० चतुर्युगी हैं	४३२,००,००,०००

६ चतुर्युगी भुक्त भोग्यकाल नहीं है, क्योंकि मानव व वेद १५ सन्धिकाल जलप्लावन में नहीं रहते, अतः गणना में इनको छोड़ दिया गया है।

जो लोग क्षणमात्र में, ६ दिन में या ६ चतुयुगी में सृष्टि का बनना या बिगड़ना मानते हैं, वे लाल बुझक्कड़ हैं। जैसे ६ अन्धे हाथी के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानते, हाथी के स्वरूप का भिन्न-भिन्न वर्णन करते हैं। नेत्रवाला ही हाथी के स्वरूप को ठीक प्रकार से देखता है और समझता है।

वैदिक सत्य ग्रन्थों के विना सृष्टि की तीनों अवस्थाएँ नहीं जानी जा सकतीं, यह बड़ा परोक्षविज्ञान है। किसी विषय या सिद्धान्त को समझने के लिये पांच प्रकार की परीक्षा या पञ्चीकरण सिद्धान्त को अपनाना चाहिये, तब सत्य-सत्य निर्णय होता है।

धन्य वे पुरुष हैं कि जो सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं। जान कर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं। इससे जो कोई कारण के विना सृष्टि मानता है, वह कुछ नहीं जानता।

(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ८)

कृतज्ञता तथा आभार-प्रदर्शन

परम पुरुष सृष्टिकर्ता का महान् उपकार है कि विद्या में रुचि और प्रेरणा देकर उसने मुझे पवित्र कार्य में लगा दिया।

जो भूतकाल और भविष्यत् काल का सृष्टि का इतिहास सर्वदा वर्तमान में सुरक्षित रखता है, जो केवल सुखस्वरूप मात्र है, उस महान् सर्वेश्वर ब्रह्म के लिये शतशः नमन है।

श्रद्धेया पूज्या माता कौशल्या बाई पूज्य पिता सीताराम जी के भी मुझ पर उपकार हैं, जिन्होंने मुझे जन्म दिया, पालन पोषण तथा अध्ययन करा दिया, मैं उन के ऋण से उऋण नहीं हो पाया। श्रद्धेय पूज्यपाद गुरुजनों की कृपा से सत्यविद्याओं का अध्ययन हो पाया, इन्होंने अपना अन्तेवासी बनाकर अनेक वर्षों से विविधप्रकार के सिद्धान्तों का सामान्य विशेष विज्ञान हृदयङ्गम कराया। स्वनामधन्य पूज्यपाद पं० लक्ष्मी शंकर वेदों के प्रकाण्ड व्याख्याता हैदराबाद, पूज्य पं० गणपति राव जी शर्मा, श्रद्धेय पूज्यपाद पद्मश्री ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु, पूज्यपाद पद्मश्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक महामहोपाध्याय हरियाणा, श्रद्धेय पूज्यपाद श्री १०८ वैद्यराज पं० सत्यदेव जी वसिष्ठ भिवानी हरियाणा, आदरणीय पूज्य पं० विजयपाल जी विद्यावारिधि आचार्य पाणिनिमहाविद्यालय बहालगढ़ सोनीपत –ये सभी ४० वर्षों से समय २ पर सभी विषयों पर अध्ययन विचार विमर्श कराते रहे, गत २० वर्षों से प्रतिवर्ष प्रभूत सृष्टि-विज्ञान वैदिक वाङ्मय से प्राप्त कराते रहे, मार्गदर्शन देते रहे। अतः इन सब का पुरस्सर श्रद्धा भक्ति से नमन ही कर सकता हूं।

स्वर्गीय पं० भगवद्दत्तजी महोदय दिल्ली के रचित ग्रन्थों (वेद-विद्यानिदर्शन, भारत वर्ष का इतिहास, निरुक्तभाष्य, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भारतीय संस्कृति का इतिहास) से महती सहायता मिली। स्वामी ब्रह्ममुनि जी सरस्वती के ग्रन्थों (वैदिक ज्योतिष शास्त्र, निरुक्त) से बहुत सहयोग मिला, प्रत्यक्ष भी विचार किया। इन के प्रिय शिष्य पं० दीनदयाल सोनी के प्रवचन से वेद मे महान् विज्ञान के दर्शन हुए। पूज्य वैद्य गुरुदत्तजी एम० एस० सी० की अनेकों पुस्तकों से बहुत लाभ हुआ। प्रत्यक्ष अनेक बार सत्संग हुआ। उन्होंने मेरा उत्साह खूब बढाया, लिखने की प्रेरणा देते रहे, पूज्यपाद प० उदयवीर जी शास्त्री के सत्संग

से प्रेरणा मिली। वेदगोष्ठी में मेरे सृष्टिविज्ञान के चित्रों को देखकर उन्होंने यह आदेश दिया कि जितनी जल्दी हो सके लेख रूप में तैयार करो। इस विषय में पूज्य पंडितजी के पास रहो और लिखो।

भारतवर्ष के अनेकों विद्वानों के चरणों में समय २ पर मैं गया और विचार किया।

वेद, उपनिषद् आर्ष ग्रन्थों का ४० वर्षों से समय २ पर मैं स्वाध्याय करता रहता था। मेरी बहुत कम योग्यता थी और है। प्रभुकृपा से रुचि लगन प्रयत्न पुरुषार्थ करता रहा, वेदप्रचार का कार्य १९५१ से ही करता था। १९७० से तो सृष्टिविज्ञान को प्राप्त करने के लिये प्रचारार्थ पागल के समान सारे देश में घूमता रहा। तन, मन, धन था ही, बस २,३ वर्षों में इदम् इत्थमेव ही कहने लगा।

इन सृष्टि विद्या के रहस्यों को पूज्य पंडितजी तथा पू० पं० सत्यदेव जी खूब समझाते रहे। ऐसे २ रहस्य कहे और समझाये कि संसार के पुस्तकालय में नहीं हो सकते। जैसे पृथिवी के गर्भ में मानवादि प्राणी कितनी २ गहराई पर बने, क्या वातानुकूल परिस्थितियां थीं, इत्यादि।

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्याद् ब्राह्मणं महत्॥
(अथर्व० १०।८।३७)

यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं० (अथर्व० ९।६।१)

जो सूत्र के सूत्र रहस्य को जानता है, जिस में सभी प्रकार की प्रजा ओत प्रोत है, जो सूत्र रहस्य से रहस्यों को जानता है, वह बड़े भारी ज्ञान-विज्ञान को समझ जाता है।

मैं वेद और वेदज्ञों के चरणों में उपस्थित होता था व सभी प्रकार के ब्रह्म पुरुषोत्तम, प्रकृति, जीव के सभी रहस्यों को प्रत्यक्ष करा दिया, यह गुरुजनों का महान् उपकार है।

वेदप्रचार तथा मौखिक सृष्टिविद्या प्रचार करने से सामान्य तथा विज्ञ जनता को सन्तोष नहीं होता, अतः चित्र बनाने की सूझी, श्री बन्धु डाक्टर अनन्तशयनम् हैदराबाद ने ३०-३५ चित्र बनाये, मैं सामान्य रेखा-चित्र बना देता था। आगे प्रगति रुक गयी, बस, पाणिनि महा विद्यालय

वहालगढ़, (हरियाणा) में चक्र लगने लगे, फिर विद्या-विज्ञान का मार्ग खुल गया। शतशः चित्र श्री प्रिय भास्कारराव पाठक, श्री प्रिय मास्टर पुरन्दरजी, श्रीमान् मास्टर गुण्डेरावजी विदरकर महोदय (ये सभी हैदरावाद निवासी) ने वेद-प्रमाण लिखे तथा चित्र वनाये। ये सव महानुभाव वड़ी श्रद्धा और लगन से वर्षों इस पवित्र कार्य में मेरी मदद करते रहे।

सङ्कटकाल में आर्यसमाज किशन गंज (हैदरावाद) में ४, ५ वर्ष निश्चिन्त रहकर मैं यह कार्य करता रहा। श्री माननीय श्रद्धेय पं० मोहनलालजी उपाध्याय, श्रीमान् सत्यनारायणजी उपाध्याय, श्री पद्म भाई जी – इन सभी महानुभावों का मैं कृतज्ञ हूं।

ब्र० सन्तोष कुमार जी कण्व ने वरेली से हैदरावाद आकर मेरे विचारों को लेखवद्ध किया। गत ८ वर्षों से लघु-लघु लेख सौ० सुमङ्गली वी. एससी. (मेरी धर्मपत्नी) भी लिखती रही। तथा पं० शङ्कर देवजी वेदालङ्कार एम० ए०, एम० पी० भी दिल्ली में ठहरने तथा लेखादि में सहयोग देते रहे। ये सव भगवत् कृपा से सिद्धियां प्राप्त हुई हैं--

यस्मादृते न सिध्यति (ऋ० १।१८।७)

दैवयोग से पूज्यपाद गुरु जी (पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु) की जन्म शताव्दी पर यह भी गुरुकृपा से हुआ कि मेरा विरजानन्दाश्रम पाणिनि महाविद्यालय, वहालगढ़, सोनीपत आना हुआ। प्रियवर पं० चन्द्रदत्त जी शास्त्री ने लेखन, प्रूफ-संशोधन व छपाई की उत्तम व्यवस्था करके एक सप्ताह में ही यह सारा कार्य शीघ्र करा दिया, मैं इनका वड़ा आभारी हूं। आश्रम के छात्र वर्षों से लेखनादि में मेरी सहायता करते रहे हैं, अतः सभी को साधुवाद व आशीर्वाद देता हूं। प्रभु सब की सदबुद्धि सर्वदा वनाये रखे।

॥ धियो यो नः प्रचोदयात्। ओ३म् शंम् ॥

वेद-विद्वानों का सेवक—
व्रतपाल सिद्धान्तशास्त्री
~~१३/६, २६७/१३, पो० कुलसुमपुरा (कुमारवाड़ी) ५००२६७~~
हैदरावाद (आन्ध्रप्रदेश)
१५-११-१९९२

ओ३म्

अनंतकोटिब्रह्माण्डनायकाय नमः[1]

अनन्त प्रकार के ब्रह्माण्डों के संचालक नेता के लिए नमस्ते

एक-एक ब्रह्माण्ड एक-एक सूर्य[2] एक-एक पृथ्वी चन्द्रादि अनेक ग्रह-उपग्रहों से संयुक्त होता है। सूर्य स्वयं प्रकाशित महान् ज्योतिः स्वरूप होता है। अन्य ग्रह उपग्रह-परतः प्रकाशित होते हैं। इन सभी का आकार, प्रकार, भार, रूप, रंग आकृति, दूरी, आकर्षण, पृथक्-पृथक् होने पर भी सभी ग्रह-उपग्रह विविध छन्दों[3] में गतिमान् हैं। छन्द (रश्मियों के चक्र) विविध कलाओं[4] से युक्त हैं। नाना प्रकार के दिव्य शक्तियों को देने वाले देव[5] स्वरूप हैं। ब्रह्माण्ड में बसनेवाले अनन्त जीवों के लिए ऊर्जा, प्रकाश, श्रेष्ठतम अमृतत्वरूपी आहार फलादि निरन्तर देते रहते हैं। एक-एक ब्रह्माण्ड करोड़ो-अरबों योजनों में फैला हुआ है। हम अपने अल्पशक्तिशाली नेत्रों से विशेष शक्तिशाली दूरवीक्षण यन्त्रों से सूर्य चन्द्र, राशियां, कार्तिक[6] नक्षत्र[7], पुच्छल तारे, धूमकेतु[8] तारे, विहारिकाएं और पृथ्वी आदि ग्रहों के उदयास्त ग्रहण आदि अनन्त ब्रह्माण्ड के एक लघु अंश मात्र को ही देख सकते हैं।

---

१. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः (यजु० १६।१)।

२. यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः। न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या० (अथर्व० २०।८१।१)।

३. पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्ष छन्दो द्यौश्छन्दः० (यजु० १४।१९)।

४. प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोडशी (यजु० ८।३६)।

५. अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता० (यजु० १४।२०)।

६. यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे (अथर्व० १९।८।१), अष्टाविंशानि, शिवानि (अथर्व० १९।८।२)।

७. नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः० (अथर्व० १९।९।९)।

८. शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं० (अथर्व० १९।९।१०)।

अनन्त ब्रह्माण्ड[1] के फैलाव का कोई अनुमान ही नहीं लगा सकता। महान् ब्रह्माण्डों के बनाने वाले विश्वकर्मा[2] और सबके स्थितिकाल को निश्चित करने वाला अनन्त ब्रह्माण्डों का संचालक, पालक, पोषक, रक्षक, विनाश करने वाला महान् अद्वितीय कलाकार, सर्वनियन्ता, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सबका अध्यक्ष[3] कर्मफल-प्रदाता न्यायाधीश के लिऐ, हमारा पुरःसर श्रद्धा-शक्ति से नमस्ते, अभिवादन व प्रणाम।

---

१. तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत् सम्भूय भवत्येवमेव।
अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते॥
(अथर्व० १०।८।११,१२)

२. सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः (यजु० १।४)।

३. इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥
(ऋग्० १०।१२९।७)

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

प्राचीन ऋषि मुनियों ने वेदाध्ययन और मन्त्रों के साक्षात्कार से समाधिस्थ होकर वेद के ज्ञान और ब्रह्माण्ड के विस्तृत ज्ञान को समझा। मन्त्रों के गम्भीर भाव को अपने लघुसूत्र में दर्शाया है—"यद् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे"। जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है। पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड में साम्य है। कहीं-कहीं वैषम्य भी है। ब्रह्माण्ड अनन्त प्रकार के हैं। पिण्ड भी अनेक असंख्य प्रकार के हैं।

अल्पज्ञ जीव के लिए अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड को अपनी अल्प बुद्धि से समझना ऐसा ही दुःसाहस है, जैसा वर्षा की बूंदों को पकड़ कर आकाश में चढ़ने की कल्पना करना। अतः योगियों ने एक सूत्र वनाया, जो ऊपर लिखा है। पिण्ड को समझने से ब्रह्माण्ड को तथा ब्रह्माण्ड को समझने से पिण्ड को समझा जा सकता है। जहां जैसी सुविधा हो। समझने में यदि असुविधा हो तो सृष्टिकर्ता का वेद, जो सृष्टि का निर्देशक काव्य है, उसको देखा जा सकता है। यजुर्वेद अध्याय ७ मन्त्र ५ में निर्देश है—

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥

भावार्थ हे जीव! तेरे अन्दर द्यावा, पृथिवी और अन्तरिक्ष को रखता हूं। ज्ञानेन्द्रियाँ ऊपर हैं। कर्मेन्द्रियाँ नीचे हैं। ज्ञानपूर्वक कर्म करके आनन्द में रहो।

इसी भाव की आचार्य महर्षि पतंजलि ने चरक संहिता में मूलरूप से व्याख्या की है—पुरुषोऽयं लोकसम्मित इत्युवाच भगवान् पुनर्वसुरात्रेयः यावन्तो हि लोके मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके। पुरुष लोक (जगत्) के तुल्य है। यह भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने कहा। अर्थात् पुरुष इन महान् लोकों का एक छोटा प्रतिरूप है, जितने भी इस लोक में मूर्तिमान् भाव हैं, उतने ही पुरुष में हैं और जितने पुरुष में हैं, उतने ही इस लोक में हैं।

अथर्ववेद काण्ड दसवां, सूक्त आठ, मन्त्र सैंतीस –

यो वि॒द्यात् सूत्रं॒ वित॑तं॒ यस्मि॒न्नोता॑: प्र॒जा इ॒माः ।
सूत्रं॒ सूत्र॑स्य॒ यो वि॒द्यात् स वि॑द्या॒द् ब्राह्म॑णं म॒हत् ॥

भावार्थ –जो सृष्टि के अनादि कारण जीव, ब्रह्म, प्रकृति आदि की प्रजा सृष्टि में ओत-प्रोत है, इस सूत्र के रहस्य को जो जानता है, वह बहुत बड़े ज्ञान-विज्ञान को सरलता से प्राप्त कर लेता है। जैसे विशाल भूमि का ज्ञान छात्रों को सुबोध कराने के लिए पूर्व आचार्यों ने ग्लोब, भूमि का मानचित्र (नक्शा) भूगोल पुस्तक की रचना की है, जिससे छात्र सरलता से विशाल भूमि का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार ऋषियों ने पिण्ड का ज्ञान करा कर ब्रह्माण्ड का ज्ञान कराया है।

वेद स्रष्टा परमेश्वर को विविध नामों से पुकारता है। 'हिरण्यगर्भ' भी वेद द्वारा प्रदत्त सृष्टि का प्यारा नाम है। यह स्रष्टा ऐश्वर्ययुक्त है, वैभवयुक्त है। ब्रह्माण्ड का निर्माण भी हिरण्यगर्भ में होता है। सुनहरे चमकीले गर्भ में इस पृथिवी पर मनुष्यसृष्टि है। अतः पृथिवी मनुष्य का आधार है। मनुष्य ही नहीं, प्रत्युत प्राणिमात्र का आधार है। पृथिवी का आधार सूर्य, सूर्य का आधार ब्रह्माण्ड है, ब्रह्माण्ड का आधार सृष्टि का स्रष्टा ब्रह्म है। इस प्रकार ब्रह्म सर्वाधार (सब का आधार) है। जिस प्रकार पुष्पमाला के समस्त पुष्प धागे के आधार पर टिके होते हैं, उसी प्रकार असंख्य ब्रह्माण्ड परमेश्वर के आधार पर टिके हैं। यह महा चैतन्य शक्ति ही तो इन असंख्य ब्रह्माण्डों को चक्राकार गति में घुमा रही है।

जिस प्रकार शरीर के अंग उपांग (अवयव) स्नायुमण्डल से बंधे हुए हैं, उसी प्रकार यह पिण्ड (शरीर) अर्थात् व्यक्ति भी समाज अर्थात् सामाजिक नियमों में बंधा हुआ है। समाज राष्ट्रिय नियमों पर आश्रित है और राष्ट्र सार्वभौम नियमों में नियन्त्रित है। तात्पर्य यह है कि सर्वत्र एक सम्बन्धसूत्र है, यह सृष्टि का वैचित्र्य है।

जिस प्रकार प्राणियों में नर-नारी का जोड़ा होता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में द्यावा-पृथिवी का जोड़ा है—द्युलोक और पृथिवी लोक। द्युलाक 'नर' है तो पृथिवी लोक 'नारी' है। द्युलोक जब ऊपर से रश्मियों के माध्यम से सोम-रस (वीर्य) का विसर्जन करता है, तो

पृथिवी उसे अपने गर्भ में धारण कर गर्भवती होती है। प्रसव-काल आने पर क्रमशः उद्‌भिज, अण्डज और जरायुज सृष्टि करती है। ठीक वैसे ही जैसे विभिन्न प्राणियों के नर-नारी जोड़े इस वसुधा पर जीव-सृष्टि करते हैं। यह एक अद्‌भुत साम्य है।

पिण्ड (शरीर) में भी द्युलोक है। यह शरीर का "सिर" है। वक्ष-स्थल अन्तरिक्षलोक और नाभिप्रदेश शरीर का पृथिवीलोक है। जिस प्रकार नेत्रों में ज्योति है, उसी प्रकार सूर्य भी ज्योतिःस्वरूप होकर चमक रहा है। ऐसे ही अन्तरिक्ष में चल रहा है। जिस प्रकार पृथिवी पर नदियों में जल का प्रवाह होता है, उसी प्रकार शरीर के नाभिप्रदेश में मूत्रादि का प्रवाह होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्मांण्ड एक लघु पिण्ड (शरीर) में प्रतिबिम्बित होता रहता है।

ब्रह्माण्ड	पिण्ड
द्युलोक	शिरोभाग (सिर)
अन्तरिक्ष लोक	वक्ष स्थल
पृथिवी लोक	नाभि प्रदेश

स्रष्टा ने हमारे शरीर में जिस प्रकार के अङ्ग वनाए हैं, उसी के अनुरूप जगत् में ओषधि, वनस्पति, कन्द मूल आदि वनाए हैं। हमारे गोल सिर के ऊपर वाल हैं, तो गोल नारियल के ऊपर जटाओं के रूप में वाल हैं। सिर में स्थित मस्तिष्क की रचना तो विलकुल अखरोट के आकार रङ्ग के समान है। साम्यता का निष्कर्ष देखिये – अखरोट की गिरी मस्तिष्क को वल देती है। अखरोट के मध्य में एक गुहा है, ब्रह्म-रन्ध्र में ब्रह्म गुहा है। मगज रूप रङ्ग वाला भी होता है। नारियल का काम सिर को ठण्डा रखना होता है, उसी से खोपड़े (सिर) में खोपड़े (नारियल) का तेल लगाते हैं। सिर की खोपड़ी और नारियल में इतनी साम्यता थी कि हम नारियल को व्यवहार में खोपड़ा ही कहने लगे।

नारियल के ऊर्ध्व भाग में तीन छिद्र हैं। ये उसके तीन नेत्र हैं। दो नेत्रोंवाला प्राणी नारियल का सेवन करे तो उसका तीसरा नेत्र (बुद्धि) भी खुल जाता है। यह नारियल, अखरोट का उपयोग मस्तिष्क को शक्ति देता है, बुद्धि को विकसित करता है। नेत्र के अनुरूप बादाम

लीची है। बादाम के सेवन से नेत्र को ज्योति और बल मिलता है। नेत्र और सूर्य का तो सीधा सम्बन्ध है। प्रातःकाल सूर्योदय के समय नेत्रों को थोड़ी देर के लिए सूर्य की ओर करने से नेत्र ज्योति बढ़ती है। हमारी नासिका तो बिलकुल काजू के अनुरूप है। दातों को देखने से ऐसा लगता है, मानो किसी ने अनार के दाने निकाल कर हमारे मुँह में लगा दिए हों। काशीफल या पेठा, पपीता तो मानो पेट की नकल कर रहा हो। पेठा पेट की शक्ति को बढ़ाता है। क्या विचित्रता है ! पेठा ने पेट को अपना आकार तो दिया ही, साथ में शक्ति भी दी।

नारियों के विविध प्रकार के स्तन हैं, तदनुसार विविध प्रकार के आम हैं। नारी के स्तन तो पके आम की तरह हैं, जिसको चूस कर शिशु अपना पेट भरता है। आम चूसना बिलकुल वैसा ही है, जैसा शिशु का मां का स्तन चूसना। केला तो साक्षात् नरलिङ्ग की भाँति ऊपर से कठोर और भीतर से कोमल हैं। स्मरण रहे कि केला वीर्यवर्द्धक है और चिलगोजा भी वीर्यकण के आकृति वाला है, और पौरुषशक्ति का वर्धक होता है—

जिस प्रकार हमारे शरीर में भोजन का अन्तिम अंश वीर्य है, उसी प्रकार गाय-भैंस के दूध का अन्तिम अंश "घृत" हैं। घृत पौष्टिक हैं। वीर्य भी पुष्ट सन्तान को जन्म देता है। घृत वीर्यवर्द्धक भी है।

शरीर के अस्थिपंजर को देखने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि गन्ने के टुकड़ों को एक के ऊपर एक रखकर ही उसे खड़ा किया गया हो। न केवल हड्डियाँ गन्ने की तरह हैं, प्रत्युत उसकी गांठें बिलकुल हमारी हड्डियों के जोड़ों से समानता रखती हैं। गन्ने का रस और उससे बने पदार्थ गुड़, शक्कर आदि हड्डियों को मजबूत करते हैं। अस्थिपंजर और गन्ने में यह अद्‌भुत साम्यता है ही, स्रष्टा ने हमें एक सन्देश भी दिया है। मनुष्य को अपना स्वभाव भी गन्ने के समान मधुर बनाना चाहिए। ऊपर से कठोरता और दृढ़ता भी हो, परन्तु हृदय कोमल और मधुर हो। यह है सृष्टिविद्या को समझने का महत्त्व और आनन्द।

जैसे आम और पनस में रेशों का जाल फैला हुआ है, वैसे ही हमारे शरीर में स्नायुओं का जाल है। फलों के रेशे, वृक्ष से रस लेकर उसे पूरे फल में जिस प्रकार पहुंचा देते हैं, उसी प्रकार हमारे शरीर की नस-नाड़ियाँ (स्नायु तन्त्र) रक्त को शरीर में सर्वत्र पहुंचाती हैं। आम और

पन्नस रक्तवर्द्धक भी हैं।

हमारे शरीर में मांस बिलकुल वैसे ही है, जैसे चुकन्दर, आलू, केला, कद्दू और चीकू का गूदा। जिस प्रकार त्वचा हमारे शरीर की रक्षा करती है, उसी प्रकार वृक्षों की छाल तथा फलों का छिलका उनकी रक्षा करता है। पत्तेवाली सब्जियाँ बिलकुल चमड़े के समान हैं। ये चर्म-रोगों के निवारण में सहायक सिद्ध होती हैं। हाथ, पैरों की अंगुलियाँ तो बस मूँगफली की तरह हैं। भिण्डी तो इतनी कोमल और आकर्षक है कि अंग्रेजी में इसे "लेडीज् फिङ्गर" ही नाम दे दिया गया है।

कान तो परमात्मा की अद्भुत सृष्टि है। सूचीवेधशास्त्रियों (एक्यू-पंचर चिकित्सकों) ने अपना सम्पूर्ण शास्त्र ही कान पर खड़ा किया है। केवल कर्णेन्द्रिय के नाड़ीसंस्थान का अध्ययन कर वे सम्पूर्ण शरीर के रोगों का निदान करते हैं। उनके अनुसार कान में पूरा शरीर ही छिपा हुआ है। शरीर के प्रत्येक भाग का स्नायु बिन्दु कान में विद्यमान है। सम्बद्ध स्नायु बिन्दु को सूई से चुभो कर शरीर के किसी भी रोग का उपचार किया जा सकता है, ऐसा सूचीवेधशास्त्रियों का सिद्धान्त है।

कान को ध्यान से देखें तो लगता है कि यह गर्भस्थ शिशु का ही रूप है। सिर के नीचे और पैर के ऊपर नीचे गोल और मुलायम भाग जो लटक रहा है, वह मस्तिष्क ही तो है। इस में मस्तिष्क के समस्त स्नायु बिन्दु विद्यमान हैं। कान के मध्यभाग में पेट के बिन्दु और ऊपरी भाग हैं। ये कोई मनघड़न्त कल्पना नहीं, चिकित्साशास्त्र के विशेषज्ञों का ठोस निष्कर्ष है। कानों को छेद कर कुण्डल पहनने की बहुत प्राचीन परम्परा है। हमारे यहां तो 'कर्णवेध' वैदिक संस्कार ही होता है। कर्णछेदन अनेक रोगों की सम्भावनाओं को नष्ट करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) ने ब्रह्माण्ड की रचना की। उसके अन्तर्गत सौर मण्डल की रचना की। सौर मण्डल का ही एक अंश पृथ्वी है। पृथिवी पर चेतन-सृष्टि की। मनुष्यशरीर के अनुरूप ही कन्द-मूल-फल-वनस्पति आदि पदार्थ सृष्टि पर उत्पन्न किए। यह अद्भुत साम्य संक्षेप में निम्न चित्रतालिका से स्पष्ट है—

ब्रह्माण्ड	पिण्ड	कन्द-मूल-फल
द्युलोक	सिर	नारियल
(सूर्य)	मस्तिष्क	अखरोट

	पिण्ड	कन्द-मूल-फल
	नेत्र	बादाम-लीची
	मुख	अनार-सीताफल
	दाँत	अनार के दाने मोती
	कण्ठ	करेला
अन्तरिक्ष लोक (वायु)	हृदय	सेव-समुद्री पदार्थ (मोती)
	स्तन	आम-मौसमी
	यकृत्	मूली-गाजर
	फेफड़े	तरबूज-अंगूर
	फुफ्फुस	तरबूज-अंगूर

नोट:—ब्रह्माण्ड की अनुकृति पिण्ड में और पिण्ड की अनुकृति वीर्यकण में है। प्रत्येक बड़ी वस्तु की सूक्ष्म आकृति सर्वत्र उपलब्ध रहती है।

पृथिवी लोक	पेट	पेठा-पपीता
	आँत	करेला-चिचेण्डा
	लिङ्ग	केला
	वीर्यकण	चिलगोजा-दूध-घृत-मक्खन-चावल
	योनि	गेहूं-जौ-मक्का
	रज	मूंग-मसूर-उड़द
	अण्डकोष	अंजीर-बैंगन-टमाटर-खजूर
	माँस	गूदा वाले पदार्थ (आलू, कन्द, चुकंदर)
	रक्त	रस वाले पदार्थ (नींबू, संतरा, अंगूर)
	अस्थि	गन्ना, गन्ने का रस, गुड़, शक्कर
	त्वचा	पत्ते वाली सब्जी-वनस्पति-पालक, कुलफी, पत्ता गोभी
	मूंछ-केश	केसर
	अंगुलियां	मूंगफली, सुहाजना फली

उपर्युक्त पदार्थ अंग विशेष को लाभ देने के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर

को बल प्रदान करते हैं। आयुर्वेद के ग्रन्थों — चरक-सुश्रुत आदि से विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

वेद में अलंकाररूप से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। स्रष्टा की अनेक प्रकार की शक्तियों से ब्रह्माण्ड में क्या-क्या पदार्थ बनते हैं, उनका वर्णन यजुर्वेद के पुरुषसूक्त (अध्याय ३१) में मिलता है—

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥

अर्थात् स्रष्टा की मानस शक्ति से ब्रह्माण्ड में चन्द्र, चक्षु से सूर्य, श्रोत्र से वायु-प्राण, मुख से अग्नि, नाभि से अन्तरिक्ष, शीर्ष से द्यौः, पाद से भूमि, श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न हुए।

स्रष्टा की शक्ति	ब्रह्माण्ड में निर्मित वस्तु
मनस्	चन्द्रमा
चक्षुः	सूर्य
श्रोत्र	वायु-प्राण
मुख	अग्नि
नाभि	अन्तरिक्ष
शीर्षः	द्यौः
पाद	भूमि
श्रोत्र	दिशा

पिण्ड (शरीर) ब्रह्माण्ड की लघुरूप आकृति है। इसका वर्णन यजुर्वेद में किया गया है।

अब तक हमने सृष्टि में विद्यमान सामञ्जस्य को देखा। भोक्ता, भोग्य तथा भोजयिता में एक अद्भुत तारतम्य का दर्शन किया। अब हम संक्षेप में पिण्ड और ब्रह्माण्ड की साम्यता का अध्ययन करेंगे—

पिण्ड	ब्रह्माण्ड
१. जन्म, जीवन व मृत्यु है।	१. उत्पत्ति, स्थिति व प्रलय है।

पिण्ड	ब्रह्माण्ड
२. पिण्ड का जन्म सोद्देश्य है, सकारण है, यज्ञरूप है।	२. ब्रह्माण्ड की सृष्टि सोद्देश्य है, सकारण है, यज्ञरूप है।
३. पिण्ड में नर-नारी का जोड़ा है, सन्तानोत्पत्ति है।	३. ब्रह्माण्ड में प्रकृति व पुरुष का जोड़ा है। द्यावा पृथ्वी का जोड़ा मिथुन है। प्रजनन की प्रक्रिया चालू है।
४. पिण्ड देश-काल में है।	४. ब्रह्माण्ड देश-काल की सीमा में है।
५. पिण्ड में शरीर और आत्मा है। पिण्ड में जीव का आवागमन होता रहता है।	५. ब्रह्माण्ड में प्रकृति और परम पुरुष परमात्मा है। ब्रह्माण्ड में अनन्त जीवों का आवागमन होता रहता है।
६. नर-नारी दो शरीरों में दो जीवों का सन्निधान है।	६. ब्रह्माण्ड में द्यावा तथा पृथ्वी के निकट परम पुरुष का सन्निधान है।
७. पुरुष में नारी के सामीप्य से काम की उत्पत्ति होती है। सन्तान की उत्पत्ति करना पुरुष का स्वभाव है।	७. परम पुरुष में प्रकृति के सान्निध्य से ईक्षण की उत्पत्ति होती है। और ईक्षण से ही जड़ प्रकृति में गति प्रगति होती है।
८. कामेच्छा से पिण्ड में क्षोभ उत्पन्न होता है।	८. परमपुरुष के ईक्षण से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है।
९. रात्रि के अन्धकार में काम से क्षोभ उत्पन्न होता है।	९. ब्रह्माण्ड में भी ब्रह्म रात्रि के गूढ़तम अन्धकार में स्रष्टा के ईक्षण से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है।
१०. सृष्टिरचना को समझनेवाले पति-पत्नी अर्द्धरात्रि में ही (मैथुन) गर्भाधान करते हैं।	१०. हिरण्यगर्भ में मध्यरात्रि में ही गूढतम अन्धकार में सृष्टिकर्त्ता के सन्निधान से

पिण्ड	ब्रह्माण्ड
	से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है।
११. नारी के गर्भाशय तथा योनि में अन्धकार होता है।	११. प्रकृति के गुणों (सत्त्व-रज-तम) की साम्यावस्था में भी अन्धकार होता है। हिरण्य-गर्भ में भी जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति होती है, वहाँ तम रहता है।
१२. शरीर में काम के वशीभूत नसों में रक्त का क्रमशः तीव्र प्रवाह, क्षोभ, उत्तेजना, हर्ष, मैथुन, वीर्य विसर्जन, रज-वीर्य मिलन, गर्भाधान गर्भाशय, तत्पश्चात् गर्भवती में अन्तस्ताप तथा जीव के सन्निधान से आहारादि के कारण रस-रक्त-माँस-मज्जा अस्थि-रज-वीर्य का निर्माण होता है। पिण्ड का निर्माण होता है, गर्भ में सलिल रूप आप रूप वीर्य से पिण्ड बनता है।	१२. हिरण्यगर्भ में भी जहाँ-जहाँ साम्यावस्था होती है, वहाँ-वहाँ ईश्वर के सान्निध्य से मूल प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है। इस क्षोभ के कारण प्रकृति में विकृति आकर उससे ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण सामग्री का निर्माण होता है। अग्नि रूप स्रष्टा के अन्तस्ताप से हिरण्यगर्भ में महदण्ड बनता है। महान् अण्डाकार में सूर्यादि ग्रह-उपग्रह बनते हैं। हिरण्यगर्भ में प्रकृति विकृति आप रूप सलिल रूप २४ प्रकार के तत्त्वों से आकृतिवान् ब्रह्माण्ड बनता है।
१३. प्रकृति का सिद्धान्त है कि कोई भी रचना अन्धरूप में होती है और प्रकाश में उसकी वृद्धि होती है।	१३. सारी सृष्टि भी ब्रह्म रात्रि के अन्धरूप में होती है। उसके पश्चात् प्रकाश में वृद्धि को प्राप्त होती है।

पिण्ड	ब्रह्माण्ड
१४. जीव पिण्ड सृष्टि का निमित्त कारण है।	१४. ब्रह्म सृष्टि का निमित्त कारण है।
१५. नारी-गर्भ में रज तथा वीर्य का विशेष समय में संयोग होने पर ही तत्त्वों में बुदबुद बनते हैं। तत्पश्चात् पिण्ड बनता बढ़ता जाता है। उसके बाद ही शिशु का भ्रूण आदि क्रियाएँ चलती है।	१५. स्रष्टा के हिरण्यगर्भ में स्थित प्रकृति में जब विषमावस्था अर्थात् विकृति आ जाती है, तभी महदण्ड में बीजारोपण होता है। उसके पश्चात् ही भ्रमण क्रिया आदि प्रारम्भ हो जाती है।
१६. जीव और जठराग्नि के संयोग से आहारादि के द्वारा धातुओं की रचना तथा उनकी पुष्टि में लगभग २४ वर्ष लग जाते हैं।	१६. उपर्युक्त प्रक्रिया पूर्ण होकर २४ तत्त्वों के निर्माण में लगभग एक अरब बयालीस करोड़ वर्ष लग जाते हैं। (यह अनुमानतः कल्पना है।)
१७. गर्भ में शिशु के समस्त अङ्ग उपाङ्ग समकाल में बनते हैं।	१७. हिरण्यगर्भ में प्रकृति में विक्षोभ के पश्चात् जो महदण्ड उत्पन्न होता है, उसी में सौरमण्डल अपने समस्त ग्रहों उपग्रहों के साथ समकाल में बनता है।
१८. पिण्ड के परिपक्व तथा परिपूर्ण पुष्ट होने पर नवें मास में शिशु का जन्म होता है।	१८. महदण्ड की परिपक्वता हो जाने पर हिरण्यगर्भ में विस्फोट हो जाता है और सौरमण्डल की उत्पत्ति होती है, क्योंकि हिरण्यगर्भ असीम है।
१९. पिण्ड की उत्पत्ति हमेशा सिर से प्रारम्भ होती है।	१९. सौर मण्डल जब भी महदण्ड से उत्पन्न होता है, तो

पिण्ड	ब्रह्माण्ड
	सर्वप्रथम सूर्य ही पैदा होता है।
२०. शिशु के उत्पन्न होने के वाद वह मातृ-दुग्ध, आहार, वायु तथा प्रकाश में शनैः शनैः विकास को प्राप्त करता है।	२०. महदण्ड के विस्फोट से सौर-मण्डलशिक्या कृति में घूमता हुआ प्रकट होता है और प्रति मन्वन्तर लगभग एक करोड़ मील के घेराव में फैलता है।
२१. जन्म के समय शिशु गीला, कोमल तथा असमर्थ होता है।	२१. विस्फोट के वाद सौर मण्डल के ग्रह-उपग्रह भी आर्द्र पिलपिले तथा अस्थिर होते हैं।
२२. विकसित होते हुए पिण्ड के अंग उपांग दृढ़ व पुष्ट होते हैं।	२२. सौर मण्डल के ग्रह-उपग्रह भी विकसित होते हुए ठोस, दृढ़, स्थिर व नियमित गति में आते हैं।
२३. बाल, किशोर व युवावस्था की पूर्णता को प्राप्त होने पर्यन्त पिण्ड का विकास होता रहता है।	२३. सौर मण्डल भी ब्रह्म-दिवस के सात मन्वन्तर पूर्ण होने पर आठवें सन्धिकाल के मध्यभाग तक विकसित होता रहता है।
२४. पूर्णविकास प्रौढावस्था हो जाने पर पिण्ड का क्रमशः संकुचन होता है।	२५. आठवें सन्धिकाल के उत्तरार्द्ध में मन्वन्तर से चौदवें मन्वन्तर पर्यन्त ब्रह्माण्ड का संकुचन होता है
२५. शैशव अवस्था में शिशु के अंग उपांगों को पुष्ट हो कर पूर्ण विकसित हो पूर्णता को प्राप्त होने में	२५. सौर मण्डल में ग्रहों-उपग्रहों को पूर्ण विकसित होकर समर्थ होने तक लगभग ६७ करोड़ १२ लाख वर्ष लग

पिण्ड	ब्रह्माण्ड
लगभग पच्चीस वर्ष लग जाते हैं।	जाते हैं।
२६. नारी ऋतुकाल आने पर जीवन में अनेक वार ऋतुमती होती है और ऋतुस्नाता होती है तथा जीवन में वह लगभग १०-१२ वार प्रसूता होती है।	२६. सन्धिकाल आने पर पृथ्वी का जलप्लावन होता है। जलप्लावन के बाद पुनः भूमि पुष्ट होकर १४ बार सम्पूर्ण प्रजा और उत्पन्न करती है।
२७. पिण्ड का विकास जीवन के पूर्वार्द्ध में तथा ह्रास जीवन के उत्तरार्द्ध में होता है।	२७. ब्रह्माण्ड की परिधि का विस्तार भी ब्रह्मदिवस के पूर्वार्द्ध में तथा संकुचन ब्रह्मदिवस के उत्तरार्द्ध में होता है।
२८. पिण्ड का विनाश व अन्त्येष्टि होती है।	२८. ब्रह्माण्ड का प्रलय और कार्य का कारण में क्रमशः लय होता है।
२९. मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म होता है।	२९. प्रलय के पश्चात् पुनः सृष्टि होती है।

यहां पिण्ड और ब्रह्माण्ड में साम्यता का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। आशा है पाठकों को लाभ होगा।

सृष्टि-चक्र

"सृष्टि' की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय" आदिकाल से ही जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का विषय रहा है। पाश्चात्य और पौरस्त्य मनीषियों ने अपनी-अपनी पृष्ठभूमि में अपने-अपने ढङ्ग से सृष्टि के रहस्यों को खोलने और उसकी गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत निवन्ध में वैदिक दृष्टिकोण को संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

"सृष्टि"की तीन अवस्थाएँ होती हैं—"उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय"। 'अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः।'(सत्यार्थ० समु० ८)। इसी को "सृष्टि-चक्र"कहते हैं। इसका काल परिमाण ८ अरब ६४ करोड़ वर्ष अर्थात् दो सहस्र चतुर्युगी है—'सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि०' यजुर्वेद अध्याय १५, मन्त्र ६५। एक चतुर्युगी का वर्ष-मान ४३ लाख २० हजार वर्ष है।

सृष्टि-चक्र के दो प्रधान भाग हैं– ब्रह्मदिवस और ब्रह्मरात्रि। दोनों का पृथक्-पृथक् कालपरिमाण ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष है, अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष का एक 'ब्रह्मदिन' और ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष की एक 'ब्रह्मरात्रि' है।

ब्रह्मरात्रि और ब्रह्मदिन को भी हम दो-दो भागों में बांटते हैं। इस प्रकार एक सृष्टि-चक्र के चार सम विभाग हो जाते हैं। प्रत्येक का कालमान २१६ करोड़ वर्ष आता है। यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि ८६४ करोड़ वर्ष का जो सृष्टि-चक्र है, वह एक ब्रह्माण्ड अर्थात् एक सौरमण्डल का है। खगोल में अनेक ब्रह्माण्ड (सौरमण्डल) हैं। इसीलिए परमेश्वर को "अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक" कहा जाता है। इस अनन्त ब्रह्माण्ड का चक्र एक "परान्त काल" में पूर्ण होता है, यही जीव की मोक्ष-अवधि है। इसका कालमान ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष है। इस अवधि में एक ब्रह्माण्ड की ३६ हजार बार उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय

---

१. नित्यायाः सत्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसूक्ष्माणां पृथक्-पृथग्वर्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः, संयोगविशेषादवस्था-न्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते। (सत्यार्थप्रकाश, अष्टम समुल्लास)

होती है। (सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ६)।

ब्रह्म दिवस सृष्टि का 'स्थिति काल' है। इसमें १४ मन्वन्तर और १५ सन्धिकाल होते हैं।[1] प्रति मन्वन्तर एक सन्धिकाल की दर से १४ मन्वन्तरों के मध्य १३ सन्धिकाल तथा एक सन्धिकाल ब्रह्मदिवस के आदि में और एक सन्धिकाल ब्रह्मदिवस के अन्त में होता है। इसका कालपरिमाण एक "कृतयुग" (सतयुग) अर्थात् १७ लाख २८ हजार वर्ष हैं। इस प्रकार १५ सन्धिकाल का मान २ करोड़ ५९ लाख २० हजार वर्ष होता है। प्रति मन्वन्तर ७१ चतुर्युगी होती हैं। अतः एक मन्वन्तर का कालमान ३० करोड़ ६७ लाख २० हजार वर्ष होता है तथा १४ मन्वन्तरों का परिमाण ४ अरब २९ करोड़ ४० लाख ८० हजार वर्ष होता है।

एक ब्रह्मदिन -

१४ मन्वन्तर	: ४,२९,४०,८०,००० वर्ष	= ९९४ चतुर्युगी
१५ सन्धिकाल	= २,५९,२०,००० वर्ष	= ६ चतुर्युगी
योग	=४,३२,००,००,००० वर्ष	=१००० चतुर्युगी

सात मन्वन्तर और ७। सन्धि ब्रह्मदिवस के पूर्वार्द्ध तथा सात मन्वन्तर और ७। संधि ब्रह्मदिवस के उत्तरार्द्ध में होते हैं। आठवें सन्धिकाल के मध्य में ब्रह्मदिवस का "मध्याह्न" होता है। मन्वन्तरों के नाम निम्नप्रकार हैं—

---

१. युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते।
कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥

ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।
कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः॥

इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती॥

(सूर्यसिद्धान्त २-१८, १९, २०)

ब्रह्मदिवस के पूर्वार्द्ध के मन्वन्तर	ब्रह्मदिवस के उत्तरार्द्ध के मन्वन्तर
१. स्वायम्भुव	८. सार्वणि
२. स्वारोचिष	९. दक्षसार्वणि
३. औत्तमि	१०. बृहत् सार्वणि
४. तामस	११. धर्मसार्वणि
५. रैवत	१२. रुद्रपुत्र
६. चाक्षुष	१३. रौच्य
७. वैवस्वत	१४. भौतव्यक

ब्रह्मदिवस के पूर्वार्द्ध में प्रति मन्वन्तर सौरमण्डल का विस्तार तथा ब्रह्मदिवस के उत्तरार्द्ध में संकुचन होता है। विस्तार और संकुचन का अनुमानित मान एक करोड़ मील की परिधि प्रति मन्वन्तर आंका गया है।

"ब्रह्मरात्रि" सृष्टि का "प्रलय और उत्पत्ति काल" है। इसके पूर्वार्द्ध में सृष्टि की "क्रमिक प्रलय" तथा उत्तरार्द्ध में सृष्टि की "क्रमिक उत्पत्ति" होती है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की प्रलय में २१६ करोड़ वर्ष लगते हैं। इतना ही काल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का है।

ब्रह्मदिवस की समाप्ति पर प्रारम्भ में प्रलय की प्रक्रिया ब्रह्म-रात्रि के मध्यकाल तक पूर्ण हो जाती है। इस समय प्रकृति अपने मूल रूप में आ जाती है। उसके तीनों गुणों (सत्त्व=शुद्धता, रज=मध्यता=लाल=चञ्चल और तम=जड़ता - काला) में "पूर्ण साम्य" होता है। सर्वत्र गूढ़तम अन्धकार होता है। यह अनिर्वचनीय स्थिति है, जो क्षण-मात्र ही रहती है।[1]

---

१. प्रवृत्तिः खल्वपि नित्या। नहीह कश्चिदपि स्वस्मिन्नात्मनि मुहूर्तमप्यव-तिष्ठते, वर्द्धते वा यावदनेन वर्द्धितव्यम् अपायेन वा युज्यते। तच्चोभयं सर्वत्र ॥
(महाभाष्य, अ० ४, पा० १, आ० १, सू० ३)

भावार्थ—प्रवृत्ति नित्य होती है। कोई भी अपने स्वरूप में क्षण मात्र भी स्थिर नहीं रहता, जब तक बढ़ना चाहिये तब तक बढ़ता है, फिर अपाय से युक्त हो जाता है। इसी प्रकार सर्वत्र नियम है। जैसे—सूर्योदय, सूर्यास्त, प्रखरतम

इस स्थिति में परमेश्वर और जगत् वनाने की सामग्री (प्रकृति) विद्यमान रहती हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि प्रलय में प्रकृति का पूर्ण नाश हो जाता है, परन्तु यह मिथ्या धारणा है। प्रकृति का अत्यन्ताभाव कभी नहीं होता; प्रत्युत वह ब्रह्म के आश्रित रहती है। पुरुष और प्रकृति में "आधार-आधेय-सम्वन्ध" है। परम पुरुष (ब्रह्म) पूर्ण चेतन है, प्रकृति पूर्ण जड़ है। प्रकृति का ब्रह्म में लय भी नहीं होता है। अगले ही क्षण परमेश्वर के "ईक्षण" से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होता है। गुणों की साम्यावस्था नष्ट हो जाती है। सत्त्व-रज-तम की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वहिर्मुखी हो जाती है। यही सृष्टि का प्रारम्भ है। इसी को "सर्गारम्भ" कहते हैं।

"जड़-चेतनाभ्यां सृष्टिः"—जड़ और चेतन के संयोग से सृष्टि होती है। अकेले जड़ से नहीं होती और अकेले चेतन से भी नहीं होती। क्योंकि जड़ और चेतन परस्पर विरोधी गुण हैं। न जड़ चेतन हो सकता है और न चेतन जड़। जड़ स्वयं परिवर्तित नहीं होता। उसे गतिशील बनाने के लिए चेतन का सहयोग अपेक्षित है। इसी को "ईक्षण" या परमेश्वर और प्रकृति का "संघात" कहते हैं।

ईक्षण से प्रकृति की "सर्गोन्मुख" प्रवृत्ति प्रारम्भ होती है। उसमें "क्षोभ" (कम्पन) उत्पन्न होता है। यह स्थिति लगभग दस चतुर्युगी पर्यन्त रहती है। प्रकृति में क्षोभ से सर्वप्रथम "महत्" वनता है। इसी को "बुद्धितत्त्व" भी कहते हैं, "महत्" के वनने का अनुमानित काल चालीस चतुर्युगी है।

"महत्" में क्षोभ से "अहङ्कार" उत्पन्न होता है। यह तीन प्रकार का है—

प्रकाश (दिनके पूर्ण १२ बजे, शून्यबिन्दु) गूढतम अन्धकार (अमावस्या की मध्यरात्रि, शून्यबिन्दु), कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष, सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण की स्थिति।

जैसे गर्भाधान में वीर्य-विसर्जन के समय स्त्री की साम्यावस्था होती है और वह ५ पल की होती है। ऐसा ही मत पद्मश्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक, स्व० पं० ईश्वरचद्र दर्शनाचार्य तथा मीमांसकशिरोमणि श्री कुमारिलभट्ट का भी है।

(१) भूतादि अहङ्कार, (२) तैजसादि अहङ्कार, (३) वैकारिक अहङ्कार।

"तैजसादि अहङ्कार" दो बराबर भागों में टूट जाता है एक भाग 'भूतादि' अहङ्कार से मिलकर "पञ्च तन्मात्र" (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) बनता है, तो दूसरा "वैकारिक अहङ्कार" से मिलकर "पञ्च ज्ञानेन्द्रियां" (कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका) पञ्च कर्मेन्द्रियां (हस्त, पाद, लिङ्ग, गुदा, वाणी) तथा मन बनाता है। ये सभी सूक्ष्म तत्त्व हैं।

"महत्" से "अहङ्कार" बनने में चालीस चतुर्युगी का काल अपेक्षित है। इतना ही काल अहङ्कार से पञ्च तन्मात्र, दश इन्द्रियां और मन बनने में लगता है।

इन सोलह तत्त्वों के पश्चात् पञ्च तन्मात्राओं से पञ्च महाभूतों (शब्द से आकाश, स्पर्श से वायु, तेज से अग्नि, रस से जल और गन्ध से पृथ्वी परमाणु) का निर्माण होता है। प्रत्येक महाभूत के निर्माण में चालीस चतुर्युगी लगती हैं। इस प्रकार दो सौ चतुर्युगी में पञ्च महाभूतों का निर्माण होता है।

प्रकृति से पृथिव्यादि पर्यन्त ये चौबीस पदार्थ[1] ब्रह्माण्ड की सामग्री

---

१. सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वानाऽअबध्नन् पुरुषं पशुम्॥ यजु० ३१।१५॥

इस ब्रह्माण्ड की सामग्री इक्कीस प्रकार की कहाती है। जिस में से एक प्रकृति, बुद्धि और जीव ये तीनों मिलके हैं, क्योंकि यह अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है। दूसरा श्रोत्र, तीसरा त्वचा, चौथा नेत्र, पांचवीं जिह्वा, छठी नासिका, सातवीं वाक्, आठवां पग, नवमा हाथ, दशमी गुदा, ग्यारहवां उपस्थ जिसको लिंग इन्द्रिय कहते हैं, बारहवां शब्द, तेरहवां स्पर्श, चौदहवां रूप, पन्द्रहवां रस, सोलहवां गन्ध, सत्रहवीं पृथिवी, अठारहवां जल, उन्नीसवां अग्नि, बीसवां वायु, इक्कीसवां आकाश—ये इक्कीस समिधा कहाती हैं।

सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पंचतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः॥
(सांख्य० सू० १।६१)

हैं। पुरुष को मिलाकर पच्चीस पदार्थ भी माने गए हैं। पुरुष (चेतन ब्रह्म) सृष्टि का निमित्त कारण है।

(सृष्टि-विद्या-विषय—ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका)

अब सौर मण्डल ब्रह्माण्ड के निर्माण की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। जिस प्रकार समस्त रचना गर्भ में होती है, उसी प्रकार "हिरण्यगर्भ" में सर्वप्रथम ब्रह्माण्ड का अण्डा बनता है। यह विशाल आकार का होता है। इसे "महदण्ड" कहते हैं। इसका निर्माग उपर्युक्त चौबीस तत्त्वों से होता है। इसमें दस चतुर्युगी का समय लगता है।

महदण्ड की तीन गतियां हैं[1]। प्रारम्भ में यह "सलिल" (तरल)

---

१. आपो ह वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त। कथं नु प्रजायेमहि इति। ता आश्राम्यन्। तास्तपोऽतप्यन्त। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्यमाण्डं सम्बभूव। तदिदं…यावत् संवत्सरस्य वेला तावत् पर्यप्लवत। ततः संवत्सरे पुरुषः समभवत्। स प्रजापतिः। (श० ब्रा० ११।१।६।१-२)

प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्। नाहरासीन्न रात्रिरासीत्। सोऽस्मिन्नन्धे तमसि प्रासर्पत्। (ताण्डयब्राह्मण १६।११)

आपो वा इदमग्रे महत् सलिलमासीद्, एतास्ता आपः। त ऊर्मयः समास्यन्त फाल् फालिति। तद्हिरण्मयमाण्डं समैषत्। (जैमिनीय ब्राह्मण ३।३६०)

तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते तल्लिङ्ग एव। तल्लिङ्गाच्च महतस्तल्लक्षण एवाहङ्कार उत्पद्यते; स त्रिविधो वैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति। तत्र वैकारिकादहङ्कारात् तैजससहायात्तल्लक्षणान्येवैकादशेन्द्रियाण्युत्पद्यन्ते, तद्यथा श्रोत्रत्वक्चक्षुजिह्वाघ्राणवाग्घस्तोपस्थपायुपादमनांसीति; तत्र पूर्वाणि पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि, इतराणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि, उभयात्मकं मनः; भूतादेरपि तैजससहायात्तल्लक्षणान्येव पञ्चतन्मात्राण्युत्पद्यन्ते—शब्दतन्मात्रं, स्पर्शतन्मात्रं, रूपतन्मात्रं, रसतन्मात्रं, गन्धतन्मात्रमिति। तेषां विशेषाः—शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः; तेभ्यो भूतानि—व्योमानिलानलजलोर्व्यः; एवमेषा तत्त्वचतुर्विंशतिर्व्याख्याता।। सुश्रुत० शरीर० ५।४।।

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि०।। अथर्व० १९।९।५।।

२४ प्रकार की सामग्री (तत्त्वों) से ब्रह्माण्ड बनता है। इन्हीं तत्त्वों के द्वारा आत्मा का सूक्ष्म और स्थूल शरीर बनता है। इन ही तत्त्वों से बने कन्द, मूल, फल

अवस्था में होता है। समय के साथ-साथ अन्तस्ताप से यह तरल गाढ़ा होता जाता है। इसी से महदण्ड में ग्रहों-उपग्रहों का निर्माण होता हैं। इस महदण्ड का क्रमशः परिपल्लवन (चतुर्दिक् विस्तार) परिसर्पण (धीमी गति से तैरते हुए घूमना) और संमेषण (तीव्र गति से चक्राकार गति से घूमना) होता है। धीरे-धीरे महदण्ड का अन्तस्ताप और अन्तस्तेज बढ़ता जाता है। उसका उपरि भाग "हिरण्यवर्ण" और निचला भाग "रजतवर्ण" हो जाता है[1]। तीव्र चक्राकार गति में घूमते महदण्ड में भीषण विस्फोट होता है। वह उर्ध्व भाग से फट जाता है। परिणामस्वरूप सौर मण्डल का जन्म होता है।

प्रारम्भ में सौरमण्डल के सभी ग्रह-उपग्रह कम्पायमान, निस्तेज और पिलपिले थे।[2] वे सूर्य के अति निकट थे। उनकी पारस्परिक दूरियां भी कम थीं। उनमें अस्थिरता थी। गति अनियमित थी। धीरे-धीरे वे एक दूसरे से दूर होते गए। उनकी सघनता बढ़ती गई। वे ठोस रूप में आने लगे।[3] उनमें दृढ़ता व गति में नियमितता आती गई।

अन्नादि पदार्थ जीव के भौतिक शरीर के निर्वाहार्थं अत्यन्त आवश्यक हैं। वेद, उपनिषद्, आयुर्वेद, दर्शनग्रन्थों में इन सूक्ष्म और स्थूल इन्द्रियों का वर्णन समान रूप से मिलता है।

पिण्ड की इन्द्रियों के अङ्गोपाङ्गों का वर्णन प्रकरणभेद से वैदिक वाङ्मय में न्यूनाधिक रूप से मिलता है।

१. तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात् तदण्डमकरोद् द्विधा॥ (मनु० १।९,१२)

२. का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किं स्विदासीद् बृहद्वयः।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशंगिला॥ यजु० २३।११॥
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला॥ यजु० २३।१२॥

३. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० अ० ३२, मं० ६)

पृथ्वी और सूर्य के मध्य की दूरी बढ़ने से बीच का अन्तरिक्ष बना।

महद् अण्डा से सौरमण्डल की उत्पत्ति, सौरमण्डल के ग्रहों की स्थिति, गीले, मुलायम, अनियमित गति थी। रात दिन भी बराबर वहीं बन रहे थे। सभी ग्रहों की परस्पर की दूरी दूर हो रही थी। कभी-कभी समीप भी हो रहे थे। सूर्य भी अपने केन्द्र पर गतिमान् होते हुए स्थिर हो गया था।

सूर्य के जाज्वल्यमान भाग पर जैसे पिघले हुए लोहे पर कुछ क्षण पश्चात् मैल जम जाता है, वैसे ही मैल जम गया। उससे सूर्य का प्रकाश अवरुद्ध हो गया।

स्वर्भानुरासुरः सूर्यं तमसाऽविध्यत्। तै० सं० २।१।२॥

सूर्य के इस दोष को दैवी शक्तियों ने मिलकर चार चरणों में दूर किया।

सूर्य में विविध प्रकार की रचना

"तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छन्। तस्य यत् प्रथमं तमोऽपाघ्नन् सा कृष्णाऽविरभवत्, यद् द्वितीयं सा फल्गुनी, यत् तृतीयं सा बलक्षी,

---

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः ॥ यजु० १३-१८ ॥

भावार्थ - भूमि के द्वीपों के निर्माण में क्रमशः ५ स्थितियां बनती हैं। पिलपिली अवस्था में सूर्य की वराह नामक रश्मियों से पार्थिव पदार्थ परिपक्व होकर द्वीप द्वीपान्तर बन जाते हैं। जैसे दूध को गर्म करने से ऊपर मलाई आ जाती है। ऊपरी मलाई की परत ठण्डी होती है और नीचे दूध गर्म रहता है। इसी भाव को निम्न ऋग्वेद का मन्त्र भी दर्शाता है—

विश्वेत् ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ॥ (ऋ० ८।७७।१०)

अर्थात् भूमि की इन्हीं प्रक्रियाओं तथा गुणों के कारण से इसके अनेक नाम हैं। जैसे—भूमि, अदिति, हिरण्यगर्भा, हिरण्यवक्षा, विश्वधाया, पृथिवी, भारवाही, माता, पयस्वती, विश्वम्भरा आदि। विशेष अथर्ववेद भूमिसूक्त(१२।१) द्रष्टव्य है।

यदध्यस्थाद् अपाक्रन्तन् साऽविर्वंशा समभवत्" ।

तैत्तिरीयसंहिता २।१।२॥

प्रथम वार का परिवर्तन कृष्ण वर्ण आवरण हटाया । दूसरी वार तम को हटाया । वह लाल वर्ण का हुआ । तीसरी वार तम को हटाया, वह श्वेत वर्ण हुआ ।

जैसे कच्चा तेल आने पर पिटरोमैक्स् (लालटैन) की वत्ती काली ज्वाला वाली, नीले रंग भूरे रंग के पश्चात् श्वेत रंग=प्रकाशवाली होती है ।

सृष्टि की निर्माण प्रक्रिया में अनेकों परिवर्तन लाखों वर्षों में होते रहे । मन्त्र—

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम्० ।

तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ।

ऋग्वेद० १०।८८।१०॥

महदण्ड के विस्फोट से जन्मे सौरमण्डल के ग्रहों-उपग्रहों में सघनता, दृढ़ता व गतिनियमितता आने में अनुमानतः १६० चतुर्युगी का काल लगता है ।

इस प्रकार ब्रह्मरात्रि के उत्तरार्द्ध में जड़ सृष्टि का विकास होता है; इस जड़ सृष्टि के विकास में पांच सौ चतुर्युगी लगती हैं । अब चेतन-सृष्टि का प्रारम्भ होता है, जिसका वर्णन ब्रह्मदिवस के उल्लेख में किया जा रहा है—

ब्रह्मदिवस में चेतन-सृष्टि होती है । यद्यपि पृथ्वी का निर्माण ब्रह्म-रात्रि के उत्तरार्द्ध में ही पूर्ण हो जाता है, तथापि उसमें चेतन-सृष्टि के अनुकूल परिस्थितियां व वातावरण नहीं होता । अतः ब्रह्मदिवस के आदि में कृतयुग (१७ लाख २८ हजार वर्ष) परिमाण का एक सन्धि-काल होता है ।

यह पृथ्वी का "ऋतुकाल" कहा जाता है । गर्भधारण करने से पूर्व पृथ्वी भी "ऋतुस्नाता" होती है, ठीक वैसे ही जैसे स्त्री । सन्धिकाल के पश्चात् पृथ्वी पुलकितपृष्ठ हो गर्भधारण करने में समर्थ हो

जाती है ।[1]

प्रकृति के विकार और कालक्रम

(ब्रह्मरात्रि के उत्तरार्द्ध के २१६ करोड़ वर्षों का संक्षिप्त विवरण)

१.	सर्गोन्मुख प्रवृत्ति	—	१०	चतुर्युगी
२.	महत् तत्त्व	—	४०	,,
३.	अहङ्कार	—	४०	,,
४.	पञ्च तन्मात्र+१० इन्द्रियां+मन	—	४०	,,
५.	आकाश तत्त्व	—	४०	,,
६.	वायु	—	४०	,,
७.	अग्नि	—	४०	,,
८.	जल	—	४०	,,
९.	पृथ्वी के परमाणु	—	४०	,,
१०.	महद्दण्ड	—	१०	,,
११.	सौर मण्डल के ग्रहों में सघनता, द्युलोक में तेजस्विता, दृढ़ता और नियमितता और रात-दिन का बनना ।	—	१६०	,,
	योग (ब्रह्मरात्रि का उत्तरार्द्ध)	—	५००	चतुर्युगी

---

१. देवता—योनिः, द्यावापृथिवी ।

> यासां द्यौः पिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं वीरुधां बभूव ।
> तास्त्वा पुत्रविद्याय दैवीः प्रावन्त्वोषधयः ।। अथर्व० ३।२३।६।।

अर्थात् द्यौः पिता के तुल्य तथा स्त्री माता के तुल्य प्रजा उत्पन्न करती है ।

> अमोहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम् ।
> ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ।। अथर्व० १४।२।७१।।

अर्थात् वर के तुल्य द्युलोक तथा वधू के तुल्य पृथिवी की उपमा दी जाती है। इसी को आदर्श मानकर वे प्रजा उत्पन्न करते हैं ।

सन्धिकाल के चार चरण होते हैं। प्रत्येक की अवधि ४ लाख ३२ हजार वर्ष है। प्रथम चरण में सूर्य का ताप शनैः-शनैः बढ़ता जाता है। अति ताप के कारण पृथ्वी का समस्त जल और हिम मेघ बनकर अन्तरिक्ष में उड़ जाता है। समुद्र सूख जाते हैं।

द्वितीय चरण में वायु के सहयोग से इन्द्र (सूर्य) वृत्रासुर (मेघ) संग्राम होता है। परिणामस्वरूप मूसलाधार वर्षा होती है। अग्नि का शमन होता है। समुद्र अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी जलमग्न हो जाती है। **इसी को जलप्लावन कहते हैं।**

तृतीय चरण में सूर्य की संवर्तक रश्मियाँ उत्तरी भाग में वर्षा के जल को वाष्प बना कर अन्तरिक्ष में ले जाती हैं। पृथ्वी का ऊपरी पृष्ठ जल से बाहर निकल आता है, जो पुलकित होता है। उसकी दशा ऋतु-स्नाता स्त्री के समान होती है।

चतुर्थ चरण में द्युलोक से सूर्य की रश्मियों के माध्यम से सोम (वीर्य) भूमि पर अवतरित होता है, तब पृथ्वी गर्भवती होती है।[1] "पृथ्वी और

---

१. देवता—सोमः।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः॥ ऋ० १०।८५।१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही॥ ऋ०१०।८५।२॥
देवता—योनिगर्भः, पृथिव्यादयः।
पर्वताद् दिवो योनेरङ्गादङ्गात् समाभृतम्।
शेपो गर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवा दधत्॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे।
एवा दधामि ते गर्भं तस्मै त्वामवसे हुवे॥ अथर्व० ५।२५।१, २॥

धातः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥

त्वष्टः श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्योः।
पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे॥

सवित: श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्यो: ।

पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ।।

प्रजापते श्रेष्ठेन रूपेणास्या नार्या गवीन्यो: ।

पुमांसं पुत्रमा धेहि दशमे मासि सूतवे ।। अथर्व० ५।२५।१०-१३।।

पृथिवी के गर्भधारण के विषय में सभी प्रमाण वेदभाष्य में तथा संस्कारविधि (गर्भाधान-प्रकरण) में द्रष्टव्य हैं।

देवता—गर्भदृंहणम्, पृथिवीविषय: ।

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।।

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवाते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।।

यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।।

यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे ।। (अथर्व० ६।१७।१,२,३,४)

देवता— भूमि: ।

असंबाधं........ नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति ।
पृथिवी न: प्रथतां राध्यतां न: ।।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतोनिवेशनी ।
.........दधातु ।।

यत् ते ... . माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या: ।
पर्जन्य: पिता स उ न: पिपर्तु ।।

निधिं बिभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।
.... सुमनस्यमाना ।।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।

यां द्विपाद: पक्षिण: संपतन्ति हंसा: सुपर्णा: शकुना वयांसि ।
यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान् ।
वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चि: ।।

सूर्य"का जोड़ा "स्त्री" और "पुरुष" के जोड़े के समान ही है।[1] रोहिणी नक्षत्र में द्युलोक से सोम (वीर्य) रश्मियों के माध्यम से पृथ्वी पर आता है। पृथ्वी उसे अपने गर्भ में धारण कर प्रसवकाल आने पर नाना प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करती है।

जब पृथ्वी का "प्रसव" होता है, तो सर्वप्रथम "उद्भिज" सृष्टि होती है। जो वनस्पति भूमि को फोड़कर प्रकट होते हैं, उन्हें "उद्भिज" कहते हैं। उनमें ओषधि, वनस्पति, अन्न आदि आते हैं। लघु वनस्पतियों की संख्या दीर्घ विशालकाय वृक्षों की अपेक्षा क्रमशः बहुत अधिक होती है।

ओषधि, वनस्पति, अन्नादि परिपक्व होकर भूमि पर गिर जाते हैं। परिणामस्वरूप भूमि में रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, रज, वीर्य आदि के कण बनते हैं। रज-वीर्य के कणों में मिथुन होने से नाना प्रकार की योनियों के अण्डे बनते हैं। ये अण्डे भूगर्भ में बनते हैं। समय आने पर ये अण्डे क्रमशः फूटते हैं। सर्वप्रथम कृमियों (भूमि पर रेंगनेवाले कीड़ों) के अण्डे फूटते हैं। नाना प्रकार की कृमियां भूमि पर रेंगने लगती हैं। रेंगने का संस्कार उन्हें परमेश्वर से प्राप्त होता है। जन्मते ही ये कृमियां अपने आहार को ढूंढने लगती हैं। इनका मुख्य आहार मिट्टी और वनस्पतियाँ होती हैं। जिन्हें दयालु परमात्मा इनके जन्म से पूर्व ही भूमण्डल पर अवतरित कर देता है।

यस्यां·········वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो
दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥

(अथर्व० १२।१।२,६,४४,४५,५१,५२,६२)

१. अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक् त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
तविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै ॥ अथर्व० १४।२।७१॥

विवाह-सन्दर्भ में वर वधू से कहता है कि जैसे द्यौ और पृथिवी का जोड़ा है, वैसे ही वर वधू का जोड़ा है। उसको आदर्श मानकर जीवन का निर्वाह करना है।

इसके पश्चात् जलचरों के अण्डे जल में होते हैं। जल में विचरनेवाले प्राणियों को जलचर कहते हैं। इनका आहार कृमियां व वनस्पतियाँ हैं। समस्त जलचर अपने-अपने आहार को ढूंढ लेते हैं। छोटे जलचरों की संख्या बड़े जलचरों की अपेक्षा अधिक होती है। कुछ बड़े जलचर अपने से छोटे जलचरों को भी आहार बना लेते हैं।

जलचरों के बाद "पक्षियों" के अण्डे भूगर्भ में बन कर भूमि पर उत्पन्न होकर फूटते हैं। इनका आहार अन्न-वनस्पतियाँ, कृमियाँ और जलचर हैं। अण्डों से युवा (समर्थवान्) पक्षी निकलते हैं। "पंख" होने से ही इन्हें "पक्षी" कहते हैं इस प्रकार "अण्डज" योनि में **"कृमि जल-चर और "पक्षी"** आते हैं।

तीसरे प्रकार की चेतन-सृष्टि "जरायुज" हैं। ये दो प्रकार के होते हैं— "पशु और मनुष्य"। इनमें "पशु" प्रथम उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात् "मनुष्य" का जन्म होता है। मनुष्य चेतन-सृष्टि का श्रेष्ठतम प्राणी है।

पशु प्रायः चौपाए (चार पैर वाले) होते हैं। अण्डज योनियों की अपेक्षा जरायुजों में बुद्धि और इन्द्रियाँ अधिक देखी जाती हैं। कुछ पशु शाकाहारी और कुछ माँसाहारी होते हैं। दोनों की शारीरिक संरचना व प्रवृत्तियों में भी अन्तर पाया जाता है।

पशु-सृष्टि के बाद सबसे अन्त में "मनुष्य-सृष्टि होती है।[1] यहीं से प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तर का प्रारम्भ होता है। यह सन्धिकाल का अन्त और मन्वन्तर का प्रारम्भ है।

आदि सृष्टि के नर-नारी पूर्ण युवा होते हैं। अन्य प्राणियों की भाँति इनका जन्म भी भूगर्भ से होता है। मनुष्य के रज वीर्य के प्राकृतिक कण पृथ्वीतल के अन्दर लगभग दो फिट की गहराई पर मिलते हैं। अन्दर ही गर्भ का विकास होता है। गर्भ परिपक्व होने पर मनुष्य ऊर्ध्वमुखी समर्थवान् उत्पन्न होते हैं। ये मूलतः शाकाहारी प्राणी हैं।

---

१. मानव आदि प्राणियों में सर्वत्र जोड़े (नर-मादा) उत्पन्न होते हैं और इनमें आहार, निद्रा, प्रजनन प्रक्रिया, बोली, रेङ्गना, तैरना, उड़ना, दौड़ना, भाषा आदि संस्कार जन्मतः होते हैं।

मनुष्यसृष्टि के साथ ही स्वायम्भुव मनु की प्रथम चतुर्युगी के सतयुग का प्रारम्भ होता है। इस समय पृथ्वी पर वसन्त ऋतु होती है। चैत्र-शुक्ल प्रतिपदा रविवार का प्रातःकाल और ब्राह्म मुहूर्त्त—यही आदि मानव का जन्म-दिन है।

परमेश्वर की सृष्टि में प्रत्येक योनि स्वयं में पूर्ण है

मानव आदि प्राणियों में क्रमिक विकास ढूंढना अविवेक ही कहा जाएगा। आदि मानव की पाश्चात्य संकल्पना असंगत एवं निराधार है।

पृथ्वी पर जन्मते ही मनुष्य आहार की खोज करता है। उसे अपने चारों ओर कन्द-मूल-फल मिलते हैं, जिन्हें खाकर वह अपनी क्षुधा शान्त करता है। दुधारू पशुओं का दूध पीता है। धीरे-धीरे मानुषी सभ्यता का विकास होता है। इस प्रकार सृष्टि की स्थिति का प्रथम मन्वन्तर प्रारम्भ होता है।

मानुषी सृष्टि के साथ एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना और घटती है; वह है, दयालु पिता (परमेश्वर) द्वारा अपने पुत्रों (जीवों) के कल्याणार्थ वेद ज्ञान का प्रकाश। जिस प्रकार कृमि, जलचर, पशु, पक्षी आदि योनियों को परमेश्वर उनके उपयोग का ज्ञान उनके जन्म के साथ ही दे देता है, वैसे ही मनुष्यों के लिए उपयोगी ज्ञान भी उनके अन्तःकरण में आदि सृष्टि में ही दे देता है।[1] अन्तर्यामी परमात्मा अन्तर्वाणी से ऋषियों की अन्तरात्मा में प्रतिभासित ज्ञान देता है। इसी ज्ञान की "वेद" संज्ञा है। स्मरण रहे कि "वेद" "शब्द-अर्थ-सम्बन्ध" का नाम

---

१. देवता-ज्ञानम्।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥

(ऋ० १०।७१।१,२,३)

है; नकि पुस्तक का। यह ईश्वर से प्राप्त होता है, इसी से इसको ईश्वरीय ज्ञान कहते हैं।

पवित्र भूमि से उत्पन्न मुक्तात्मा[१] महर्षियों को चारों वेदों के ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होने पर **स्रष्टा की सृष्टि परिपूर्ण हो जाती है।**

सामान्य प्राणी को सामान्य आवश्यक ज्ञान भी दयालु परमात्मा देता है। यही सृष्टि का क्रम सर्वदा होता है। आदि मानव बलवान् सुन्दर, शाकाहारी, मेधावान्, बोलने वाला, भाषाविद्, सांस्कारिक, अहिंसक, परोपकारी, सहिष्णु था। ब्रह्मादि मेधावी महापुरुषों ने ऋषियों से वेदों का अध्ययन करके अन्य मनुष्यों को वेद विद्याओं का ज्ञान प्रचारित किया, जैसे--गणितविद्या, आहारविद्या, गृहस्थविद्या, योग-विद्या, ब्रह्मविद्या।

सृष्टि-चक्र के अनुसार चतुर्युगी के काल-चक्र भी चलते रहते हैं।

अद्भुत सृष्टि का भोग करते हुए सम्पूर्ण प्राणी सुखपूर्वक अपनी-अपनी योनि अनुसार कर्म करते रहते हैं।

सम्पूर्ण चेतन सृष्टि भूमि के नाभि स्थान ऊँचे (तिब्बत=त्रिविष्टप) स्थान पर उत्पन्न हुई,[२] यही आदिमानव की जन्मभूमि है।

"इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः"।

संसार के इतिहासज्ञ तथा तिब्बत के निवासी भी आदि मानव का जन्मस्थान तिब्बत को मानते हैं। अरबों करोड़ों वर्षों के पूर्व तिब्बत का जल वायु, आहार मानवादि प्रजा की उत्पत्ति और निर्वाह का उत्तम स्थान था।

तिब्बत में जन्मे मानव धीरे-धीरे पृथिवी पर दूर-दूर फैलकर बसते रहे। सभी प्राणियों का जन्म जीवन मृत्यु और पुनर्जन्म होता रहता था।

---

१. एते हि ऋषयो निर्मला जन्मतः शुद्धा अमैथुनिसृष्टौ सर्गादावुत्पन्नत्वात्। नहि मातृगर्भाज्जायन्ते। अतः साधारणजन्मप्रकाशशून्यत्वाद् अजा इत्युच्यन्ते। तथा चोक्तं तैत्तिरीयारण्यके—

'अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवन् तद् ऋषीणामृषित्वम्।'

२. "शरीर के नाभिसंस्थान पर ही प्रजोत्पन्न होती है।"

(शतपथब्राह्मण, सत्यार्थप्रकाश समु० ८)

असंख्य आत्मा मुक्त भी होती थीं।

कर्मानुसार मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म में योनि-परिवर्तन भी होता रहता था। सभी का कर्मफल सृष्टि के अध्यक्ष सृष्टिकर्त्ता के अधीन था, है और रहेगा।

७१ चतुर्युगी का सुदीर्घकाल समाप्त होते-होते सृष्टि का स्वभाव पुराना हो जाता है।[1]

जलप्लावन की प्रक्रिया भूमि पर होती है। जलप्लावन के पश्चात् भूमि पुनः ऋतुस्नाता स्त्री के समान पुनर्युवति (सामर्थ्यवान्) होकर पुनः प्रजा के गर्भधारण योग्य होती है। सम्पूर्ण वृक्षादि तथा मानव आदि चेतनसृष्टि दूसरी वार अमैथुनी सृष्टि से उत्पन्न होती है। 'सुप्त प्रबुद्ध-न्याय' के अनुसार वेद भी मुक्तात्माओं को प्राप्त होते हैं। पूर्ववत् द्वितीय मन्वन्तर के आरम्भ में सृष्टि का स्वभाव नया होता है।

इस प्रकार स्वायम्भुव मनु के पश्चात् सृष्टि का द्वितीय सन्धिकाल प्रारम्भ होता है। इसका क्रम प्रथम सन्धिकाल से कुछ भिन्न है। प्रथम मन्वन्तर की समाप्ति पर सर्वप्रथम पृथ्वी के जीव सामूहिक रूप में किसी अन्य ब्रह्माण्ड की पृथ्वी पर चले जाते हैं, क्योंकि इस पृथ्वी पर सूर्य के द्वारा ताप अत्यधिक होने के कारण सम्पूर्ण चेतनसृष्टि नष्ट हो जाती है। लोक में भी यह देखा जाता है कि ऋतु-परिवर्तन पर एक द्वीप के पक्षी

---

१. "मन्वन्तरपर्य्यावृत्तौ सृष्टेर्नैमित्तिकगुणानामपि पर्य्यावर्त्तनं किंचित् किंचिद्-भवत्यतो मन्वन्तरसंज्ञा क्रियते।"

सृष्टि का स्वभाव नया-पुराना प्रति मन्वन्तर में बदलता जाता है। इसलिये मन्वन्तर संज्ञा बांधी है। (ऋग्वेदभाष्यभूमिका, वेदोत्पत्ति-विषय)

सृष्टिस्वभाव मनु के आदि में नया और अन्त में पुराना होता है। जैसे प्रातः काल का वातावरण नया और सायम् का पुराना होता है।

प्रातः शरीर में कफ की प्रधानता, मध्याह्न में पित्त की प्रधानता और सायं में वायु की प्रधानता रहती है। बाल्यावस्था में कफ प्रधान, युवावस्था में पित्त प्रधान, वृद्धावस्था में वायु प्रधान होती है।

काल और सृष्टि सर्वदा परिवर्तनशील रहते हैं। (अथर्व० १९।५३,५४)

सामूहिक रूप से अन्य द्वीप-द्वीपान्तरों में चले जाते हैं। ऐसा ही द्वितीय सन्धिकाल के प्रथम चरण में होता है। जीव सूक्ष्मशरीर से वायु और रश्मियों द्वारा एक ब्रह्माण्ड से दूसरे ब्रह्माण्ड को जाते हैं। ताप के कारण पृथ्वी पुनः तपने लगती है। उसका जल वाष्प बन उड़ जाता है। अन्त-रिक्ष मेघाच्छादित हो जाता है।

द्वितीय चरण में पुनः इन्द्र-वृत्रासुर संग्राम होता है। मूसलाधार वर्षा होती है। पृथ्वी के ताप का शमन होता है। वह पूर्णतः जलमग्न हो जाती है। तृतीय और चतुर्थ चरण प्रथम सन्धिकाल की भाँति ही रहते हैं। सन्धिकाल का यह क्रम चौदहवें सन्धिकाल तक ऐसा ही रहता है, पन्द्रहवें (अन्तिम) सन्धिकाल में बदल जाता है। इसकी चर्चा हम यथास्थान करेंगे।

द्वितीय सन्धिकाल के पश्चात् दूसरा (स्वारोचिष) मन्वन्तर पूर्ववत् प्रारम्भ होता है। यही क्रम आदि सृष्टि से प्रति मन्वन्तर चला आता है। इस समय सातवाँ (वैवस्वत) मन्वन्तर चल रहा है। इसकी २७ चतुर्युगी पूर्ण हो चुकी हैं, २८ वीं चतुर्युगी का कलियुग चल रहा है। यह कलियुग का ५०९२ वाँ वर्ष है। इस समय विक्रम संवत् का २०४९ वाँ तथा ईस्वी संवत् का १९९२ वाँ वर्ष चल रहा है। **इस प्रकार वैवस्वत मन्वन्तर का भुक्तकाल-विवरण निम्न है—**

२७ वीं चतुर्युगी का काल	——	११,६६,४०,०००
२८ वीं चतुर्युगी का सतयुग	——	१७,२८,०००
२८ वीं चतुर्युगी का त्रेता युग	——	१२,९६,०००
२८ वीं चतुर्युगी का द्वापर युग	——	८,६४,०००
२८ वीं चतुर्युगी का कलियुग (भुक्त)	——	५०९२
वैवस्वत मन्वन्तर का भुक्तकाल	——	१२,०५,३३,०९२

यह वैवस्वत मनु का १२,०५,३३,०९२ वां वर्ष हो गया है। शेष भोग्य काल १८,६१, ८६,९०८ वर्ष है।

इस प्रकार वर्तमान वैवस्वत मनु का भूत और भविष्य काल निम्न प्रकार आता है—

सृष्टि का भूतकाल

६ मन्वन्तर	——	१,८४,०३,२०,००० वर्ष
७ सन्धिकाल	——	१,२०,९६,००० वर्ष
७ वाँ मन्वन्तर	——	१२,०५,३३,०९२ वर्ष
कुल भूतकाल	——	१,९७,२९,४९,०९२

सृष्टि का भविष्यकाल[1]

सृष्टि की आयु	——	४,३२,००,००,००० वर्ष
सृष्टि का भूतकाल	——	१,९७,२९,४९,०९२ वर्ष
शेष भविष्यकाल	——	२,३४,७०,५०,९०८ वर्ष
वर्तमान सृष्टि-संवत्	——	१,९७,२९,४९,०९२ वर्ष

इस समय सृष्टि-संवत् का ९३वाँ वर्ष चल रहा है।

वैवस्वत मन्वन्तर के वाद भविष्य में सात मन्वन्तर और आते हैं। उसके पश्चात् पन्द्रहवें सन्धिकाल के साथ ही ब्रह्मदिवस का अन्त होगा। इस अन्तिम सन्धिकाल के प्रथम दो चरण द्वितीय सन्धिकाल की भांति ही रहेंगे। केवल अन्तिम चरण में उद्भिज, अण्डज, और जरायुज सृष्टियां नहीं होंगी। द्युलोक, पृथिवी लोक प्रजोत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं। यहां तृतीय व चतुर्थ चरण में भी जलप्लावन की स्थिति बनी रहेगी। जैसे पिण्ड की मृत्यु के पश्चात् शवस्नान कराया जाता है, वैसे ही यह पन्द्रहवीं सन्धि में जलप्लावन की प्रक्रिया मात्र है।

इस प्रकार ब्रह्मदिवस के ४३२ करोड़ वर्ष तक सृष्टि की स्थिति रहती है।

---

१. ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणो वराहकल्पे द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे त्रिणवत्युत्तरपञ्चसहस्रतमे वर्षे विक्रमाब्दे एकोनपञ्चाशदुत्तरद्विसहस्रतमे वर्षे मार्गशीर्षमासे प्रतिपदायां बुधवासरे द्वितीयप्रहरे लेखोऽयं श्रीव्रतपालेन श्रीसीतारामात्मजेन हैदराबादनगरनिवासिना सृष्टिविद्याविषये लिख्यते।

पन्द्रहवीं सन्धिकाल की समाप्ति के साथ ही ब्रह्मदिवस का अन्त हो जाता है। अब ब्रह्मराशि का पूर्वार्द्ध प्रारम्भ होता है। यहीं से सृष्टि के प्रलय की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥
(ऋग्वेद १०।१९०।१)

प्रलय का इतिहास—ततो रात्र्यजायत पूर्व ब्रह्मदिवस की समाप्ति पर ब्रह्मरात्रि का आरम्भ होता ही है, प्रलय का भी आरम्भ होता है। पूर्वकल्प के संकुचित सौरमण्डल का दग्ध होना आरम्भ होता है। तभी रात्रि बनना आरम्भ होती है। धीरे-धीरे सौरमण्डल-दहन की प्रक्रिया होने से महारात्रि का अन्धकार बढ़ने लगता है।

वर्तमान सौरमण्डल भी ब्रह्मदिवस की समाप्ति पर संकुचित होगा। ब्रह्माण्डदहन की प्रक्रिया आरम्भ होगी, सूर्य की वैश्वानर रश्मियों से अति अग्निवर्षा होगी। परिणामस्वरूप भूमण्डल के विशाल हिम पर्वत पिघलकर समुद्रजलों का स्तर ऊँचा होगा, यह भारी जलप्लावन की प्रक्रिया होगी। अथाह समुद्र जलने लगेंगे और भूमि के द्वीप-द्वीपान्तरों का दग्ध होना आरम्भ होगा। सूर्य के बाह्य अतिताप से ग्रहों का आन्तरिक लावा, अग्नि गैस अति उग्र होने से सभी ग्रहों में असंख्य ज्वालामुखी विविध स्थानों में फूट पड़ेंगे। सूर्य की ज्वाला और ग्रह-उपग्रहों के ज्वालामुखी से ब्रह्माण्डदहन का एक भयङ्कर विकराल दृश्य होगा।

अरबों मीलों में फैला हुआ सौर मण्डल धीरे २ करोड़ों वर्षों में एक विशाल पिण्डाकार बनने लगेगा। सभी ग्रहोपग्रह एकाकार हो जाते हैं। अन्तरिक्ष और दिशायें नष्ट हो जायेंगी, यह महान् अण्डा भी भस्मीभूत होने लगेगा।[1]

---

१. परोक्ष ब्रह्माण्डदहन का दृश्य पिण्डदहन में प्रत्यक्ष है। ब्रह्माण्डदहन करोड़ वर्षों में होता है, पिण्ड १२ घण्टे में भस्मीभूत होता है। पिण्ड के तत्त्व ब्रह्माण्ड में और ब्रह्माण्ड के तत्त्व स्रष्टा की शक्ति में चले जाते हैं। पिण्ड के अङ्गों में धातुओं के नामों मे आहुतियां देते समय वेदमन्त्रों का पाठ भी होता है।

यजुर्वेद के अध्याय ३९ के १३ मन्त्रों का पाठ प्रलय के प्रकरण में है,

पञ्चमहाभूतों के अणु-परमाणु अपने-अपने कारणों में लीन होने लगेंगे। पार्थिव पदार्थ जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु आकाश में लीन होने पर एक कुहराव सा समान व्योम में फैल जायेगा। पञ्चमहाभूत के तत्त्व भी पृथिवीतत्त्व के गंधतन्मात्र में, जलतत्त्व रस में, अग्नितत्त्व रूप में, वायुतत्त्व स्पर्श में और आकाशतत्त्व शब्द-तन्मात्र में लीन होंगे।

११ इन्द्रियतत्त्व भी अहङ्कार में लीन हो जायेंगे, तत्पश्चात् यह अहङ्कार तत्त्व महद् बुद्धितत्त्व में और महत् तीनों गुणों में लीन होगा और तीन गुण सत्त्व, रजस्, तमस् भी अन्तर्मुखी होते-होते ये तीनों गुण पृथक्-पृथक् हो जावेगें और सम मात्रा में होकर गतिरहित शांत हो जाते हैं। समकाल में होने पर **गूढतम रात्रि बनेगी**। इसी अवस्था को ऋग्वेद का मन्त्र कहता है—

'तम आसीद् तमसा गूढमग्रे' यह महाप्रलय की पूर्णता महारात्रि= ब्रह्मरात्रि के पूर्ण मध्यकाल में शून्य विन्दु पर परिपूर्ण होगी। यही प्रकृति की साम्यावस्था है।

जिसका स्वामी दयानन्दजी सरस्वती ने (अन्त्येष्टि प्रकरण) संस्कार-विधि में विनियोग किया है—

स्वाहा० पृथिव्यै स्वाहा० अन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा।
दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ।। (यजु० ३९।१)
लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा० लोहिताय स्वाहा० मेदोभ्यः स्वाहा०।
मांसेभ्यः स्वाहा० मज्जभ्यः स्वाहा०। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ।।
(यजु० ३९।१०)
द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। (यजु० ३९।१३)
वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम्० (यजु० ४०।१५)

ब्रह्मरात्रि के पूर्वार्द्ध में प्रलय के २१६ करोड़ वर्षों के कार्य का संक्षिप्त विवरण—

१. ब्रह्माण्ड का दहन व संगलन	—	१६०	चतुर्युगी
२. विशालाण्ड का विलीनीकरण	—	१०	,,
३. पृथिवी का जल में लय	—	४०	,,
४. जल का अग्नि में लय	—	४०	,,
५. अग्नि का वायु में लय	—	४०	,,
६. वायु का आकाश में लय	—	४०	,,
७. आकाश का पञ्च तन्मात्राओं में लय	—	४०	,,
८. पञ्च तन्मात्राओं (इन्द्रियों) का अहङ्कार में लय	—	४०	,,
९. अहङ्कार का महत्तत्त्व में लय	—	४०	,,
१०. महत्तत्त्व का सत्त्व रजस् तमस् में लय	—	४०	,,
११. प्रकृति के गुणों की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति	—	१०	,,
योग (ब्रह्मरात्रि का पूर्वार्द्ध)	—	५००	चतुर्युगी

यह वर्तमान सृष्टि-चक्र का इतिहास दो सहस्र चतुर्युगी का है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का अति संक्षिप्त इतिहास लिखा है, जो भूत भविष्यत् का है।

ब्रह्मरात्रि के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध में किस प्रकार किस क्रम से सृष्टि होती है और प्रलय विपरीत क्रम से होता है—इस विषय में यह काल-विभाजन पूज्यपाद स्वर्गीय स्वामी विशुद्धानन्द जी बम्बई और पूज्यपाद पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक तथा मेरा है। इस विषय में अनेक वेदों के, तथा आर्षग्रन्थों के प्रमाण दिये हैं, अनुमान का भी यहाँ पर कुछ आधार लिया गया है।

५००,५०० चतुर्युगी में प्रलय और उत्पत्ति होती है, साम्यावस्था स्वल्पकाल की है।

गर्भ में पिण्ड का आरम्भ आत्मा के साथ वीर्य और रज कण का मेल होने से स्वल्प कुछ क्षणों में होता है और शरीर से जीव का वियोग क्षण

मात्र में ही होता है तथा शरीर की वृद्धि और क्षय में समान काल लगता है।

प्रातः दिन में ६ बजे से प्रकाश की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ती है, प्रखरतम प्रकाश पूर्ण १२ बजे होता है, तत्काल ही प्रखरतम प्रकाश की मात्रा घटने लगती है। ६ बजे सायं प्रकाश समाप्त होता है। ठीक इसी प्रकार सायम् ६ बजे से अन्धकार की मात्रा बढने लगती है, रात्रि के पूर्ण १२ बजे गूढतम अन्धकार (अमावास्या की रात्रि) होता है, तत्काल ही अन्धकार की मात्रा घटने लगती है और प्रातः ६ बजे अन्धकार समाप्त हो जाता है।

बढ़ने-घटने का काल समान=बराबर है, चाहे वह प्रकाश हो, चाहे अन्धकार।

इस विषय की अधिक जानकारी पूज्य पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक कृत 'वैदिक-छन्दो-मीमांसा' में देखिये।

हाँ, सृष्टि का प्रलय और उत्पत्ति ब्रह्मरात्रि में लीन व अप्रसिद्ध रहता है। वेद ज्ञान भी ब्रह्मरात्रि और जलप्लावन में अप्रसिद्ध रहते हैं। वेद स्रष्टा के ज्ञान में नित्य रहते हैं।

(१) स्रष्टा की हिरण्य गर्भ की अग्नि से ही सभी भस्म होता है।

(२) गूढतम अन्धकार स्त्रीगर्भ, भूगर्भ, सभी प्राणियों के मादा-गर्भ में होता हैं। कालवाची अमावास्या की मध्यरात्रि में १२ बजे मेघाच्छादित आकाश होने पर अनुभव किया जा सकता है।

पाठकवृन्द अनुभव करें, हमने (१) ब्रह्माण्ड में, (२) पिण्ड में, (३) प्राकृतिक नियमों में और (४) वेदमन्त्रों में (चार स्थानों पर) गूढतम अन्धकार होता है, यह बता दिया। इस सिद्धान्त से मानव को जो लाभ होता है, उसको भी दर्शा देते हैं—

रात्रि के प्रथम प्रहर के आरम्भ में आहार करना चाहिये। दूसरे प्रहर के आरम्भ में निद्रा करना चाहिये। तीसरे प्रहर के आरम्भ में अर्थात् मध्य रात्रि शून्य काल में भोग करना चाहिये। चौथे प्रहर के आरम्भ में योगाभ्यास करना चाहिये।

चेतावनी—आहार, निद्रा और योगाभ्यास नित्य करने योग्य कर्म हैं, किन्तु भोग, गर्भाधान और वीर्यदान ऋतुकाल आने पर ही करना

चाहिये, अर्थात् इस का समय है—छः मास, एक वर्ष, एक युग (जो कि पाँच वर्ष और बारह वर्ष का युग होता है)।

परिणामलाभ—ऐसा करने से पति और पत्नी का सम्पूर्ण शारीरिक वल तथा बुद्धि का वल वृद्धि को प्राप्त होगा, आयु क्षीण नहीं होगी और इनकी सन्तान भी स्वस्थ, सुन्दर, वलवान्, बुद्धिमान्, यशस्वी तथा दीर्घायु होगी।

(इस विषय में स्वामी दयानन्दकृत 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका'—उपासना-विषय, ब्रह्मचर्य की व्याख्या, तथा 'यजुर्वेदभाष्य' वेद, आयुर्वेद आदि द्रष्टव्य हैं)।

स्रष्टा भी महारात्रि के मध्य शून्यविन्दु-काल में ही ईक्षण=सृष्टि वनाने की कामना करके प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करता है, तभी उस की सृष्टि सुखदायिनी होती है।

सावधानी—जो व्यक्ति यह प्रक्रिया नहीं जानते या कार्यान्वित नहीं करते, जो सृष्टि के नियमों के गम्भीर रहस्यों की उपेक्षा करते हैं, उन की सन्तान विकलाङ्ग, बुद्धिहीन, कुरूप, अल्पायु तथा रोगी पैदा होती है।

इस समय संसार में करोड़ों की संख्या में ऐसी सन्तानें विश्व के लिये भाररूप हैं।

जो व्यक्ति नशीले पदार्थों का सेवन करके अपनी सन्तानों को उत्पन्न करते हैं, उनकी सन्तानें भी महामूर्ख होती हैं, यह इस संसार में देखने से स्पष्ट है।

उपसंहार—

यह अति संक्षेप में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन किया गया है।

सृष्टि के क्रम को समझने से प्रकृति, (पुरुष) जीव और परमपुरुष का ज्ञान सरलता से हो जाता है। (महाभारत)

जब तक मनुष्य सृष्टि-क्रम को नहीं समझता, तब तक उस को यथावत् ज्ञान नहीं होता। (सत्यार्थप्रकाश, समु० ८)

जव तक यथावत् ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, तव तक जीव

की मुक्ति नहीं होती। (महर्षि कपिल)

मुक्ति के साधन—

परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म-अविद्या-कुसङ्ग-कुसंस्कार बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण परोपकार विद्या पक्षपातरहित न्याय-धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्याय-धर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से मुक्ति और इन से विपरीत ईश्वराज्ञा-भङ्ग करने आदि काम से बन्ध होता है। (सत्यार्थप्रकाश, समु० ९)

मुक्ति के अधिकारी—

'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थः संन्यासयोगः शुद्धसत्त्वचित्तः।
ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे॥'

(मुण्डकोपनिषद् ३।२।६)

अर्थात् जो वेद के विज्ञान के निश्चित अर्थ को जानते हैं, संन्यासयोग वाले, शुद्ध सात्त्विक चित्तवाले हैं, वे ही ब्रह्मलोक (मोक्ष) में परान्तकाल तक सब दुःखों से मुक्त होकर आनन्द को भोगते हैं।

मुक्ति का काल ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्ष होता है। इतने समय जीव का ब्रह्मानन्द में रहना बहुत बड़ी बात है, अतः मुक्ति के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये।

मुक्ति से लौटना—

सुदीर्घ काल तक ब्रह्मानन्द का भोग कर लोकोपकारार्थ विशेष ब्रह्मज्ञान-विज्ञान में अधिकारी होकर पुनः-पुनः वेदों की प्राप्ति से मानवादि की सेवा मुक्त जीव कर सकता है।

अनन्त सृष्टि में मुक्तात्माओं की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

प्रश्न—वेदों की चार संहिता करने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर—विद्या के जाननेवाले मन्त्रों के प्रकरण से जो पूर्वापर का ज्ञान होता है, उससे वेदों में कही हुई सब विद्या सुगमता से जान ली जाये—इत्यादि प्रयोजन संहिताओं के करने में है।

प्रश्न—जब सृष्टि में सम्पूर्ण जलप्लावन होता है, तो वेद पुस्तव लुप्त हो जाते हैं, तो वेद नित्य कैसे कहे जा सकते हैं ?

उत्तर--सव सत्यविद्याओं की पुस्तक ब्रह्मराशि है, जब-जब जलप्लावन होता है, तब-तब वेद अप्रसिद्ध रहते हैं, ईश्वर के ज्ञान में सुरक्षित रहते हैं। ईश्वर नित्य है, उसका ज्ञान नित्य है। जलप्लावन हो या प्रल हो, वेद अप्रसिद्ध रहते हैं। जब जलप्लावन हो या प्रलय के बाद पुनः-पुनः मानवादि की सृष्टि होती है, तब भूगर्भ से जन्मे पवित्र मुक्तात्माओं को ही 'सुप्त-प्रबुद्ध-न्याय' से वेदों की प्राप्ति होती है और वेद प्रसिद्ध होते हैं।

मानव की लापरवाही या महायुद्धों के विनाश से भी वेदों का लं हो सकता है, तब मुक्तात्माओं के द्वारा सृष्टि के स्थितिकाल में भी वे का उद्धार तथा प्रचार होता है।

यह सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की सारी प्रक्रियायें फिल्म में दर्शायेंगे। पाठक महोदय सहयोग देवें, तो यह कार्य शीघ्र सम्पन्न हो सकेगा।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः स शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। ओ३म् शान्तिः शा शान्तिः ॥　　　　　　　　(यजुर्वेद ३६।१७)

द्यौः = शिर, अन्तरिक्षम् = छाती, पृथिवी = नाभिसंस्थान, आपः रक्तप्रवाह, ओषधयः=रोगनिवारक शक्ति, वनस्पतयः = रोमकूप-विश्वेदेवाः=ग्यारह इन्द्रियाँ, ब्रह्म = विद्याज्ञान, सर्वं शान्तिः=स शरीर में ब्रह्माण्ड में सर्वत्र शान्तिदायक कल्याणकारी शक्तियाँ हों, स साथ पिण्ड अर्थात् शरीर में भी प्रत्येक अङ्गोपाङ्ग में शान्ति हो।

इस शान्तिपाठ का शरीर पर विनियोग करके पाठ करें और शर को वलवान्, पवित्र और शान्तियुक्त वनाये रखें। आध्यात्मिक, भौति और सामाजिक - सब प्रकार की सर्वत्र शान्ति हो।

॥ इति शम् ॥

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः

(अथर्ववेद ८।२।२१)
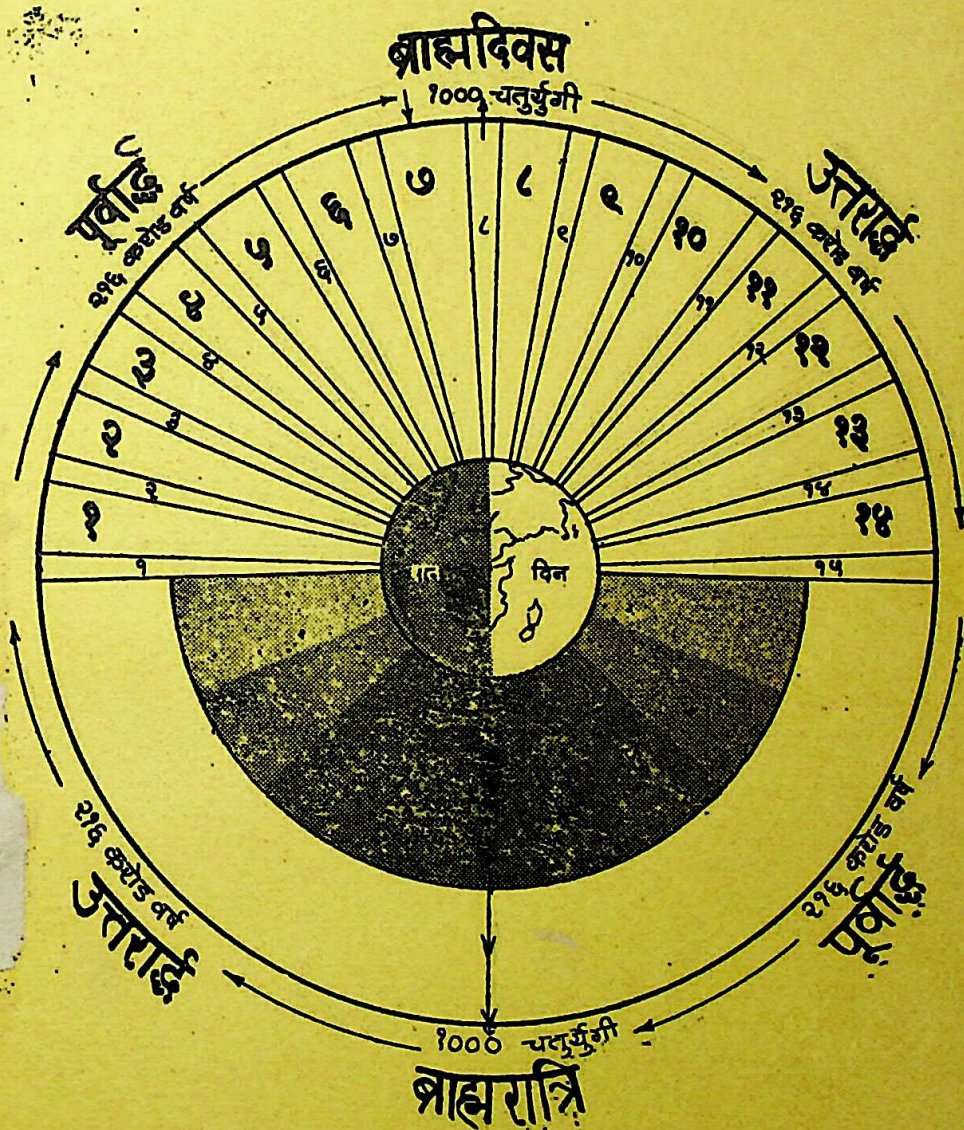
सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि०। (यजु० १५।६५)
कालेश्वर ने ब्रह्म अहोरात्र, युग, चतुर्युग, लघु अहोरात्र बनाये हैं।

ओ३म् आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। (ऋ० १०।१८९।१)

सूर्य नवग्रह सहित गतिमान है।